आधुनिक भारत के निर्माता

BUILDERS OF MODERN INDIA

डा. केशव बलिराम हेडगेवार

ଆଧୁନିକ ଭାରତର ନିର୍ମାତା

राकेश सिन्हा

ਨਵ-ਭਾਰਤ ਦੇ ਨਿਰਮਾਤਾ

நவபாரதச் சிற்பிகள்

നവഭാരത നിർമ്മാതാക്കൾ

నవ భారత నిర్మాతలు

جدید ہندوستان کے معمار

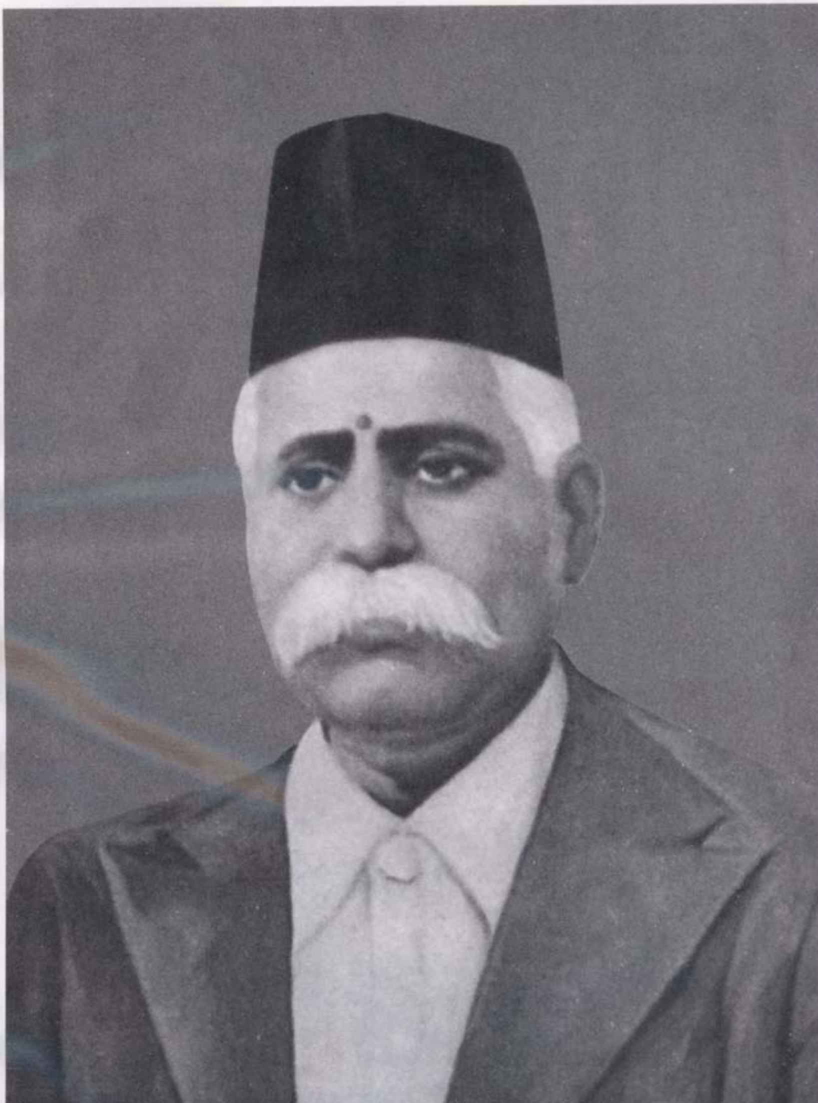

डा. केशव बलिराम हेडगेवार

राकेश सिन्हा

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

प्रथम संस्करण : शक 1925 (2003)

पुर्नमुद्रण : शक 1925 (2003)

© प्रकाशन विभाग

ISBN : 81-230-1076-1

मूल्य : 95.00 रुपये

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110 001 द्वारा प्रकाशित।

विक्रय केंद्र ● प्रकाशन विभाग

- पटियाला हाउस, तिलक मार्ग, नई दिल्ली-110 001
- सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110 001
- कामर्स हाउस, करीमभाई रोड, बालार्ड पायर, मुंबई-400 038
- 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कोलकाता-700 069
- राजाजी भवन, बेसेंट नगर, चेन्नई-600 090
- बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800 004
- प्रेस रोड, तिरुअनंतपुरम-695 001
- प्रथम तल, एफ विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला, बंगलौर-560 034
- 27/6, राम मोहन राय मार्ग, लखनऊ-226 001
- ब्लाक नं. 4, प्रथम मंजिल, गृहकल्प काम्प्लैक्स, एम. जे. रोड, हैदराबाद-500 014
- अम्बिका काम्प्लैक्स, प्रथम तल, पालदी, अहमदाबाद-380 007
- योजना (असमिया), नौजान रोड, उजान बाज़ार, गुवाहाटी-781 001

विक्रय काउंटर ● पत्र सूचना कार्यालय

- 80, मालवीय नगर, भोपाल-462 003 (म. प्र.)
- सी.जी.ओ. काम्प्लैक्स, 'ए' विंग, ए.बी. रोड, इंदौर (म.प्र.)
- बी-7/बी, भवानी सिंह मार्ग, जयपुर-302 001 (राजस्थान)

टाइप सैटर : क्विक प्रिन्टर्स, नारायणा, नई दिल्ली-110 028.

मुद्रक : वीबा प्रैस प्रा. लि., सी-66/3, ओखला फेस-II, नई दिल्ली-11002

फोन : 51611300 फैक्स : 26386500

अनुक्रम

1.	तेजस्वी बालक	1
2.	देशभक्ति की पहली किरण	6
3.	क्रांतिकारी जीवन	14
4.	प्रथम विश्वयुद्ध और डा. हेडगेवार	20
5.	आत्मदर्शन	26
6.	कांग्रेस में प्रवेश	32
7.	असहयोग आंदोलन	39
8.	'राजद्रोह' का मुकदमा	45
9.	सत्यनिष्ठ हेडगेवार	58
10.	'स्वातंत्र्य' का संपादन	67
11.	राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ	72
12.	स्वतंत्रता आंदोलन और डा. हेडगेवार	88
13.	दूसरा कारावास	101
14.	हिंदू महासभा, कांग्रेस और संघ	106
15.	दमनचक्र के बीच संघ का विकास	127
16.	ऐतिहासिक बहस	138
17.	संघ बनाम साम्राज्यवाद	150
18.	डा. हेडगेवार और महात्मा गांधी	167
19.	कर्मयोगी	184
20.	सामाजिक दर्शन	197
21.	तत्वरूपी हेडगेवार	212

मां श्रीमती द्रौपदी देवी
एवं
पिताजी श्री बंगाली सिंह
को
सादर समर्पित

प्राक्कथन

भारतीय राजनीति एवं शैक्षणिक जगत में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ एवं इसका सैद्धांतिक पक्ष आजादी के बाद से ही बहस के केंद्र में रहा है। किसी भी संस्था के सामाजिक दर्शन, राजनीतिक दृष्टिकोण, संगठनात्मक संस्कृति को समझने के लिए उसके संस्थापक के जीवन क्रम एवं वैचारिक पक्ष को जानना आवश्यक होता है। संघ और उसके संस्थापक डा. केशव बलिराम हेडगेवार एक-दूसरे के पर्याय हैं। संघ अपने समकालीन हिंदू संगठनों से कैसे भिन्न था, इसकी वैचारिक पृष्ठभूमि और वैश्विक दृष्टिकोण के मर्म को डा. हेडगेवार के जीवन प्रसंगों और दृष्टिकोण को जाने बिना समझना कठिन कार्य है। किसी संस्था के वैचारिक पक्ष से सहमति अथवा असहमति होना लोकतंत्र में स्वाभाविक है, परंतु जिस संस्था का प्रभाव एवं विस्तार जीवन के हर क्षेत्र में हो, उसके संस्थापक के जीवन एवं विचारों से अज्ञानता अनेक भ्रांतियों को जन्म देती है। इसके कारण वैचारिक आंदोलन का सही मूल्यांकन भी नहीं हो पाता। डा. हेडगेवार के संबध में भी अनेक प्रकार की भ्रांतियां उत्पन्न हुई। इनमें एक उनके स्वतंत्रता आंदोलन से अलिप्त रहने के बारे में है। यह तथ्य एवं सच्चाई से कितनी दूर है, इसका अनुमान निम्न बातों से लगाया जा सकता है।

सन 1921 में मध्यप्रांत की राजधानी नागपुर में ब्रिटिश सरकार ने उन पर 'राजद्रोह' का मुकदमा चलाया था। मुकदमे की सुनवाई के दौरान उन्होंने उपनिवेशवाद को अमानवीय, अनैतिक, अवैधानिक एवं क्रूर शासन की संज्ञा देते हुए ब्रिटिश न्यायिक व्यवस्था, पुलिस, प्रशासन एवं राजसत्ता के खिलाफ सभी प्रकार के विरोधों का समर्थन किया। तब उत्तेजित न्यायाधीश ने उनकी दलीलों को पहले के भाषणों से भी अधिक 'राजद्रोही' घोषित किया। उनकी क्रांतिकारी गतिविधियों के कारण सात वर्ष पूर्व ही औपनिवेशिक सरकार ने उन्हें 'संभावित खतरनाक राजनीतिक अपराधी' की सूची में शामिल कर लिया था। इससे छह वर्ष पूर्व (1909 में) उन पर लोगों को सरकार के खिलाफ उकसाने एवं पुलिस चौकी पर बम फेंकने का आरोप लगाया जा चुका था। और इससे पूर्व वह नागपुर के एक स्कूल से 'वंदे मातरम्' की उद्घोषणा करने एवं इसके लिए माफी न मांगने के कारण निष्कासित

किए जा चुके थे। असहयोग आंदोलन के बाद देश के दूसरे महत्वपूर्ण आंदोलन—'सविनय अवज्ञा आंदोलन' में सत्याग्रह का नेतृत्व करते हुए वह गिरफ्तार हुए और उन्हें नौ महीने के सश्रम कारावास की सजा मिली थी। उनकी मृत्यु 1940 में हुई, जब अनेक क्रांतिकारी जिनमें सुभाष चंद्र बोस एवं त्रैलोक्यनाथ चक्रवर्ती के नाम उल्लेखनीय हैं, द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान क्रांति की आशा एवं योजना के साथ उनकी तरफ आकृष्ट हो रहे थे। उनकी मृत्यु से एक दिन पूर्व ही सुभाष चंद्र बोस उनसे उनके कर्तृत्व, देशभक्ति, संगठन कौशल एवं क्रांतिकारी पृष्ठभूमि के कारण मिलने आए थे। तब उन्हें डा. हेडगेवार को मृत्यु शैया पर देखकर कितनी हताशा हुई होगी, उसका अनुमान लगाया जा सकता है।

स्वाधीनता आंदोलन में डा. हेडगेवार की भागीदारी के अनेक रूप एवं घटनाएं हैं, परंतु उनकी गतिविधियां एवं चिंतन राष्ट्र की स्वतंत्रता के प्रश्न तक सीमित नहीं थी। एक प्राचीन भारतीय राष्ट्र का पराभव क्यों हुआ और इसे सबल एवं संगठित राष्ट्र कैसे बनाया जा सकता है—इन प्रश्नों का समाधान एक स्वप्नद्रष्टा के रूप में वह जीवनपर्यंत ढूंढते रहे तथा उनका निष्कर्ष था कि राष्ट्र के हित, पुनर्निर्माण एवं संगठन के लिए किया गया कार्य 'ईश्वरीय कार्य' होता है। उन्होंने 1925 में इसी ध्येय को अपने समक्ष रखकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना की थी। संघ की स्थापना उन्होंने नागपुर की वीरान, बंजर एवं उपेक्षित भूमि मोहितेवाड़ा से की थी और देखते-देखते संघ सभी प्रांतों में फैल गया। उन्होंने संगठन, समाज, संस्कृति एवं राष्ट्र के बीच जीवंत संबंध स्थापित करने का प्रयत्न किया। यही कारण है कि संघ की स्थापना, विस्तार एवं प्रभाव के पीछे प्रेरणा-पुरुष होते हुए भी वह सदैव सामने आने में संकोच करते रहते थे। व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा एवं स्वार्थ से मुक्त रहकर सार्वजनिक जीवन जीने का उन्होंने अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया था।

प्रचार, प्रसिद्धि एवं श्रेय लेने की प्रवृत्तियों से वह कितने मुक्त थे, इसका प्रमाण यह है कि संघ की स्थापना के एक दशक बाद तक मध्यप्रांत की सरकार उनके मित्र डा. बालकृष्ण मुंजे को संघ का संस्थापक समझने की भूल करती रही। उन्होंने अपने जीवन काल में जीवन चरित्र लिखने के प्रयासों को हतोत्साहित किया। दामोदर पंत भट द्वारा लगातार आग्रह को ठुकराते हुए उन्होंने लिखा था-

'आपके मन में मेरे एवं संघ के लिए जो प्रेम एवं आदर है, उसके लिए

मैं आपका हृदय से आभारी हूं। आपकी इच्छा मेरा जीवन चरित्र प्रकाशित करने की है। परंतु मुझे नहीं लगता कि मैं इतना महान हूं या मेरे जीवन में ऐसी महत्वपूर्ण घटनाएं हैं, जिनको प्रकाशित किया जाए। उसी प्रकार मेरे अथवा संघ के कार्यक्रमों की तस्वीरें भी उपलब्ध नहीं हैं। संक्षेप में, मैं यही कहूंगा कि जीवन चरित्रों की शृंखला में मेरा चरित्र तनिक भी उपयुक्त नहीं बैठता। आपके द्वारा ऐसा न करने से मैं उपकृत होऊंगा।'

उनके संबंध में पहली छोटी पुस्तिका का प्रकाशन उनकी मृत्यु के पश्चात व. ण. शेंडे ने 1941 में किया था। उसके दो दशक बाद नारायण हरि पालकर ने उनका जीवन चरित्र लिखा। उनके संबंध में अनेक लेख, संस्मरण एवं उनके भाषण मध्यप्रांत के अखबारों में प्रकाशित हुए थे जिनका अध्ययन न होने के कारण उनके जीवन के अनेक प्रसंग एवं घटनाएं और उनके सामाजिक एवं राजनीतिक दृष्टिकोण अवर्णित रहे। विशेषकर संघ की विचारधारा पर राजनीतिक एवं शैक्षणिक जगत में बहस का भी प्रभाव डा. हेडगेवार के जीवन के मूल्यांकन पर पड़ता रहा। स्वतंत्रता आंदोलन में उनकी भागीदारी एवं राष्ट्रवादी विचारधारा पर भी प्रश्न खड़े किए गए।

मैंने 1988-89 में 'Political Ideas of Dr. K.B. Hedgewar' विषय पर पहला कार्य दिल्ली विश्वविद्यालय में राजनीतिक विज्ञान के छात्र के रूप में शोध निबंध लिखकर किया था। तब से मैंने संघ की स्वतंत्रता आंदोलन में भागीदारी एवं डा. हेडगेवार के जीवन पर अपना शोधकार्य जारी रखा। इसी बीच मुझे प्रकाशन विभाग की तरफ से डा. हेडगेवार के जीवन पर लिखने का अनुरोध हुआ। इस पुस्तक में मैंने उनके जीवन के जाने-अनजाने प्रसंगों, उनके दृष्टिकोण और वैचारिक पक्ष को रखने का प्रयास किया है। संभव है, इसमें अनेक त्रुटियां एवं न्यूनताएं रह गई हों। मेरा मानना है कि जो महापुरुष इतिहास के अंग बनकर रह जाते हैं, उनका मूल्यांकन करना कठिन कार्य नहीं है, परंतु जो अपने जीवन काल के बाद पीढ़ियों को प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं तथा वर्तमान एवं भविष्य के घटनाक्रम में प्रासंगिक एवं प्रखर बने रहते हैं, वैसे असामान्य चरित्र का मूल्यांकन भविष्य का इतिहास ही कर सकता है। डा. हेडगेवार का जीवन चरित्र इसी श्रेणी में आता है।

अत: उनके जीवन एचं वैचारिक पक्ष पर शोध पर विराम नहीं दिया जा सकता है। इस पुस्तक के लिखने एवं शोधकार्य में कुप्प. सी. सुदर्शन, दत्तोपंत

ठेंगडी, एच. वी. शेषाद्रि, के सहयोग एवं प्रोत्साहन के लिए मैं विशेष रूप से आभारी हूं। रंगाहरि सूर्यनारायण राव एवं मदन दास देवी के रचनात्मक सुझावों के कारण मैं अनेक त्रुटियों को दूर कर पाया। शोधकार्य के आरंभिक वर्षों में डा. हेडगेवार के संबंध में अनेक दस्तावेजों एवं पुस्तकों के प्रति स्व. एन. बी. लेले (लेखक व पत्रकार) एवं भानुप्रताप शुक्ल तथा देवेंद्र स्वरूप (दोनों पूर्व संपादक 'पांचजन्य') ने मेरा ध्यान आकृष्ट कराया था। दिल्ली विश्वविद्यालय में आधुनिक भारतीय भाषा विभाग के प्रो. एन. डी. मिराजकर एवं यूनीवार्ता के पत्रकार प्रमोद मुजुमदार ने मराठी लेखों एवं दस्तावेजों के अनुवाद में समय-समय पर मेरी सहायता की है। मैं इन सबका एवं उन अनेक लोगों का—जिनकी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सहायता एवं प्रोत्साहन मिलता रहा—कृतज्ञ हूं।

नई दिल्ली के राष्ट्रीय अभिलेखागार, मुंबई, भोपाल, लखनऊ, पटना एवं अन्य प्रांतों के अभिलेखागारों, नेहरू स्मृति संग्रहालय एवं पुस्तकालय (नई दिल्ली), तिलक स्मृति संग्रहालय (पूना), रतन टाटा लाइब्रेरी, सप्रू हाउस लाइब्रेरी के साथ-साथ सूचना एवं प्रसारण मंत्री तथा प्रकाशन विभाग के निदेशक और संपादक मंडल के सक्रिय सहयोग हेतु मैं उनका आभारी हूं।

किसी पुस्तक का वास्तविक मूल्यांकन तो पाठकवर्ग ही करता है। मुझे विश्वास है कि पाठकों का रचनात्मक सुझाव मिलता रहेगा, जिसके आधार पर मैं इस पुस्तक के अगले संस्करण को और भी उपयोगी बनाने में सक्षम हो पाऊंगा।

– राकेश सिन्हा

तेजस्वी बालक

सन 1889 की 1 अप्रैल प्रतिपदा का दिन था। परंपरागत ढंग से हिंदू घरों में भगवा ध्वज फहराया जा रहा था। वर्ष प्रतिपदा को महाराष्ट्र में 'गुदीपाडवा' के नाम से जाना जाता है। यह दिन हिंदू मन, हृदय और विवेक को भारत के इतिहास के घटनाचक्र, राष्ट्र की अस्मिता, सांस्कृतिक परंपराओं एवं वीर तथा वैभवशाली पूर्वजों की विरासत का यशस्वी बोध कराता है। यदि किसी घर में इस शुभ दिन की शुभ्र वेला में किसी बालक का जन्म हो तो इसे प्रकृति की महान कृपा ही कहा जाएगा। ऐसा ही खुशी का अवसर इस दिन नागपुर के गरीब ब्राह्मण बलिराम पंत हेडगेवार के परिवार में था। उनके सबसे छोटे (तीसरे) पुत्र एवं पांचवीं संतान का जन्म हुआ था। इस महज संयोग को इस बालक ने अपने कृतित्व एवं व्यक्तित्व, संकल्प, साधना एवं संस्कार, शुद्ध चरित्र एवं मौलिक चिंतन से यथार्थ में बदल दिया- इस दिन को केशव के जन्म से सचमुच में नया संस्करण मिल गया। बचपन का केशव आधुनिक भारत के निर्माण की संकेत-रेखा था, जो आगे चलकर डा. केशव बलिराम हेडगेवार के रूप में यशस्वी हुआ। व्यक्ति के जीवन में उसके कर्मों से उसे यश मिलता है और मृत्यूपरांत उसकी यशोगाथा इतिहास के पन्नों में सिमटकर रह जाती है। परंतु हेडगेवार वर्तमान एवं भविष्य के साथ जुड़े हैं। यही कारण है कि उनकी प्रसिद्धि जीवन काल से अधिक मृत्यूपरांत हुई। आदर्श राष्ट्रवाद एवं कर्मयोग को अमूर्त से मूर्त बनाने का जो काम उन्होंने किया, वह संभवतः भारतीय राष्ट्र के भाग्य की योजना ही कहा जा सकता है। राष्ट्र के नव सृजन, नव संगठन, नव रचना का उनका संदेश जितना कल प्रासंगिक था, उतना ही आज प्रबल है और भविष्य में भी उत्तरोत्तर प्रभावकारी एवं प्रासंगिक होता जाएगा।

इस इतिहास पुरुष का शैशव, पारिवारिक रचना, वंश एवं सामाजिक-आर्थिक अवस्था रोचक एवं दिल दहलाने वाले प्रसंगों से भरी पड़ी है।

हेडगेवार कुल का इतिहास

बलिराम पंत का परिवार मूलतः आंध्र प्रदेश में निजामाबाद जिले की बोधन

तहसील में कंदकुर्ती नामक गांव से संबद्ध था। यह गांव गोदावरी, वंगरा एवं हरिद्रा—तीन नदियों के संगम पर स्थित है। पूर्वजों का रिकार्ड रखने की परंपरा से केशव के पूर्वजों में नौ पीढ़ियों तक की जानकारी उपलब्ध है। वेदों एवं शास्त्रों का अध्ययन कुल की परंपरा थी। यही कारण है कि सैकड़ों वर्ष पूर्व आद्य शंकराचार्य ने इस कुल के व्यक्ति को 'धर्म संरक्षक' नियुक्त किया था। हैदराबाद में निजाम का शासन था। उसकी धार्मिक भेदभाव की नीति जब हद पार कर गई तो बलिराम पंत के परदादा नरहर शास्त्री अपनी धर्म एवं शास्त्र अध्ययन की परंपरा को बरकरार रखने के लिए कंदकुर्ती छोड़कर भोंसला शासित नागपुर में दो-ढाई सौ वर्ष पूर्व आकर बस गए। हेडगेवार कुल को यहां सामाजिक सम्मान एवं राज्य का संरक्षण दोनों प्राप्त हुए। परंतु उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से परिवार की आर्थिक हालत बिगड़ने लगी। इसके दो कारण थे। पहला कारण यह था कि सन 1853 में नागपुर राज्य पर भोंसला शासन का अंत करके अंग्रेजी राज स्थापित हो गया और हेडगेवार कुल को मिलने वाला संरक्षण भी उसके साथ ही समाप्त हो गया। ऐसी स्थिति में परिवार के पास एक ही विकल्प था- पौरोहित्य का कार्य। उनके पास एक पुश्तैनी घर के अतिरिक्त कोई स्थायी संपत्ति नहीं थी। दूसरा कारण यह था कि मध्यप्रांत में अकाल की पुनरावृत्ति ने लोगों की आर्थिक स्थिति को बदतर बना दिया। एक बड़ी विडंबना यह कि अंग्रेजी राज इन सबके प्रति पूरी तरह से उदासीन था। निश्चित रूप से इसका प्रभाव हेडगेवार परिवार के धनोपार्जन पर भी पड़ा।

परीक्षा की घड़ी

बलिराम पंत का परिवार बड़ा था। उनकी छह संतानों में तीन पुत्र और तीन पुत्रियां थीं। केशव के दोनों ज्येष्ठ भ्राताओं का नाम महादेव शास्त्री एवं सीताराम पंत था। सरू, राजू एवं रंगू तीन बहनें थीं। उनमें रंगू उनसे उम्र में छोटी थी। उनकी मां रेवती बाई अपनी धर्मनिष्ठता एवं शांत स्वभाव के लिए जानी जाती थीं। माता-पिता के प्यार ने बच्चों को गरीबी का अनुभव नहीं होने दिया। बलिराम पंत स्वयं अथक मेहनत करके परिवार की गाड़ी चला रहे थे और अपने जीवन-काल में उन्होंने बच्चों को पौरोहित्य के कार्य से नहीं जुड़ने दिया। आर्थिक संकट के बावजूद उन्होंने परिवार में वेद अध्ययन की परंपरा को बनाए रखा। अपने दोनों ज्येष्ठ पुत्रों को वेद अध्ययन के लिए प्रेरित किया। केशव का भी नाम संस्कृत पाठशाला में लिखाया। बलिराम पंत परंपरागत मूल्यों, धार्मिक रीति-रिवाजों एवं कर्मकांड को अतिशय महत्व देते थे।

परंतु इस परंपरावाद पर उनके छोटे पुत्र ने प्रश्न खड़े करने का सफल कार्य किया। केशव की मानसिक संरचना असाधारण थी। उनकी कुशाग्र बुद्धि, चंचलता और प्रतिभा ने उन्हें आधुनिक शिक्षा के लिए प्रवृत्त किया एवं माता-पिता ने लीक से हटकर, पारिवारिक परंपरा के प्रतिकूल उनका नाम पूरे मध्यप्रांत में प्रसिद्ध नागपुर के नील सिटी स्कूल में दर्ज कराया। केशव के लिए यह निश्चय ही एक बड़ी उपलब्धि थी। परंतु नियति ने केशव की खुशी पर पानी फेर दिया। सन 1902 में नागपुर में प्लेग का प्रकोप हुआ। बलिराम पंत मृत लोगों के दाह संस्कार में बढ़-चढ़कर सहायता करते थे। पति-पत्नी दोनों ने अद्‌भुत सामाजिकता एवं त्याग का परिचय दिया। केशव के जीवन पर माता-पिता के इस सामाजिक भाव का प्रभाव पड़ा, जो उनके बाद के जीवन में परिलक्षित होता रहा। पर इस बीच वे दोनों स्वयं भी इस महामारी के शिकार हो गए और एक ही दिन चल बसे। तेरह वर्षीय केशव ने पूरे होशो-हवास में अपने माता-पिता को एक ही दिन एक ही चिता में जलते देखा।

इस वज्राघात की पीड़ा और भी असहनीय बन गई क्योंकि केशव के परिवार के पास आय का कोई स्थायी स्रोत नहीं था। वेद अध्ययन पूरा करने के बाद महादेव शास्त्री पर एकाएक परिवार की जिम्मेदारी आ पड़ी। महादेव ने पिता की इच्छा के अनुकूल दूसरे भाई सीताराम पंत को वेद अध्ययन के लिए इंदौर भेज दिया। केशव की शिक्षा नील सिटी स्कूल में शिक्षा जारी रही, परंतु महादेव शास्त्री की उनसे पौरोहित्य के कार्य में सहयोग की अपेक्षा रहने लगी। किंतु केशव का मन और मस्तिष्क समझौता करने के लिए तैयार नहीं था। उन्हें एक शाम का भोजन, फटे-पुराने वस्त्र और बड़े भाई की दुत्कार व जब-तब पिटाई तो स्वीकार थी, परंतु सामाजिक-राजनीतिक हलचल के प्रति अपने रुझान को कम करना मंजूर नहीं था। जो कार्य उन्हें पसंद नहीं था, वह उसे बेहिचक अस्वीकार कर देते थे। ऐसी ही एक घटना तब घटी जब उन्होंने बड़े भाई द्वारा घर में भांग घोटने के आदेश को नहीं माना। उनकी जमकर पिटाई हुई, परंतु वह अपनी बात पर अड़े रहे। बाल्यकाल की यह दृढ़ता, संकल्प-शक्ति एवं विवेक के आधार पर कार्य करने की प्रवृत्ति उनके जीवन में हमेशा दिखाई पड़ती रही। केशव ने कच्ची उम्र में प्रकृति, परिवार एवं परंपराओं द्वारा आरोपित प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना किया।

देशभक्ति का भाव

केशव के बाल्यकाल की अनेक घटनाएं मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन का विषय हैं। पहली घटना तब की है जब उनकी उम्र सिर्फ आठ वर्ष की थी। यह घटना 22 जून 1897 की है। ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया के राज्यारोहण के साठ साल पूरे होने पर भारत में जश्न मनाया जा रहा था। केशव के स्कूल में भी मिठाई बांटी गई। परंतु उन्होंने अपने हिस्से की मिठाई फेंकते हुए सहसा कहा—''लेकिन वह हमारी महारानी तो नहीं हैं।'' देशभक्ति की उपजी भावना आने वाले वर्षों में और प्रस्फुटित होने लगी। दूसरी घटना 1901 की है। इंग्लैंड के राजा एडवर्ड सप्तम के राज्यारोहण के अवसर पर राजनिष्ठ लोगों द्वारा नागपुर में आकर्षक आतिशबाजी का आयोजन किया गया था। केशव ने बाल मित्रों को उसे देखने से रोका। उन्होंने उन सबको समझाया कि 'विदेशी राजा का राज्यारोहण उत्सव मनाना हमारे लिए शर्म की बात है।'

महाराष्ट्र में छत्रपति शिवाजी की वीरता की गाथा घर-घर में सुनी-सुनाई जाती थी। विद्यालय के देशभक्त शिक्षक भी विद्यार्थियों को उनके जीवन की घटनाएं एवं शौर्य के प्रसंग रोचक ढंग से सुनाते थे। केशव के जीवन पर भी शिवाजी की वीरता, संकल्प-शक्ति एवं राष्ट्रीय भाव का अटूट प्रभाव था। तभी नागपुर के सीताबर्डी के किले के ऊपर इंग्लैंड के ध्वज 'यूनियन जैक' का फहरना उनके बाल मन को कचोटता रहता था। फिर एक दिन उन्होंने अपने मित्रों के साथ शिवाजी की गुरिल्ला पद्धति की आजमाइश करने की योजना बनाई। अपने मित्रों के साथ वझे गुरुजी के घर से सुरंग खुदाई का काम शुरू किया। उस उम्र के बच्चों के लिए लगभग दो किलोमीटर लंबी सुरंग खोदना एक असंभव कार्य था। बात खुली तो बड़े बुजुर्गों ने बच्चों को डांट-फटकार लगाई। उनके चाचा मोरेश्वर (उर्फ आबा जी) हेडगेवार ने अपने संस्मरण में लिखा है —

'जिस आयु में अन्यान्य बालक खेलने-कूदने में मस्त रहते हैं, उसी आयु में अंग्रेजों को निकाल बाहर करने का यह उद्देश्य पूर्ण होने से पूर्व ही 'सेनापति' अपने छोटे-से गुरिल्ले दल के साथ घर वालों द्वारा बंदी बना लिया गया।'

जहां एक ओर उनका बाल्यकाल संकटों से घिरा रहा वहीं दूसरी ओर उनका व्यवहार साहस और आत्मविश्वास से मंडित था। केशव के परिवार का

राजनीतिक गतिविधियों से दूर-दूर का कोई संबंध नहीं था, न ही नागपुर के तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक वातावरण में ब्रिटेन विरोधी लहर का संचार था; फिर देशभक्ति की प्रेरणा कैसे उपजी? विदेशी राजसत्ता के प्रति घृणा एवं विद्रोह का चरित्र कैसे पनपा? संभवत: इन प्रश्नों का उत्तर प्रखर मनोवैज्ञानिक ही दे सकता है।

देशभक्ति की पहली किरण

केशव की छोटी उम्र में ही परिपक्व बातें एवं राष्ट्रवादी आकांक्षाएं आस-पड़ोस के लोगों के लिए चौंकाने वाली बात थी। महादेव शास्त्री को उनकी गतिविधियां फिजूल की बातें लगती थीं। वह कहते थे कि 'ये सब बातें गरीब परिवार के लोगों के लिए पैरों पर कुल्हाड़ी मारने के समान हैं।' परंतु केशव की उम्र जैसे-जैसे बढ़ रही थी, वैसे-वैसे कुछ कर दिखाने की बैचेनी भी बढ़ती जा रही थी। अपनी इस क्रियाशील देशभक्ति के कारण अपने से अधिक उम्र के राष्ट्रवादी नौजवानों के बीच वह आसानी से घुल-मिल जाते थे।

अनेक बड़े क्रांतिकारियों की तरह उनकी भी देशभक्ति की यात्रा अखाड़े से शुरू हुई। नागपुर में शिवराम गुरु का अखाड़ा राष्ट्रवादी सोच रखने वालों के बीच अत्यंत ही लोकप्रिय था। यह अखाड़े के साथ-साथ राष्ट्रवादी नौजवानों का केंद्र भी था। केशव अपने अन्य बड़े साथियों के साथ, जिनमें मोरू अभ्यंकर, गणू जोशी एवं हनुमंत नायडू के नाम उल्लेखनीय हैं, इस अखाड़े में नियमित रूप से आते थे। यहीं सन 1904 में केशव पर डा. बी. एस. मुंजे की दृष्टि पड़ी। डा. मुंजे क्रांतिकारी विचारधारा के प्रबल समर्थक एवं तिलक के प्रमुख अनुयाइयों में से एक थे। केशव की प्रवृत्ति एवं प्रतिबद्धता मुंजे को पसंद आई, तो केशव को मुंजे की सहृदयता एवं नि:स्वार्थ देशभक्ति की भावना रास आई। यहीं से शुरू होता है केशव का सार्वजनिक जीवन। मध्यप्रांत में तिलक युग का आरंभिक चरण था। तिलक पहली बार 1891 में नागपुर आए थे। उनके द्वारा प्रकाशित दो समाचार-पत्र 'केसरी' एवं 'मराठा' मध्यप्रांत में और विशेषकर नागपुर में लोकप्रिय थे। राष्ट्रवादी विचारधारा के प्रसार में इन दोनों समाचार-पत्रों का महत्वपूर्ण योगदान था। तिलक ने दूसरी बार 1902 में नागपुर का दौरा किया। तब केशव को भी उनका भाषण सुनने एवं उन्हें प्रत्यक्ष देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ। 'केसरी' का कच्ची उम्र से ही नियमित पाठक होने के कारण उनके मन में तिलक के प्रति अटूट श्रद्धा एवं सम्मान का भाव था। अमरावती में बी. जी. खापर्डे एवं नागपुर में डा. मुंजे तिलक की विचारधारा के मुख्य प्रवक्ता थे।

तिलक युग से पूर्व अर्थात उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक नागपुर के वायुमंडल में राष्ट्रभक्ति सुषुप्तावस्था में थी और राजभक्ति मुखर थी। जब मध्यप्रांत भीषण अकाल की चपेट में था तब नागपुर के रायबहादुरों एवं अन्य राजभक्तों के द्वारा विदेशी महारानी और महाराजा के राज्याभिषेक का झूठा जश्न मनाया जा रहा था। अंग्रेजी शासन का अमानवीय रूप तब सामने आया जब अकाल की भीषण मार के बावजूद मध्यप्रांत में 1897 में करों की रिकार्ड वसूली की गई। इस वर्ष 97,32,000 रुपये राजस्व के रूप में इकट्ठे किए गए जो 1893-94 की तुलना में 22,04,000 रुपये अधिक थे।[1]

नागपुर की राजनीति पर राजभक्त परिवारों का, जिनमें चिटनवीस एवं बोस परिवारों का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, आधिपत्य था। कांग्रेस के दूसरे अखिल भारतीय अधिवेशन के बाद 1886 में पहली बार किसी राजनीतिक संस्था का जन्म हुआ। इसका नाम था 'लोकसभा'। इसकी स्थापना 'पूना सार्वजनिक सभा' की तर्ज पर की गई थी। परंतु यह संस्था उदारवादी एवं संवैधानिक चरित्र को प्रतिबिंबित करती थी।

इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के सूर्योदय के साथ-साथ जब तिलक युग का भी उदय हुआ तब रायबहादुरों की राजनीति का भी अवसान शुरू हुआ। दोनों ही क्रियाएं द्रुत गति से हुईं और नागपुर भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन के मानचित्र पर चमकते सितारे की तरह उभरकर सामने आया।

महाराष्ट्र के छोटे-बड़े सभी आयु वर्ग के लोगों को छत्रपति शिवाजी की वीरता एवं राष्ट्रवाद की यशोगाथा प्रभावित करती थी। केशव भी इस मौखिक इतिहास के जिज्ञासु श्रोता थे। शिवाजी के चरित्र ने उनके हृदय पटल पर गहरी छाप छोड़ी थी तो समर्थ रामदास स्वामी के शिक्षाप्रद एवं व्यावहारिक उपदेशों ने उनके चिंतन की प्रक्रिया को उत्तरोत्तर राष्ट्रोन्मुखी बनाने का काम किया। समर्थ रामदास के मनोबोध के श्लोक उन्हें इतने पसंद थे कि उन्होंने उन्हें कंठस्थ कर लिया था।

मुंजे के सान्निध्य में केशव के मन में क्रांतिकारी आंदोलन की प्रवृत्ति का विकास होने लगा। सन 1904 में अन्य साथियों के साथ उन्होंने बम बनाने का

---

1. मध्य प्रदेश में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, संपादक : डी. पी. मिश्रा, पृ. 198

तरीका सीखा था। यह सब डा. मुंजे के घर पर होता था। सन 1905 में बंगाल विभाजन की ध्वनि नागपुर में भी सुनाई पड़ी। इसी वर्ष मुंजे ने 'विद्यार्थी समाज' नामक संगठन की स्थापना की और केशव को स्कूली छात्रों को संगठित करने की जिम्मेदारी दी गई। भवानीशंकर नियोगी को इस संगठन का अध्यक्ष बनाया गया था। सार्वजनिक गतिविधियों में उत्साही मन और निःस्वार्थ कर्म के कारण केशव की लोकप्रियता बढ़ती जा रही थी। अपनी उम्र के वह अकेले व्यक्ति थे जिन्होंने 'तिलक पैसा फंड' के लिए सफलतापूर्वक धन की उगाही की थी। इस फंड का निर्माण स्वदेशी विचारधारा एवं उद्योग को बढ़ाने के लिए किया गया था। नागपुर में स्वेदेशी वस्तुओं के प्रचार के लिए 'आर्य बांधव वीथिका' की स्थापना की गई थी। इसके संस्थापकों में प्रसिद्ध क्रांतिकारी पी. एस. खानखोजे थे। केशव इसकी मार्फत स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार के लिए विभिन्न विद्यालयों में जाया करते थे।

बांधव समाज

सोलह वर्ष की आयु में उन्होंने एक चर्चा मंडल की शुरूआत की। इसका उद्देश्य समवयस्कों में राष्ट्रीय घटनाओं पर चर्चा एवं उनमें क्रांतिकारी गुणों का विकास करना था। इसका नाम 'देशबंधु समाज' था।[1] इस कार्य में भाऊजी कावरे ने महत्वपूर्ण योगदान दिया था। वर्धा में 'बांधव समाज' नामक संस्था खानखोजे के नेतृत्व में चल रही थी। जब वह नागपुर नील सिटी स्कूल में पढ़ने आए तो बांधव समाज की एक शाखा यहां भी खुली। तब 'देशबंधु समाज' ने उसके लिए अनुकूल वातावरण तैयार किया। केशव स्वयं बांधव समाज से जुड़ गए थे। इसकी दो शाखाएं थीं। एक शाखा गोपनीय थी, दूसरी सबके लिए खुली हुई थी।

मोरोपंत अभ्यंकर, जमनालाल बजाज एवं भवानीशंकर नियोगी खुली शाखा के सक्रिय सदस्य थे तो खानखोजे और केशव गोपनीय शाखा के नेता थे। इस शाखा को 'समर्थ शिवाजी समाज' के नाम से जाना जाता था। इसका कार्य शस्त्र इकट्ठे करना और प्रांत के विभिन्न भागों में फैले क्रांतिकारी विचार वाले नौजवानों में समन्वय स्थापित करना था। इसके सदस्यों को मराठी में प्रतिज्ञा दिलाई जाती थी:

---

1. बालशास्त्री हरदास, आर्म्ड स्ट्रगल फॉर फ्रीडम, पृष्ठ 372

'करितो सन्मित्र हो निश्चये
आपल्या पुढ़े या पणा।
अर्पणी देहास देशकार्यी मी
जे रुचे आपणा।'

(हे मेरे मित्र! मैं आपको गवाह मानकर यह प्रतिज्ञा करता हूं कि अपनी प्रिय मातृभूमि की सेवा में मैं अपने शरीर एवं आत्मा को अर्पित करता हूं।)

इस समाज की लोकप्रियता एवं कार्यक्षेत्र मध्यप्रांत से बाहर भी फैला हुआ था।

वंदे मातरम् आंदोलन

सन 1907 का वर्ष नागपुर और केशव दोनों के लिए महत्वपूर्ण है। इस वर्ष अंग्रेजी राज के खिलाफ इस शहर में संगठित छात्र आंदोलन की शुरूआत हुई और इस कार्य की योजना एवं क्रियान्वयन केशव के द्वारा ही हुआ।

बंग विभाजन के बाद सरकारी दमनचक्र की तीव्रता पूरे देश में बढ़ती जा रही थी। बंगाल में, राजनीतिक आंदोलन में विद्यार्थियों की अहम भूमिका को देखते हुए सरकार ने एक नोटिस जारी किया। इसके द्वारा विद्यार्थियों के राजनीतिक गतिविधियों अथवा आंदोलनों में भाग लेने पर प्रतिबंध लगा दिया गया। इसके अतिरिक्त 'वंदे मातरम्' एवं 'तिलक महाराज की जय' जैसे नारे लगाने को दंडनीय अपराध घोषित किया गया। यह नोटिस 'रिस्ले सर्कुलर' के नाम से प्रसिद्ध था। इसके पूर्व बंगाल में सरकार ने ऐसा ही एक 'कार्लाइल सर्कुलर' निकाला था। महर्षि अरविंद घोष ने 'वंदे मातरम्' समाचार-पत्र में 'टू मीनिंग ऑफ रिस्ले सर्कुलर' नामक लेख लिखकर साम्राज्यवादी सरकार पर आरोप लगाया कि वह छात्रों एवं युवाओं को देशभक्ति की धारा, भाव एवं कार्यक्रमों से वंचित करके बौद्धिक जगत से दूर करना चाहती है; इसका वास्तविक उद्देश्य साम्राज्यवाद-विरोधी आंदोलन को कमजोर करना है।

इस सर्कुलर का मध्यप्रांत में विरोध नागपुर से शुरू हुआ। सन 1907 के मध्य में विद्यालय निरीक्षक प्रतिवर्ष की भांति स्कूल का पर्यवेक्षण करने नील सिटी स्कूल आए थे। जैसे ही निरीक्षक केशव की कक्षा में गए, सभी छात्रों ने उठकर एक साथ 'वंदे मातरम्' की जोरदार घोषणा से उनका स्वागत किया

और प्रत्येक कक्षा में इसकी पुनरावृत्ति होती रही। केशव के सहपाठी गोविंद गणेश आवदे ने इस घटना का वर्णन करते हुए लिखा —

'गुस्से से लाल-पीले होकर विद्यालय निरीक्षक प्रधानाध्यापक जनार्दन विनायक ओक के कमरे में गए और बिना बात किए अपनी टोपी (hat) लेकर सीधे चले गए। इसके तुरंत बाद उन्होंने विद्यालय प्रबंध समिति के चेयरमैन सर विपिन कृष्ण बोस को पत्र लिखकर दोषी छात्रों को 'अनुशासनहीनता' के लिए अविलंब सजा देने की मांग की।"[1]

नागपुर के वरिष्ठ राष्ट्रवादी नेताओं को, जिनमें डा. मुंजे भी शामिल थे, इस घटना का पता पहले से नहीं था। नागपुर में हलचल मची, किंतु किसी को यह आशा नहीं थी कि केशव के द्वारा फेंकी गई एक माचिस की तीली पूरे प्रांत में साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन की ज्वाला पैदा कर देगी। सर बोस ने अगले दिन स्कूल में छात्रों को संबोधित करते हुए उन्हें माफी मांगने की हिदायत दी। उन्होंने कहा —'मैं स्वयं रात को सोने से पहले प्रतिदिन वंदे मातरम् गाता हूं लेकिन स्कूल यह गाने के लिए उचित स्थान नहीं है। अत: आप सब अपनी गलती मानकर माफी मांग लें।' जैसे ही उनका भाषण खत्म हुआ, सभी छात्रों ने केशव की अगुआई में और भी तेज स्वर में 'वंदे मातरम्' की घोषणा की और क्रोधित बोस ने केशव की कक्षा के सभी छात्रों को निष्कासित करने के लिए पत्र जारी कर दिया।[2]

स्कूल के अधिकारियों को इसका तनिक भी भान नहीं था कि छात्रों के बीच जबर्दस्त राजनीतिक ध्रुवीकरण हो चुका है। केशव ने आरंभ से अंत तक की योजना अत्यंत ही गोपनीय तरीके से बना रखी थी। विद्यालय प्रबंध समिति के निर्णय के विरुद्ध स्कूल के सभी दो हजार छात्र अनिश्चितकालीन हड़ताल पर चले गए। हड़ताल दो महीने तक चलती रही।[3] इस हड़ताल में नागपुर का मारिस कालेज भी शामिल हो गया। केशव के नेतृत्व में जुलूस, प्रभात-फेरी इत्यादि आम बात बन गईं। अंततः अच्युतराव कोल्हटकर की मध्यस्थता से स्कूल खुला। छात्रों ने समझाने-बुझाने तथा अपने माता-पिता एवं शिक्षकों के

---

1. गोविंद गणेश आवदे, महाराष्ट्र, 28 जुलाई, 1940, पृ. 12
2. वही
3. वही

दबाव में माफी मांग ली। परंतु अकेले केशव ने ऐसा करने से साफ इंकार कर दिया। उन्होंने भरी सभा में कहा :

'अगर मातृभूमि की आराधना अपराध है तो मैं यह अपराध एक नहीं, अनगिनत बार करूंगा और इसके लिए मिलने वाली सजा को भी सहर्ष स्वीकार करूंगा।'[1]

फलतः सितंबर माह में केशव को विद्यालय से निष्कासित कर दिया गया।'[2] केशव ने इसे देशभक्ति का प्रसाद समझकर सहर्ष स्वीकार कर लिया। नागपुर में वह लोकप्रिय युवा नेता के रूप में प्रतिष्ठित हुए। नागपुर में इस घटना के विरोध में छात्रों ने छिटपुट रूप से सरकारी अधिकारियों, यूरोपीय लोगों एवं राजभक्तों को 'वंदे मातरम्' की घोषणा से चिढ़ाना एवं फब्तियां कसना शुरू किया। मध्यप्रांत के मुख्य आयुक्त सर रेजिनलैंड क्राडोक ने पुलिस महानिरीक्षक सी. आर. क्लीवलैंड को पत्र लिखकर नागपुर की स्थिति पर अपनी चिंता जताई। उसने लिखा —'पुलिस नागपुर में छात्रों की गुंडागर्दी से जिस प्रकार निपट रही है, उससे मैं एकदम संतुष्ट नहीं हूं। अगर ऐसे ही चलता रहा तो हमारे सभी सम्मानीय लोग भयभीत होकर नागपुर से भाग जाएंगे।'[3]

पहली गिरफ्तारी

केशव के अध्ययन में एक वर्ष का व्यवधान उत्पन्न हुआ। परंतु उनकी असली पढ़ाई तो क्रांति की भाषा एवं कार्रवाई थी। नागपुर से वह अपने चाचा आबाजी हेडगेवार के पास रामपायली जाया करते थे। वह वहां रिवेन्यू इंस्पेक्टर थे। केशव में समवयस्कों को प्रभावित एवं संगठित कर लेने की अद्‌भुत क्षमता थी। रामपायली में केशव के सहयोगियों का एक अच्छा दल-बल था। घटना 1908 की है। केशव ने अगस्त माह में पुलिस चौकी के ऊपर बम फेंका, जो निकट के तालाब के पास फटा।[4] परंतु कोई ठोस प्रमाण न होने के कारण उन पर

---

1. गोविंद गणेश आवदे, महाराष्ट्र, 28 जुलाई, 1940 पृ. 12
2. पॉलिटिकल क्रिमिनल हू'ज हू, द आफिस ऑफ द डायरेक्टर क्रिमिनल इंटेलिजेंस, जनवरी 1914, पृ. 97, इंडिया हाउस, लंदन; ल. व. परांजपे, 'डा. हेडगेवार यांचा चरित्र व कार्य', केसरी, जुलाई 5, 1940, पृ. 5
3. मध्य प्रदेश में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, पृ. 214-215
4. पॉलिटिकल क्रिमिनल हू'ज हू, वही, पृ. 97

मुकदमा नहीं चलाया गया। फिर दो महीने बाद दशहरे का उत्सव था। इस अवसर पर गांव की सीमा के बाहर सीमोल्लंघन का कार्यक्रम होता था जिसमें बाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी इकट्ठे होते थे। इसमें रावण का पुतला जलाया जाता था। परंतु इस वर्ष के सीमोल्लंघन का चरित्र कुछ और ही था। केशव के साथी पूरे कार्यक्रम पर हावी थे। उन्होंने केशव से एकत्रित विशाल जनमानस को संबोधित करने का आग्रह किया। फिर क्या था? केशव ने धार्मिक अवसर का उपयोग राजनीतिक चेतना जाग्रत करने के लिए किया। अपने उग्र राष्ट्रवादी भाषण से उन्होंने पूरे वातावरण को गर्म कर दिया। उन्होंने लोगों को सीमोल्लंघन का अर्थ तब के संदर्भ में समझाया :

'आज हम अनेक प्रकार की सीमाओं से बंधे हैं। उन्हें पार करना हमारा कर्तव्य है। सबसे बड़ी पीड़ादायक और शर्मनाक बात हमारा परतंत्र होना है। परतंत्र रहना सबसे बड़ा अधर्म है। पापियों एवं परायों का अन्याय सहना भी पाप है। अत: आज विदेशी दासता के विरुद्ध उठ खड़े होना, अंग्रेजों को सात समुद्र पार भेज देना ही सीमोल्लंघन का वास्तविक अर्थ होगा। रावण-वध का आज तात्पर्य अंग्रेजी राज का अंत करना है।'

पूरे वातावरण में 'वंदे मातरम्' गूंजने लगा। प्रशासन एवं पुलिस को जैसे ही सूचना मिली, वे सक्रिय हो गए। यह घटना आगे न बढ़े, इसलिए दमनकारी कार्रवाई शुरू की गई। केशव के दो साथियों—डबीर एवं भगोरे को स्थानीय स्कूल से निकाल दिया गया और केशव पर आपराधिक दंड संहिता की धारा 108 के तहत 'राजद्रोही भाषण' देने के लिए मुकदमा चलाया गया। नवंबर माह में उनकी गिरफ्तारी की गई।[1] परंतु भंडारा जिले के उदारवादी राष्ट्रवादियों, जिनमें प्रतिष्ठित वकील पुरुषोत्तम सीताराम देव भी सम्मिलित थे, की पहल पर उन पर से मुकदमा वापस तो लिया गया परंतु रामपायली में भाषण देने पर एक साल के लिए उन पर प्रतिबंध लगा दिया गया।

सफल विद्यार्थी

केशव ने अपनी लगन, ईमानदारी एवं मेहनत से प्रमाणित कर दिया कि एक सफल क्रांतिकारी सफल विद्यार्थी भी हो सकता है। नागपुर के वरिष्ठ राष्ट्रवादियों ने उनकी शिक्षा की व्यवस्था लोकनायक एम. एस. अणे द्वारा संचालित

1. पॉलिटिकल क्रिमिनल हू' ज़ हू, वही, पृष्ठ 97

यवतमाल की राष्ट्रीय शाला में की। केशव वहां लोकनायक अणे की छत्रछाया में रहने लगे। उनके भोजन की व्यवस्था भी उनके ही घर पर थी। केशव के यहां आने के साथ ही 'बांधव समाज' की भी शाखा खुल गई। विद्यालय के प्रधानाध्यापक दत्तात्रेय विष्णु आपटे थे। विद्यालय के शिक्षकों का भी रुझान क्रांतिकारी विचारधारा के प्रति होना स्वाभाविक ही था। केशव ने विद्यार्थियों के बीच क्रांतिकारी गतिविधियां शुरू कर दीं। सन 1909 में केशव के नामांकन के कुछ ही दिनों बाद यवतमाल की पुलिस चौकी के पास बम फटा। प्रशासन को इसमें इसी विद्यालय के छात्रों के हाथ होने का संदेह था, पर उनके पास प्रमाण नहीं था। विद्यार्थियों पर नजर रखने के लिए स्कूल के पास ही पुलिस चौकी बैठा दी गई। लेकिन इससे केशव को कोई फर्क नहीं पड़ा। उन्होंने लोकमान्य तिलक के राष्ट्रवादी तौर-तरीकों को यहां भी लागू किया। छात्रों ने 5 अप्रैल 1909 को हनुमान जयंती मनाई। इस जयंती के नाम पर अंग्रेजों के खिलाफ क्रांति का आह्वान किया गया। स्वयं अणे ने अपने भाषण में उग्र राष्ट्रवाद को अभिव्यक्त किया। उनके भाषण को आधार बनाकर उनका अधिवक्ता का लाइसेंस 31 मार्च 1910 तक निलंबित कर दिया गया।[1] और कुछ दिनों के बाद राष्ट्रशाला को 1908 के अधिनियम 16 के अंतर्गत गैर कानूनी घोषित करके बंद कर दिया गया।[2]

तब केशव को पूना के समर्थ विद्यालय में भेजा गया और उन्होंने परीक्षा अमरावती के राष्ट्रीय विद्यालय से दी। दिसंबर 1909 में उनका परीक्षाफल घोषित हुआ और वह उच्च अंकों के साथ द्वितीय श्रेणी से उत्तीर्ण हुए। नेशनल कौंसिल आफ एजुकेशन ने उन्हें प्रमाणपत्र जारी किया, जिस पर इसके अध्यक्ष रास बिहारी बोस के हस्ताक्षर थे।

केशव की प्रबल इच्छाशक्ति के सामने पारिवारिक अड़चनें, गरीबी और राज्य का दमन सब पीछे छूट गया।

---

1. प्रोसिडिंग्स, फाइल नं. 162-64. गृह राजनीतिक 'ए' पृष्ठ 7, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली
2. फाइल नं. 26-41 गृह राजनीतिक, भाग 'ए', जून 1910, पृ. 19, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली

क्रांतिकारी जीवन

सन 1909-10 तक बंगाल एवं मध्यप्रांत के क्रांतिकारियों के बीच संबंध गहराने लगा था। क्रांतिकारी गतिविधियों में बंगाल सबसे आगे था और मध्यप्रांत के राष्ट्रवादी नेता अपने प्रांत में आंदोलन को सबल बनाने के लिए बंगाल की ओर ही देख रहे थे। इस बीच दोनों प्रांतों में क्रांतिकारियों का आना-जाना भी शुरू हो गया था। माध्यमिक परीक्षा के बाद हेडगेवार का संपूर्ण समय क्रांतिकारियों के बीच ही बीतने लगा था। जब बंगाल से एक क्रांतिकारी माधवदास संन्यासी नागपुर आए, तब केशव को ही उन्हें भूमिगत रखने की जिम्मेदारी सौंपी गई थी। वह छह महीने तक नागपुर एवं आसपास के क्षेत्रों में रहकर बाद में जापान गए थे। अलीपुर बम केस में फंसे क्रांतिकारियों के बचाव के लिए भी मध्यप्रांत में धन-संग्रह हुआ था और केशव पर नागपुर की जिम्मेदारी थी। इस षडयंत्र में अरविंद घोष का भी नाम शामिल था।

कलकत्ता देश के क्रांतिकारियों के लिए काशी के समान था। केशव के मन में भी कलकत्ता जाकर क्रांतिकारी आंदोलन से जुड़ने की अभिलाषा थी। उन पर सी. आई. डी. एवं पुलिस की निरंतर निगरानी थी। अत: अध्ययन की आड़ में ही वह जाते। सौभाग्य से माध्यमिक परीक्षा में वह अपेक्षित अंक प्राप्त करके द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। पढ़ाई में उनकी रुचि विज्ञान के क्षेत्र में थी। माध्यमिक परीक्षा के बाद केशव ने एक प्राइवेट स्कूल में शिक्षक का काम करके धनोपार्जन अवश्य किया था, परंतु कलकत्ता जैसे महंगे शहर में रहने के लिए इससे कहीं अधिक धन की आवश्यकता थी। उनकी निष्ठा एवं श्रेष्ठता ने प्रांत के तिलकवादी नेताओं का दिल जीत लिया था। वे सब उनके भविष्य के बारे में विचार मंथन में स्वत: ही लगे थे। केशव ने बचपन से अब तक अपनी किसी इच्छा, कठिनाई अथवा कष्ट के बारे में कभी मुंह नहीं खोला था। डा. मुंजे एवं उनके सहयोगी उनके इस स्वभाव से अच्छी तरह परिचित हो चुके थे। सबने मिलकर कलकत्ता में नेशनल मेडिकल कालेज में उनका नाम लिखवाने और वहां लॉज में रहकर अध्ययन एवं अपेक्षित क्रांतिकारी गतिविधियां करने की व्यवस्था की। रामलाल वाजपेयी ने अपने जीवन चरित्र में इस घटना का उल्लेख

करते हुए लिखा है कि उनको कलकत्ता भेजने का असली मकसद क्रांतिकारी संगठन संबंधी जानकारी प्राप्त करना एवं मध्यप्रांत और बंगाल के बीच सेतु का काम करना था। उन्होंने लिखा है— 'श्री केशव हेडगेवार, आर. एस. एस. के संस्थापक, को श्री दाजीसाहब बुटी की कुछ आर्थिक मदद दिलाकर शिक्षा की अपेक्षा पुलिन बिहारी दास (कलकत्ता के क्रांतिकारी) के हाथ के नीचे क्रांति एवं संगठन करने के लिए भेजा गया।' उनके रहने की व्यवस्था कलकत्ता के प्रेम गुजराल मार्ग पर स्थित 'शांति निकेतन' में की गई। स्थान की उपलब्धता न होने के कारण वह एक छोटे-से कमरे में दो अन्य छात्रों के साथ रहने लगे। इनमें एक अमरावती के दादासाहब खापर्डे के सुपुत्र अण्णासाहब खापर्डे एवं दूसरे शंकरराव नाईक थे। रहने और खाने का सुख तो केशव को न तो बचपन में मिला, न ही अब। आगे के जीवन में भी उन्होंने अपने आप को इस भौतिक सुख से वंचित रखने में आनंद का ही अनुभव किया।

नेशनल मेडिकल कालेज की स्थापना डा. एस. के. मल्लिक एवं महाराजा मोनिंद्रा चंद्र नंदी एवं दूसरे राष्ट्रवादी नेताओं की मदद से की गई थी। इस संस्था में देश भर के उन छात्रों को नामांकन दिया जाता था, जिन्होंने 'नेशनल कौंसिल आफ एजुकेशन' के तहत पढ़ाई की थी क्योंकि उन छात्रों का सरकारी मेडिकल कालेज में प्रवेश निषिद्ध कर दिया गया था। नेशनल मेडिकल कालेज में देश भर से छात्र आते थे और इसका अखिल भारतीय चरित्र था। केशव के साथ अनेक मराठा छात्र वहां पढ़ने गए। वाई. एस. अणे, नारायणराव सावरकर, आठवले इत्यादि केशव के मित्रों में से थे।

जब वह कलकत्ता पहुंचे थे तब उस दौरान क्रांतिकारियों पर अंग्रेजी दमन का दौर चल रहा था। सरकार राष्ट्रद्रोही सभा अधिनियम, 1907, आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम, 1908 और इंडियन प्रेस एक्ट, 1910 के द्वारा क्रांतिकारी पत्रों, संगठनों एवं व्यक्तियों को दंडित करने, प्रतिबंधित करने एवं उन पर मुकदमा चलाने का काम कर रही थी। क्रांतिकारी संगठनों को, जिनमें बांधव बर्ती, अनुशीलन साधना समिति, आत्मोन्नति समिति प्रमुख थे, गैर कानूनी घोषित करके सरकार इनके संचालकों एवं कार्यकर्ताओं की धर-पकड़ कर रही थी। ऐसे प्रतिबंधित संगठनों की संख्या पचास थी। अनुशीलन समिति, जिसकी स्थापना 1901 में की गई थी, पूरे बंगाल में सर्वाधिक लोकप्रिय एवं संगठित क्रांतिकारी संस्था थी। इसके संस्थापक पी. मित्रा थे। बंगाल के सभी प्रसिद्ध

क्रांतिकारी इससे जुड़े हुए थे। इनमें अरविंद घोष, विपिनचंद्र पाल, त्रैलोक्यनाथ चक्रवर्ती, नलिनीकिशोर गुह, प्रतुल गांगुली, जोगेश चंद्र चटर्जी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

प्रतिबंध के बाद समिति एक गुप्त संस्था के रूप में परिवर्तित हो गई और इसके प्रमुख नेताओं की गिरफ्तारी के बाद समिति का नेतृत्व स्कूल एवं कालेजों के नौजवानों के हाथों में आ गया। त्रैलोक्यनाथ चक्रवर्ती ने अपनी आत्मकथा 'जेल में तीस वर्ष' में लिखा है कि समिति के सदस्यों में आपसी प्रेम, त्याग की क्षमता एवं गोपनीयता बरतने की आदत के कारण समिति की गतिविधियां सरकारी दमन के बावजूद चलती रहीं।

हेडगेवार कलकत्ता पहुंचते ही अनुशीलन समिति से जुड़ गए। चक्रवर्ती ने लिखा है- 'जब हेडगेवार नेशनल मेडिकल के छात्र थे, तब बंगला में लिखी गई प्रसिद्ध पुस्तक 'बंगलार विल्पववाद' के लेखक नलिनीकिशोर गुह भी वहां पढ़ रहे थे। गुह ने ही हेडगेवार, नारायणराव सावरकर एवं अन्य छात्रों को समिति में प्रवेश दिलाया था।'[1]

हेडगेवार ने जल्दी ही समिति में अपना विश्वसनीय स्थान बना लिया था। उनका लॉज धीरे-धीरे क्रांतिकारी गतिविधियों का केंद्र बन गया। भूमिगत अवस्था में श्यामसुंदर चक्रवर्ती यहां यदा-कदा आया करते थे तो नलिनीकिशोर गुह सहित अनेक क्रांतिकारियों के ठहरने, छिपने, शस्त्रों को सुरक्षित रखने का स्थान भी बन गया था।

गुह ने उनकी भूमिका पर प्रकाश डालते हुए लिखा है- 'हेडगेवार सच्चे अर्थों में आदर्श क्रांतिकारी थे। समिति के सदस्यों के बीच वह रचनात्मक सोच एवं काम के लिए जाने जाते थे।' क्रांतिकारियों के बीच हेडगेवार का छद्म नाम 'कोकेन' था और वे शस्त्रों के लिए 'एनाटोमी' शब्द का प्रयोग करते थे। समिति की प्रतिज्ञा थी कि समिति के अंदर की बात को इसके सदस्य कभी भी किसी को प्रकट नहीं करेंगे। अति गोपनीयता ऐसे कामों का आधार होता था। हेडगेवार की समिति के अंदर क्या भूमिका थी, इस पर ठोस सामग्री का अभाव है। परंतु इस समिति से जुड़े सभी प्रमुख क्रांतिकारियों ने उनकी भूमिका

---

1. त्रैलोक्यनाथ चक्रवर्ती, थर्टी ईयर्स इन प्रिजन, पृ. 277-78, अल्फा बीटा पब्लिकेशन, कलकत्ता, 1963

को सम्माननीय एवं उच्च स्तर का बताया है। जेल में 24 वर्ष व्यतीत करने वाले जोगेश चंद्र चटर्जी ने भी अपनी पुस्तक में उनकी अहम भूमिका स्वीकार की है।[1]

अपने पांच वर्षों के कलकत्ता प्रवास में हेडगेवार वहां के राष्ट्रवादी नेताओं एवं क्रांतिकारियों के बीच एक लोकप्रिय व्यक्ति के रूप में उभरकर सामने आए थे।

श्यामसुंदर चक्रवर्ती का उनके प्रति अगाध प्रेम था। हेडगेवार का उनके घर आना-जाना लगा रहता था। अन्य क्रांतिकारियों की तरह ही चक्रवर्ती की आर्थिक हालत दयनीय थी। उनकी पुत्री के विवाह में उत्पन्न आर्थिक संकट को दूर करने में हेडगेवार ने काफी तत्परता दिखाई। उन्होंने धन-संग्रह करके उन्हें अर्पित किया था। दूसरे प्रमुख राष्ट्रवादी मौलवी लियाकत हुसैन द्वारा आयोजित सभाओं, प्रभात-फेरियों में हेडगेवार अवश्य जाते थे। दोनों के बीच प्रगाढ़ता का ही परिणाम था कि हेडगेवार के निवेदन पर हुसैन ने 'फैज कैप' पहनना बंद करके गांधी टोपी पहनना शुरू कर दिया था।[2]

हेडगेवार मोतीलाल घोष, डा. आशुतोष मुखर्जी जैसे लोगों के निकट रहे और रासबिहारी बोस तथा विपिनचंद्र पाल से भी उनका परिचय हुआ। हरदास ने उनके चरित्र पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि 'हेडगेवार ने अपने सात्विक चरित्र, प्रतिबद्धता और असाधारण संगठन कौशल से नौजवान क्रांतिकारियों का दिल जीत लिया था और उनके प्रति भक्तिभाव रखने वाले देशभक्तों की एक बड़ी जमात थी।'[3]

हेडगेवार बंगाल एवं मध्यप्रांत की क्रांतिकारी गतिविधियों के बीच कड़ी का भी काम कर रहे थे। सन् 1910 से 1915 के बीच बड़ी मात्रा में पिस्तौल एवं अन्य शस्त्र बंगाल से मध्यप्रांत भेजे गए थे। हेडगेवार जब भी नागपुर आते थे तब अपने साथ छिपाकर शस्त्र लाया करते थे।[4]

---

1. जोगेश चंद्र चटर्जी, इन सर्च ऑफ फ्रीडम, पृ. 27
2. अतुल्य रत्न घोष, माडर्न रिव्यू, मार्च 1941
3. बालशास्त्री हरदास, आर्म्ड स्ट्रगल फॉर फ्रीडम, पृ. 373
4. जी. वी. केतकर, रणझुणकर, पी. सी खानखोजेयांचा चरित्र, पृ. 12

मध्यप्रांत की सरकार ने 1912 में इस तथ्य को स्वीकार किया कि नागपुर के आंदोलनकारी बंगाल के क्रांतिकारियों से जुड़े हुए हैं। हेडगेवार पर कड़ी निगरानी रखने के लिए गोपाल वासुदेव केतकर को मध्यप्रांत से कलकत्ता भेजा गया था। वह सरकारी जासूस था और नेशनल मेडिकल कालेज में प्रवेश लेने में सफल हो गया था। परंतु जल्दी ही इस पर से पर्दा उठ गया और केतकर को उपहास एवं शारीरिक प्रताड़ना का सामना करना पड़ा था। नागपुर में पुलिस ने हेडगेवार एवं डा. मुंजे के घरों की दो बार तलाशी ली थी परंतु उन्हें कुछ भी हाथ नहीं लग पाया। इस प्रकार सरकार हेडगेवार के बारे में सब कुछ जानते हुए भी कुछ करने में असमर्थ थी।

क्रांतिकारी आंदोलनों में अपनी भूमिका के साथ-साथ उन्होंने बंगाल के दो जन-आंदोलनों में भी सक्रिय रूप से भाग लिया था। सन् 1911 में दिल्ली दरबार के बहिष्कार आंदोलन में वह शरीक हुए थे तो 1914 में सरकार द्वारा राष्ट्रीय मेडिकल कालेजों की डिग्री न मानने के खिलाफ जबर्दस्त जनमत तैयार करके आंदोलन चलाया था।

सरकार के निर्णय के पीछे नेशनल मेडिकल कालेजों के छात्रों की क्रांतिकारी प्रवृत्ति मुख्य कारण थी। 'आनंद बाजार पत्रिका' ने 16 नवंबर 1915 को संपादकीय लिखकर इस कानून का विरोध किया। पत्रिका के संपादक मोतीलाल घोष ने हेडगेवार को हर तरह की मदद देकर आंदोलन को मजबूत स्वरूप प्रदान किया। सुरेंद्रनाथ बनर्जी भी आंदोलन से जुड़ गए एवं कलकत्ता में विशाल जनसभा आयोजित की गई।

हेडगेवार ने नागपुर पहुंचकर इस आंदोलन के समर्थन में सभा का आयोजन किया और इसमें बिल के खिलाफ प्रस्ताव पारित किया गया।[1] अंततः सरकार को 1916 में ही इस काले कानून को वापस लेना पड़ा।

इन सब गतिविधियों के बावजूद उनकी प्रतिभा परीक्षाओं में चमकती रही। उन्होंने सितंबर 1914 में 70.8 प्रतिशत अंक प्राप्त करके मेडिकल की डिग्री हासिल की। वह हर वर्ष की परीक्षा में अपने उत्तम स्तर का परिचय देते रहे। सन 1911-12 में उन्हें फिजियोलाजी में विशेष योग्यता मिली और 1912-13

---

1. हितवाद, 12 फरवरी 1916, पृष्ठ 7

में उन्हें पुनः यह सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उन्होंने व्यावहारिक चिकित्सक का कार्य करने के बाद 1915 के मध्य में दो महीने तक कलकत्ता के विक्टर अस्पताल में प्रशिक्षण हेतु कार्य किया था। सन 1914-15 तक बंगाल में क्रांतिकारी आंदोलन कमजोर पड़ चुका था। इसका कारण सरकारी दमन के साथ-साथ क्रांतिकारियों में मतभेद, आपसी फूट और हताशा थी। हेडगेवार डाक्टर के रूप में नागपुर लौटकर आए। प्रथम विश्वयुद्ध शुरू हो चुका था और भारतीय राष्ट्रवाद की परीक्षा की घड़ी तथा राष्ट्रवादियों की दूरदृष्टि की परख भी शुरू हो गई थी।

प्रथम विश्वयुद्ध और डा. हेडगेवार

जनवरी 1914 में भारत सरकार के क्रिमिनल इंटेलिजेंस आफिस ने 'भारत के राजनीतिक अपराधियों' की एक पुस्तिका प्रकाशित की। इसमें सिर्फ उन लोगों को शामिल किया गया था 'जो क्रांतिकारी संगठनों और गतिविधियों से जुड़े थे' और 'जिन्हें बम और दूसरे विस्फोटक बनाने आते थे'। यह पुलिस एवं इंटेलिजेंस के बीच 'बुक 1914' के रूप में जानी जाती थी। इसमें मध्यप्रांत से डा. हेडगेवार का नाम शामिल था और उनकी शारीरिक संरचना एवं नील सिटी स्कूल से लेकर अनुशीलन समिति तक की उनकी सभी गतिविधियों की जानकारी उपलब्ध कराई गई थी।

यही कारण है कि प्रथम विश्वयुद्ध शुरू होने के बाद जब उन्होंने 1915 में ब्रिटिश सेना की चिकित्सा सेवा के लिए आवेदन किया तो उनके आवेदन पत्र को बिना कोई कारण बताए लौटा दिया गया था। उस वक्त साम्राज्यवादी सरकार की सेना के चिकित्सा विभाग में चिकित्सकों की सख्त आवश्यकता थी। डा. हेडगेवार ने कलकत्ता में अपने साथियों के साथ योजना बनाई थी कि सेना में घुसकर 1857 की तर्ज पर विद्रोह किया जाए। यह उनके प्रथम विश्वयुद्ध के प्रति दृष्टिकोण को साफ तौर पर प्रतिबिंबित करने वाली घटना है।

सन् 1915 के अंत में वह नागपुर वापस आए। मध्यप्रांत के राष्ट्रवादी नेता भी देश के अन्य राष्ट्रवादियों की तरह साम्राज्यवादी झांसे के शिकार थे। इस बात का भ्रम पैदा किया गया था कि ब्रिटेन विश्वयुद्ध में जीतने के बाद भारत को 'डोमिनियन स्टेटस' प्रदान कर देगा।

महात्मा गांधी एवं बाल गंगाधर तिलक तथा उनके समर्थक दोनों ही युद्ध में ब्रिटेन की सहायता के लिए प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से कार्य कर रहे थे। मध्यप्रांत की तो हालत ही कुछ दूसरी थी। साम्राज्यवादी युद्ध में ब्रिटेन की तरफ से लड़ने के लिए नौजवानों को प्रेरित किया जा रहा था और इसके लिए 'प्रांतीय चयन समिति' में प्रांत के सभी प्रमुख तिलकवादी नेता शामिल थे। जी.एस. खापर्डे इसके अध्यक्ष थे तो डा. मुंजे और नीलकंठराव उधोजी क्रमशः सचिव

एवं उपाध्यक्ष थे।[1] लोगों में इस बात की प्रतिस्पर्धा थी कि कौन कितने लोगों का चयन करने में सफल होता है। डा. मुंजे ने सरकार को पत्र लिखकर यहां तक कहा था कि 'मुझे इस बात का आश्चर्य है कि हमारा प्रांत अकेले ही सुप्रशिक्षित एवं पढ़े-लिखे, तेज एवं गठीले बदन वाले पचास हजार से एक लाख नौजवानों को सेना में क्यों नहीं भर्ती करा सकता है।'[2]

डा. हेडगेवार इससे क्षुब्ध थे, परंतु उनके आत्मविश्वास एवं उत्साह में लेश-मात्र भी कमी नहीं आई। वह अपने मत पर कायम थे कि 'ब्रिटेन का संकट भारत के लिए सुअवसर है।' वह चाहते थे कि ब्रिटेन की सैन्य कमजोरी का लाभ उठाकर देश को पूर्ण स्वतंत्र कराने के लिए संगठित प्रयास होना चाहिए। उन्होंने प्रांत के राष्ट्रवादी नेताओं से संवाद शुरू किया। 'एकला चलो रे' के सिद्धांत को आत्मसात करके डा. हेडगेवार 'सहयोग की जगह विद्रोह' का ध्येय लेकर नि:संकोच एवं निर्भयता के साथ सक्रिय थे। उनके प्रयास से नीलकंठराव उधोजी, एम.आर. चोलकर, भवानीशंकर नियोगी, ल. वा. परांजपे एवं नारायणराव अलेकर ने सरकार की भर्ती प्रक्रिया में विघ्न उत्पन्न करना शुरू कर दिया।[3]

जहां प्रांत के अधिकांश राष्ट्रवादी नेता ब्रिटेन की सफलता के लिए जन एवं धन इकट्ठा करने में लगे हुए थे, वहीं डा. हेडगेवार ने भारत की स्वतंत्रता का लक्ष्य सामने रखकर फरवरी-मार्च 1916 से क्रांतिकारियों एवं साधनों को संगठित करने का महत्वाकांक्षी प्रयास शुरू कर दिया। इस बीच वह तिलक के होम रूल आंदोलन से भी थोड़े समय के लिए जुड़े। परंतु इसके मंचों से उनके द्वारा पूर्ण स्वतंत्रता के उग्र तरीके से प्रतिपादन पर स्थानीय होम रूल नेताओं ने आपत्तियां उठानी शुरू कर दीं। परिणामस्वरूप उन्होंने अपने आप को इससे अलग कर लिया।

विद्रोह की योजना

मध्यप्रांत में सशस्त्र विद्रोह के लिए क्रांतिकारी दल के गठन में उन्हें अपने

1. मुंजे पेपर्स, फाइल नं. 5, 1918-19, नेहरू स्मृति संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली
2. मुंजे पेपर्स, वही
3. हितवाद, 29 जून, 1918, पृ. 7

बचपन के साथी भाऊजी कावरे का सहयोग मिला। वे दोनों एक-दूसरे को 1908 से जानते थे और एक-दूसरे पर भरोसा करते थे। उनके दृष्टिकोणों में भी समानता थी। उन दोनों ने प्रांत का तूफानी एवं व्यापक दौरा शुरू किया। पुलिस को भ्रमित करने के लिए उन्होंने सांस्कृतिक मंच का गठन किया जिसका नाम था 'नरेंद्र मंडल'। इसी के तहत बैठकों का आयोजन किया जाता था। इसके अतिरिक्त विवाह एवं अन्य सामाजिक अवसरों पर भी धन संग्रह का काम किया जाता था।

नागपुर एवं वर्धा में क्रांतिकारियों के चयन एवं प्रशिक्षण के लिए व्यायामशालाओं एवं वाचनालयों की स्थापना की गई। नागपुर में अण्णा खोत एवं वर्धा में हरेकृष्ण जोशी ने इस काम में डा. हेडगेवार की सहायता की। तरुणों के चयन में उनके आत्मविश्वास, उनकी त्याग-क्षमता, साहस और आदेश मानकर काम संपन्न करने की इच्छाशक्ति इत्यादि बातें देखी जाती थीं। एक बार तो तीन तरुणों को कुएं में कूदने का आदेश दिया गया। उनमें से एक तैयार हुआ और दो डर गए। उन्हें मैजिनी एवं जोन आफ आर्क की जीवनी, शिवाजी की यशोगाथा, सावरकर द्वारा रचित 'इंडियन वार ऑफ इंडिपेंडेंस', बंगाल के क्रांतिकारियों की कहानियां इत्यादि साहित्य पढ़ने के लिए दिया जाता था। इस प्रकार डा. हेडगेवार राष्ट्रीय भावना से प्रेरित तरुणों को राष्ट्रवाद के सभी आयामों से परिचित कराकर प्रबल इच्छाशक्ति युक्त क्रांतिकारी बनाना चाहते थे। उन्होंने बंगाल के क्रांतिकारी आंदोलन को नजदीक से देखा था। सिर्फ भावना के उफान में इससे जुड़ने वाले क्रांतिकारी थोड़े दमन अथवा क्षणिक असफलता या किसी सहयोगी से मतभेद के बाद क्रांतिदल छोड़ जाते थे। उन्होंने मध्यप्रांत में सभी कसौटियों पर खरे उतरे 150 क्रांतिकारियों का दल खड़ा किया। नानासाहब टालाटुले, भाऊसाहब टालाटुले प्रशिक्षण देने का काम करते थे। नानासाहब तेलंग, गंगा प्रसाद पांडे एवं वामनराव धर्माधिकारी क्रांतिदल के प्रमुख नेताओं में से थे, जिन्हें डा. हेडगेवार विभिन्न कार्यों के लिए उपयोग किया करते थे।

नानासाहब टालाटुले निशानेबाजी का प्रशिक्षण देने का कार्य करते थे तो धर्माधिकारी को गोवा एवं अन्य स्थानों से शस्त्र लाने के लिए भेजा जाता था। गंगा प्रसाद पांडे को बीस तरुण क्रांतिकारियों के साथ उत्तर भारत भेजा गया। पांडे ने राजस्थान में अजमेर को अपना केंद्र बनाया। वहां के प्रसिद्ध राष्ट्रवादी चांद करण शारदा ने पांडे को भरपूर सहयोग दिया। नागपुर के वरिष्ठ वकील

वी. वी. केलकर भी इस दल से जुड़े थे। बालाजी हुद्दार को इस क्रांति दल से उन्होंने ही जोड़ा था। हुद्दार ने इसे 'गुप्त षडयंत्रकारी दल' की संज्ञा दी है।[1] वर्धा के नानाजी पुराणिक एवं बाबूराव पुराणिक प्रांत में दौरा करके नए तरुणों से संपर्क स्थापित करने का कार्य करते थे। डा. हेडगेवार एवं भाऊजी कावरे प्रशिक्षित तरुणों को शिवाजी एवं समर्थ रामदास के नाम पर देश की स्वतंत्रता के लिए सर्वस्व न्योछावर करने की शपथ दिलाया करते थे।

क्रांतिकारी तरुणों की बैठकें नागपुर में तुलसी बाग, कर्नल बाग, मोहितेवाड़ा एवं मंदिरों में हुआ करती थीं। शस्त्र एकत्र करने के लिए विभिन्न तरीके अपनाए गए थे। वामनराव धर्माधिकारी एवं तेलंग को गोवा में 1917 के अंत में पिस्तौल खरीदने के लिए भेजा गया था। सन 1918 के आरंभ में क्रांतिदल के तरुणों ने सैनिक वेश धारण करके नागपुर से जाने वाली गोला-बारूद की पेटियों को ट्रेन से उतार लिया था। डा. हेडगेवार ने कुछ तरुणों का विशेष रूप से चयन करके उन्हें स्त्री वेश धारण करवाकर कई बार शस्त्रों की चोरी कराई।

डा. हेडगेवार ने पंजाब, राजस्थान एवं कुछ अन्य भागों में क्रांतिकारियों से सफलतापूर्वक संपर्क स्थापित किया था। बंगाल में अनुशीलन समिति के अनेक सदस्य उनके संपर्क में थे। नागपुर में एकत्रित शस्त्रों एवं धन को जरूरत के अनुसार बाहर के केंद्रों पर भेजा जाता था।

उधर विश्वयुद्ध में ब्रिटेन की स्थिति जर्मनी के बाद सुदृढ़ हो गई एवं ब्रिटिश पुलिस का ध्यान भारत के क्रांतिकारी आंदोलन को कुचलने पर केंद्रित होता जा रहा था। डा. हेडगेवार को तिलक से सहयोग की अपेक्षा थी। वह डा. मुंजे का पत्र लेकर उनसे मिलने पूना गए। दो दिनों तक वह उनके साथ रहे।[2] वह चाहते थे कि भारत की पूर्ण स्वतंत्रता की घोषणा देश में क्रांति करने के साथ-साथ विश्व के अनेक हिस्सों में की जाए। इस बात का कोई तथ्य विद्यमान नहीं है कि डा. हेडगेवार का विदेशों में रह रहे भारतीय क्रांतिकारियों से कोई संपर्क था या नहीं। परंतु पी.एस. खानखोजे के जरिए उन्होंने गदर पार्टी

---

1. बालाजी हुद्दार, द आर. एस. एस. एंड नेताजी, द इलस्ट्रेटेड वीकली आफ इंडिया, 7-13 अक्टूबर, 1979. पृ. 23
2. द गजट आफ महाराष्ट्र स्टेट, नागपुर डिवीजन, 1966. पृ. 113

से संभवत: संपर्क बनाया हो। तिलक ने डा. हेडगेवार के प्रस्ताव को अव्यावहारिक बताते हुए अस्वीकार कर दिया।

दूसरी तरफ अनेक सावधानियों के बावजूद कुछ क्रांतिकारियों के व्यवहार एवं चाल-चलन पर डा. हेडगेवार को संदेह होने लगा। बालाजी हुद्दार के अनुसार क्रांतिदल में महात्मा गांधी के विचारों का प्रभाव होने लगा था और क्रांतिकारियों में दो दल बनते जा रहे थे।

डा. हेडगेवार ने, इसके पूर्व कि क्रांति की योजना की सूचना एवं प्रमाण पुलिस के हाथ लगें और निर्दोष देशभक्तों पर साम्राज्यवादी जुल्म हों, सभी साक्ष्यों को मिटाने का कार्य प्रारंभ कर दिया। पहले क्रांतिकारियों को विभिन्न केंद्रों से वापस बुलाया गया, फिर शस्त्रों को नष्ट किया गया। इस कार्य में आप्पाजी जोशी एवं उनके दूसरे विश्वासपात्रों ने मदद की। उनकी मानसिक दशा का अनुमान लगाया जा सकता है जब उन्हें अपने ही हाथों से अपने द्वारा तीन साल के अथक परिश्रम से तैयार योजना, शस्त्रों एवं क्रांतिदल को नष्ट करना पड़ा। लेकिन इस दुखदायी क्षण में भी उनका संतुलन बना रहा।

डा. हेडगेवार साम्राज्यवाद से समझौता या उसके प्रति नरम रुख को राष्ट्रवाद के प्रति अन्याय मानते थे। किसी नेता, संगठन अथवा व्यक्ति के प्रति श्रद्धा की उनकी एक ही कसौटी थी- उसके द्वारा मातृभूमि के लिए त्याग, पूर्ण स्वतंत्रता का समर्थन और नि:स्वार्थ भाव से देश-सेवा। अत: तिलक के प्रति उनके मन में असीम श्रद्धा एवं आदर का भाव होना स्वाभाविक ही था। जब तिलक मांडले जेल में थे, तब उनके कारावास के दौरान डा. हेडगेवार ने उनकी मंगलकामना के लिए एकादशी का व्रत रखा था। वह तिलक की आलोचना बर्दाश्त नहीं कर पाते थे।

प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान उन्होंने यह साबित कर दिया कि वह व्यक्ति नहीं, उसके कर्मों की पूजा करते हैं एवं उनकी किसी व्यक्ति के प्रति श्रद्धा भी उसके अच्छे कर्मों के अनुपात में होती है। इस संबंध में डा. हेडगेवार एवं उनके बालमित्र गोविंद गणेश आवदे का संवाद उनके जीवन-मूल्यों को स्पष्ट रूप से प्रकट करता है। आवदे तिलक की प्रेरणा से ब्रिटेन की सेना में भर्ती हुए थे। हेडगेवार ने इस पर उनसे कहा :

''तुमने यह प्रशिक्षण ब्रिटेन के लिए युद्ध लड़ने के लिए लिया। तुम्हारे

इस सैन्य प्रशिक्षण से देशहित का कुछ लेना-देना नहीं है। अगर तुम युद्ध लड़ने मोर्चे पर गए होते और दुर्भाग्य से मारे जाते तो तुम्हारी मृत्यु को साम्राज्यवाद को मजबूत करने वाला अपवित्र कार्य माना जाता।''

आवदे ने जब प्रत्युत्तर में यह कहा कि उन्होंने 'अपने पूज्य नेता लोकमान्य तिलक की लेखनी से प्रभावित होकर ऐसा किया था' तब डा. हेडगेवार ने उन्हें समझाते हुए कहा - 'लोकमान्य के द्वारा दिए गए सुझाव को भी सोच-विचार कर ही अपनाना चाहिए।'[1]

प्रथम विश्वयुद्ध के प्रति तिलक के दृष्टिकोण से डा. हेडगेवार को असंतुष्टि थी तभी तो 'उनके मन में तिलक के प्रति जो लंबे समय से आदर का भाव था उसमें थोड़ी कमी आ गई।'[2]

डा. हेडगेवार की सशस्त्र क्रांति की योजना भले ही असफल रही, परंतु साम्राज्यवाद के प्रति उनका दृष्टिकोण एवं साम्राज्यवादी युद्ध का उनका मूल्यांकन सत्य साबित हुआ। डा. हेडगेवार शुद्ध राष्ट्रवाद के आधार पर सभी प्रकार के समझौतावादी तौर-तरीकों एवं नेतृत्व को आजीवन अस्वीकार करते रहे।

---

1. गोविंद गणेश आवदे, महाराष्ट्र, 28 जुलाई 1940, पृष्ठ 12
2. डी. वी. केलकर, 'द आर एस. एस.', इकॉनामिक वीकली, 8 फरवरी, 1948

आत्मदर्शन

कलकत्ता में अध्ययन पूरा करके डा. हेडगेवार 1915 के अंत में जब नागपुर वापस आए तब उनके परिवार में आशा एवं खुशी की लहर का कोई ठिकाना नहीं था। छह वर्ष पूर्व वह अपने परिवार को जिस रूप में छोड़कर गए थे उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। परिवार की आर्थिक स्थिति वैसी की वैसी ही थी। जीविकोपार्जन का साधन पौरोहित्य का ही कार्य था। सीताराम पंत परिवार की गाड़ी को किसी तरह खींच रहे थे। अत: परिवार के सदस्य का चिकित्सक बन जाना स्वाभाविक रूप से निर्धन परिवार के लिए खुशी की बात थी।

पूरे मध्यप्रांत में उस समय मात्र 75 चिकित्सक थे। प्रांत की इतनी बड़ी जनसंख्या के लिए यह संख्या बहुत ही कम थी। अत: किसी नए चिकित्सक के लिए अपने व्यवसाय में सफल होना कोई कठिन कार्य नहीं था। परंतु डा. हेडगेवार परिवार की आर्थिक हालत, स्वजनों एवं मित्रों की अपेक्षाओं से तनिक भी विचलित नहीं हुए। किसी संवेदनशील व्यक्ति के लिए यह कितना कठिन निर्णय है कि वह अपने प्रियजनों एवं परिवार को संकट में देखकर भी अपनी ऊर्जा, प्रतिभा और समय का उपयोग धनोपार्जन में न करके समाज एवं राष्ट्र के व्यापक हितों में करता है। निश्चय ही उसके अंदर अध्यात्मजनित देशभक्ति की भावना प्रबल रूप में विद्यमान रहती है। डा. हेडगेवार अपने परिवार से कटे नहीं, और भी जुड़ गए। सीताराम पंत एवं उनकी पत्नी ने उन्हें आदर एवं सम्मान का स्थान दिया। आम्रेन्द्र ने लिखा है कि 'भौतिक संपदाओं की कमी की पूर्ति हृदय की विशालता से हुई।"[1]

व्यक्ति के जीवन में सबसे बड़ा एवं पवित्र साक्षात्कार स्वयं से साक्षात्कार होता है। इसे आत्मबोध एवं आत्मदर्शन कह सकते हैं। व्यक्ति अपने 'स्व' को समझकर अपना मूल्यांकन करता है तो उसे भौतिकता आकृष्ट नहीं कर पाती है। आध्यात्मिक मन एवं शुद्ध चित्त से वह अपनी भूमिका निश्चित कर पाता

---

1. काल, 24 जून 1940

है। डा. हेडगेवार ने भी आत्मसाक्षात्कार किया था तभी तो उनका निर्णय स्वबोध, स्व-विवेक एवं स्वेच्छा से हुआ करता था। किसी मठ अथवा गुरु की शरण में जाकर उन्होंने अध्यात्म की शिक्षा नहीं ली थी। परंतु जो मौलिक चिंतक, उच्च आदर्शों एवं असाधारण इच्छाशक्ति का व्यक्ति होता है वह तो आत्ममंथन की प्रक्रिया से ही अपने नए रास्ते, नई भूमिका एवं नए दर्शन की खोज कर लेता है।

डा. हेडगेवार ने ब्रह्मचर्य का पालन करके पारिवारिक जीवन से दूर रहकर राष्ट्र आराधना का व्रत लिया जिसने उनके परिवार, मित्रों एवं शुभचिंतकों को चिंता एवं आश्चर्य में डुबो दिया। डा. हेडगेवार के विवाह के लिए चौतरफा दबाव पड़ रहा था, परंतु वह तो अपना मार्ग पहले ही निर्धारित कर चुके थे। उनके द्वारा अपने निर्णय से अवगत कराने पर उन्हें समझाने-बुझाने का सिलसिला शुरू हो गया। डा. मुंजे से लेकर उनके 'तीर्थस्वरूप'[1] चाचा आबाजी हेडगेवार ने अपना पूरा जोर लगा लिया, परंतु उनकी रचनात्मक सोच एवं सकारात्मक संकल्प के सामने सभी नतमस्तक हो गए।

उनके सबसे बड़े भाई महादेव शास्त्री की, 1916 के आस-पास नागपुर में फैले प्लेग की बीमारी से मृत्यु हो गई थी। सन 1917 में सीताराम पंत का विवाह हो गया। इसके बाद आबाजी ने एक लंबा पत्र लिखकर डा. हेडगेवार को अपने निर्णय पर पुनर्विचार करने का आग्रह किया। उन्होंने लिखा था — 'परिवार में रहकर भी देश सेवा की जा सकती है। आज के दिन भी ऐसे एक नहीं, अनेक राष्ट्रभक्तों के उदाहरण हमारे सामने विद्यमान हैं। परिवार राष्ट्र कार्य में बाधक होने की जगह जीवन को संपूर्णता देकर उसमें अप्रत्यक्ष रूप से सहायता ही करता है। यह जीवन को संतुलन प्रदान करता है। परिवार को आगे बढ़ाना उतना ही बड़ा दायित्व है जितना देश सेवा करना।'

आबाजी के प्रति डा. हेडगेवार के मन में अपार श्रद्धा थी। दोनों में उतनी ही निकटता थी। आबाजी को डा. हेडगेवार की राष्ट्रभक्ति के कारण सरकारी नौकरी से हाथ धोना पड़ा था। 1908 में रामपायली में जब डा. हेडगेवार पर 'राजद्रोह' का मुकदमा चला था तब से सरकारी कुदृष्टि आबाजी पर थी और उन्हें नौकरी से हटा दिया गया था। आबाजी को न तो नौकरी से हटने का दुख

---

1. डा. हेडगेवार अपने चाचा को 'तीर्थस्वरूप' के संबोधन से पत्र लिखते थे

था न ही हेडगेवार की उग्र राष्ट्रवाद प्रेरित गतिविधियों पर कोई आपत्ति थी। उनके त्याग एवं उनसे हेडगेवार को मिलते रहे संरक्षण के कारण निश्चय ही हेडगेवार पर उनका सबसे अधिक नैतिक अधिकार था। लेकिन डा. हेडगेवार आबाजी के पत्र से तनिक भी विचलित नहीं हुए। उनका निर्णय क्षणिक भावनाओं अथवा वाह्य जगत से प्रेरित नहीं था। उसके पीछे तो स्थायी भाव और भविष्य की चुनौतियों से जूझने का अदम्य आंतरिक बल था। उन्होंने अपने चाचा को लंबे पत्र के द्वारा अपने निर्णय की गहराई से अवगत कराया। उन्होंने लिखा— 'विवाह न करने का निर्णय मैंने सोच-समझकर लिया है। घर-गृहस्थी बसाकर मैं पारिवारिक दायरे में सिमटना, जीविकोपार्जन की चिंता में उलझना नहीं चाहता हूं। मेरे मन में जो भावना है, वह है राष्ट्र के प्रति तन-मन-धन से सेवा करने की। मैं राष्ट्र को विदेशी दासता से मुक्त देखना चाहता हूं। इसीलिए मुझे हिंसा एवं अहिंसा दोनों ही मार्ग प्रिय हैं। हिंदुस्थान की दासता नई नहीं है। दासता की श्रृंखला रही है। ऐसा क्यों? यह प्रश्न मेरे मन को उद्वेलित करता रहता है।

'हम आज यदि परतंत्र हैं तो इसका कारण हमारी कायरता है। हमें एक राष्ट्र, शुद्ध राष्ट्रीयता और भ्रातृत्व का बोध नहीं है। तभी तो मुट्ठी भर अंग्रेजों ने करोड़ों लोगों को गुलामी की जंजीर में बांध रखा है। न सिर्फ क्रांतिकारियों पर जुल्म किए जा रहे हैं, बल्कि महात्मा गांधी के अनुयाइयों को भी यातना दी जा रही है। पंडित अर्जुन लाल शेठी अहिंसावादी हैं और कारावास में उन्हें घोर कष्ट का सामना करना पड़ा।

'मेरे मन में प्रश्न उठता है—क्या हम अंग्रेजों को परास्त नहीं कर सकते हैं? और इसका समाधान मुझे राष्ट्र के लिए सर्वस्व न्योछावर करने में दिखाई पड़ रहा है। मेरे मन, तन, बुद्धि, विवेक, आत्मा सब में एक ही बात का बोध है कि यदि राष्ट्र को संगठित करने, राष्ट्रीयता का प्रसार करने, लोगों में हीनता का भाव दूर करने का कार्य किया जाए तो जीवन का इससे बड़ा सकारात्मक सदुपयोग और कुछ भी नहीं हो सकता है।

'यह सत्य है कि विवाहित रहकर भी नारायणराव, विनायकराव सावरकर, लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी आदि देशभक्तों ने राष्ट्र के लिए अथक कार्य किया है। परंतु मेरे मन की बुनावट भिन्न है। मैं विवाह के लिए एकदम प्रेरित नहीं हो पा रहा हूं। मुझे हर क्षण सामाजिक एवं राष्ट्रीय दायित्वों का बोध होता

रहता है और मैं अपने एक शरीर, एक आत्मा और एक मन को बांट नहीं सकता हूं। मैं विवाह करके किसी कन्या को मेरी बाट जोहने के लिए छोड़ना नहीं चाहता हूं, न ही घर में अंधेरा करके सामाजिक दायित्वों में मग्न रहने की मेरी इच्छा है।

'आज मेरे मन में किसी प्रकार का अंतर्द्वंद्व नहीं है। मैं अपने निर्णय पर अटल हूं। यह निर्णय मेरी प्रकृति के अनुकूल है।'

इस प्रकार उनके परिवार, मित्रों एवं सामाजिक कार्यकर्ताओं ने उनके निर्णय को अंतत: स्वीकार कर लिया। वह संन्यास का जीवन व्यतीत करने में सुख का अनुभव करते रहे। परंतु उन्होंने संन्यासी की एक नई परंपरा को जन्म दिया। वह समाज के बीच रहकर सामाजिक जीवन की वास्तविकताओं, विरोधाभासों और समस्याओं से जूझते रहे।

इस प्रकार उन्होंने अपने सार्वजनिक जीवन को एक नया मोड़ दिया। यह सकारात्मक समर्पण उनके जीवन में अंतिम सांस तक बना रहा। राष्ट्रीय जीवन में उन्होंने अनेक मंचों, मार्गों एवं माध्यमों से अपनी ऊर्जा को राष्ट्र के नाम समर्पित किया था और निष्कलंक रहकर वह सर्वत्र सम्मानित होते रहे। उनकी मृत्यु के बाद 'केसरी' ने उन पर अपने संपादकीय में लिखा था—'चिकित्सा व्यवसाय के लिए पूर्ण रूप से योग्य होने के बावजूद उस व्यवसाय में न जाने एवं विवाह न करने का निर्णय राष्ट्रसेवा के भाव से प्रेरित था और अपने इस व्रत को उन्होंने जीवनपर्यंत निभाया।'[1]

देशभक्ति की कसौटी

वह अपना परिचय 'देशभक्त' विशेषण से कराना अस्वाभाविक मानते थे। जब एक सभा में कहा गया कि 'यह महान देशभक्त हैं' तब उन्होंने कहा—'यह परिचय अपमानास्पद है। यदि कोई मेरा यह परिचय कराए कि 'मैं मनुष्य हूं' तो मुझे कैसा लगेगा? क्या यह अपमानास्पद नहीं होगा? क्या यह न समझा जाए कि मैं मनुष्य हूं — यह खास तौर पर न बताने पर लोग हमें मनुष्य नहीं समझेंगे, ऐसा मुझमें कुछ अवश्य है? इसी तरह 'यह देशभक्त है'—ऐसा कहने

1. केसरी, 25 जून 1940

पर मुझे लगता है कि क्या कुछ दिखाने का यत्न तो नहीं है कि मैं अंदर से ऐसा नहीं हूं। किसी भी देश में जन्म लेने वाला व्यक्ति उस देश का जन्मजात 'भक्त' होता है। और उसे वैसा ही होना चाहिए।'

उन्होंने प्रचलित राजनीतिक जीवन में देशभक्ति का राग अलापने वालों पर टिप्पणी करते हुए कहा कि 'मुझे ऐसा लगता है कि यह प्रथा केवल हमारे देश में है। अन्य किसी भी देश में ऐसी मूर्खतापूर्ण प्रथा संभव नहीं। देशभक्त जन्मते हैं, बनाए नहीं जाते। देशभक्ति का बोध तो मां की गोद से ही होने लगता है। यह स्वयंसिद्ध है।' वह देशवासियों को देशभक्तों एवं गैर-देशभक्तों की श्रेणी में नहीं बांटना चाहते थे। उनका मत था कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता एवं चेतना के अनुसार देश के लिए समर्पित होता है। अत: यह भावना तो सामान्य बात है। यदि कुछ असामान्य है तो 'देशद्रोह', और ऐसे ही मुट्ठी-भर लोगों को समाज के सामने परिचित कराने की आवश्यकता है।

उन्होंने देशभक्ति की दस सूत्री कसौटी बताई है, जो निम्नलिखित है :

- देशभक्ति का अर्थ है—हम जिस भूमि एवं समाज के लिए जन्मे हैं, उस भूमि एवं समाज के लिए आत्मीयता और प्रेम;
- जिस समाज में हमारा जन्म हुआ है, उसकी परंपरा एवं संस्कृति के प्रति लगाव एवं आदर;
- समाज के जीवन-मूल्यों के प्रति विवेकपूर्ण निष्ठा;
- समाज/राष्ट्र के उत्कर्ष, विकास के लिए सर्वस्व समर्पण करने के निमित्त उत्स्फूर्त करने वाली प्रेरणा शक्ति;
- व्यक्ति निरपेक्ष रहकर समष्टिनिष्ठ जीवन का पवित्र गंगा प्रवाह;
- भौतिकताओं से दूर रहकर मातृभूमि और उसकी संतानों की नि:स्वार्थ सेवा;
- व्यक्तिगत आकांक्षाओं से अधिक राष्ट्र की आवश्यकताओं एवं अपेक्षाओं को महत्व;

- मातृभूमि के चरणों में अनन्य नि:स्वार्थ, कर्तव्य कठोर जीवन कुसुमों की मादक सुगंध भरना;
- समाज एवं राष्ट्र को ही सर्वोच्च देवी-देवता मानकर उसी की आराधना करना; और
- संपूर्ण समाज में एकात्म-भाव का आविष्कार करना।

इन्हीं कसौटियों पर वह संगठनकर्ता एवं संघर्षशील व्यक्ति के रूप में कार्य करते रहे।

कांग्रेस में प्रवेश

क्रांतिकारी योजना में विफलता एवं इस मार्ग की सीमाओं को देखने के बाद डा. हेडगेवार ने संगठित जन-आंदोलनों का मार्ग स्वीकार किया। वह कांग्रेस के सदस्य बने और प्रथम विश्वयुद्ध के बाद उन्होंने इसी के मंच से जन-जाग्रति का कार्य आरंभ किया। मध्यप्रांत कांग्रेस पर लोकमान्य तिलक के अनुयाइयों का वर्चस्व था। ये सभी 'राष्ट्रीय मंडल' नामक संस्था की मार्फत कार्य करते थे। इसकी स्थापना नीलकंठराव उधोजी ने 1907 में की थी। तिलक के सभी प्रमुख समर्थक इससे जुड़े हुए थे। इनमें डा. मुंजे, डा. ना.भा. खरे, विश्वनाथराव केलकर, गोपालराव बुटी, डा. ल. वा. परांजपे, नारायणराव केलकर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। सन 1909 में सरकार ने मंडल पर प्रतिबंध लगाया था और प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान प्रतिबंध उठा लिया गया था।

जब डा. हेडगेवार कलकत्ता से नागपुर आए, तब उन्हें राष्ट्रीय मंडल में शामिल कर लिया गया। डी.वी. केलकर के अनुसार वह डा. हेडगेवार के साथ मंडल के 'सहायक सदस्य' थे।[1] परंतु मंडल की राजनीतिक सोच, व्यवहार एवं महात्मा गांधी के प्रति इसके दृष्टिकोण से डा. हेडगेवार की असहमति थी। मंडल का पुराना ठेठ साम्राज्यवाद-विरोधी चरित्र अब नहीं था। इसके सदस्य ब्रिटिश राजसत्ता के साथ नरमी का रुख अपनाने लगे थे। विश्वयुद्ध के दौरान इसी कारण इस पर से प्रतिबंध हटाया गया था। फलस्वरूप डा. हेडगेवार ने 1919 के मध्य में मंडल के अनेक सदस्यों के साथ 'नागपुर नेशनल यूनियन' नामक अलग संस्था की स्थापना की। ना.भा. खरे, विश्वनाथराव केलकर, बलवंतराव मंडलेकर, मनोहर पंत, बोबड़े, चोरघड़े आदि मंडल के सदस्य यूनियन में शामिल हो गए। मंडल एवं यूनियन में दो मुख्य अंतर थे। जहां मंडल दिन-प्रतिदिन की राजनीति में लिप्त था, वहीं यूनियन को इससे अलग रखा गया।

---

1. डी. वी. केलकर, द आर.एस.एस., इकॉनॉमिक वीकली, 4 फरवरी 1950, पृ. 132 केलकर प्रसिद्ध पत्रकार थे जिनका आरंभिक वर्षों में संघ से संबंध था, परंतु बाद में वह मतांतर के कारण इससे अलग हो गए थे।

मंडल 'पूर्ण स्वतंत्रता' के संबंध में मौन था तो यूनियन का मुख्य उद्देश्य पूर्ण स्वतंत्रता की मांग एवं अवधारणा का प्रचार-प्रसार करना था। डा. हेडगेवार ने यूनियन की स्थापना करते हुए कहा था—'यह अत्यंत ही खेदजनक है कि राष्ट्रवादी लोग भारत के हित एवं साम्राज्यवादियों के हितों में अंतर नहीं कर पाए। अगर साम्राज्यवादी इतने ही अच्छे हैं तो भारत को गुलाम क्यों बना रखा है? आज की राजनीति में अनेक न्यूनताएं हैं एवं उन न्यूनताओं को दूर करने के लिए सामूहिक प्रयास आवश्यक है।'

जब दिसंबर 1919 में सरकार ने लोगों से 'शांति दिवस' मनाने की अपील की, तो यूनियन ने इसका विरोध किया। इसके द्वारा 'विरोध दिवस' मनाया गया। इसके द्वारा निकाले गए पर्चे में यह प्रश्न किया गया : 'क्या हम शांति दिवस मना सकते हैं?' यूनियन की लोकप्रियता नागपुर के युवकों में दिनोंदिन बढ़ती गई।

संकल्प

कांग्रेस में डा. हेडगेवार की सक्रियता बढ़ने के साथ उन्हें दायित्व भी मिलने लगा था। मध्यप्रांत में चौदह हिंदी भाषी जिले थे और चार मराठी भाषी। परंतु कांग्रेस के पास एक भी हिंदी पत्र-पत्रिका नहीं थी। प्रांतीय कांग्रेस की तीन सदस्यों वाली एक समिति ने हिंदी साप्ताहिक 'संकल्प' के प्रकाशन का निर्णय लिया। दिनांक 1 फरवरी 1919 को सभी जिला इकाइयों को परिपत्र के द्वारा इसकी सूचना दी गई। डा. हेडगेवार को 'संकल्प' के लिए ग्राहक बनाने एवं उनसे पत्रिका के लिए तीन वर्षों का अग्रिम शुल्क इकट्ठा करने की जिम्मेदारी सौंपी गई। डा. हेडगेवार ने पूरे प्रांत का दौरा शुरू किया। यह कार्य थोड़ा कठिन था क्योंकि पहले अनेक पत्र-पत्रिकाएं लोगों से अग्रिम शुल्क लेने के बाद बंद हो चुकी थीं; अत: लोगों के मन में विश्वसनीयता का संकट था। डा. हेडगेवार ने डा. मुंजे को पत्र लिखकर अपने अनुभवों से अवगत कराया— 'लोग तीन वर्षों के लिए अग्रिम शुल्क देना पसंद नहीं करते हैं। इसका कारण है कि पहले सार्वजनिक उद्देश्यों से जमा किए गए धन का उचित ढंग से उपयोग नहीं हो पाया।'[1]

---

1. मुंजे पेपर्स, डा. हेडगेवार द्वारा मुंजे को पत्र, 24 फरवरी 1919

इसके बावजूद उन्होंने अपनी तर्कशक्ति, वाक्पटुता एवं परिश्रम के द्वारा प्रांत के द्वारा निश्चित धनराशि से कहीं ज्यादा धन इकट्ठा करने में सफलता हासिल की। खंडवा में उन्होंने चालीस ग्राहक बनाए तो सागर में बीस एवं दमोह में तीस ग्राहक। दिनांक 2 अप्रैल एवं 25 अप्रैल को उन्होंने डा. मुंजे को क्रमशः पांच सौ एवं छह सौ रुपये भेजे। तीन महीने में उन्होंने दूर-दराज के गांवों का दौरा किया। कई स्थानों पर उन्हें एक भी परिचित व्यक्ति नहीं मिला। परंतु वह एक हजार ग्राहकों को आकृष्ट करने में सफल रहे।[1] कई स्थानों पर पहुंचने के लिए उन्हें बैलगाड़ी का सहारा लेना पड़ा। उदाहरणार्थ, नरखेड, पाटन आदि स्थानों पर वह घंटों बैलगाड़ी में बैठकर पहुंचे। कार्य की सफलता से उनकी लोकप्रियता तो बढ़ी ही, उन्हें पहली बार राजनीतिक कार्यकर्ताओं, राजनीतिक-सांस्कृतिक एवं प्रचलित शौकिया राष्ट्रभक्ति को समझने का अवसर मिला। उन्हें जिस प्रकार के प्रश्नों, परिस्थितियों, परिवेश एवं प्रकरणों की जानकारी मिली उससे उन्हें भारतीय राष्ट्रवाद, कांग्रेस संगठन एवं इसके स्थानीय नेतृत्व की क्षमता, सार्वजनिक जीवन में व्याप्त न्यूनताओं का भान भी होता रहा। जीवन के आरंभिक वर्षों में क्रांतिकारियों के बीच रहने के कारण जन-आंदोलन के व्यावहारिक पक्ष से वह पूर्णतः अवगत नहीं थे। डा. हेडगेवार ने एक पत्र में डा. मुंजे को अपने अनुभव के आधार पर लिखा—'कांग्रेस के नेता बहुत अच्छे वक्ता हैं और वे पहले ही भाषण में लोगों को मोहित कर लेते हैं, परंतु दो-तीन दिनों के बाद लोगों के मन से उनके भाषण का असर समाप्त हो जाता है क्योंकि कांग्रेसी नेता धनोपार्जन में व्यस्त रहते हैं।'

उनका अनुभव था कि कांग्रेस द्वारा राजनीतिक प्रशिक्षण का कार्य नहीं हो पाया है। उन्होंने एक दूसरे पत्र में एक कांग्रेस कार्यकर्ता मजूमदार वकील का उदाहरण देकर उस वृत्ति की ओर ध्यान दिलाया कि 'लोग सार्वजनिक कार्य स्वयं न करके दूसरों के द्वारा करवाने की मंशा रखते हैं।' उन्होंने ब्रह्मपुर में सभा की। इस सभा में 11 अधिवक्ता भी थे जो कांग्रेस में विभिन्न पदों पर आसीन थे। पर उनमें से किसी को तात्कालिक राजनीतिक घटनाचक्र का ज्ञान नहीं था। डा. हेडगेवार ने कांग्रेस संगठन की एक और कमजोरी की ओर डा. मुंजे का ध्यान खींचा। उन्होंने हरदा की घटना के द्वारा अपनी बात रखी। जब वह वहां कांग्रेस के नेता डा. साल्पेकर के पास पहुंचे तो साल्पेकर ने उनसे

---

1. मुंजे पेपर्स, व्यक्तिगत डायरी, नेहरू स्मृति संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली

'तुरंत दूसरी ट्रेन से चले जाने का आग्रह किया क्योंकि उन पर पुलिस की निगरानी थी।' परंतु डा. हेडगेवार को इन बड़े नामों की जगह कम प्रसिद्ध एवं सामान्य लोगों से अधिक सहायता मिली। जब साल्पेकर ने डा. हेडगेवार को किसी प्रकार की सहायता करने से इंकार कर दिया तब स्थानीय होमरूल इकाई के सचिव शंकर पंत ने निर्भय होकर उनकी मदद की।

डा. हेडगेवार को जो अनुभव प्राप्त हुए, वह उनकी राजनीतिक शिक्षा थी जिसका उपयोग उन्होंने आगे के वर्षों में सार्वजनिक गतिविधियां करने में किया।

कांग्रेस अधिवेशन

दिसंबर 1920 में कांग्रेस का बीसवां अधिवेशन नागपुर में होना निश्चित हुआ। यह नागपुर के लिए सम्मान का विषय था। इसके पूर्व 1907 में यहां कांग्रेस का अधिवेशन तिलक के अनुयाइयों एवं उदारवादियों के बीच भीषण टकराव की स्थिति अवश्यंभावी होने के कारण टालना पड़ा था। यह अधिवेशन कई कारणों से महत्वपूर्ण था। साम्राज्यवाद एवं राष्ट्रवाद के बीच युद्धकाल में आई नरमी समाप्त हो चुकी थी। कांग्रेस संघर्ष के लिए तैयार थी। सितंबर 1920 में कलकत्ता में आयोजित विशेष अधिवेशन में असहयोग आंदोलन के प्रस्ताव को पारित किया जा चुका था।

दूसरी महत्वपूर्ण घटना थी—लोकमान्य तिलक की अनुपस्थिति। दिनांक 1 अगस्त 1920 को उनकी मृत्यु ने तिलकवादियों की मंशा पर पानी फेर दिया था। वे उन्हें कांग्रेस का अध्यक्ष बनाना चाहते थे। महात्मा गांधी भारतीय राजनीति के शिखर पुरुष के रूप में स्थापित हो चुके थे। नागपुर कांग्रेस के सम्मुख सबसे बड़ा प्रश्न था कि कांग्रेस का अगला अध्यक्ष कौन हो?

नागपुर नेशनल यूनियन ने इस दिशा में पहल की। अगस्त के प्रथम सप्ताह में ही डा. हेडगेवार ने अरविंद घोष को कांग्रेस का नया अध्यक्ष बनाने का प्रस्ताव किया जिसे यूनियन ने एकमत से स्वीकार कर लिया। बाद में प्रांतीय कांग्रेस ने भी इस पर अपनी सहमति प्रकट कर दी। डा. हेडगेवार कांग्रेस की नागपुर शहर इकाई के संयुक्त सचिव थे। उनके आग्रह पर डा. मुंजे और वह स्वयं श्री अरविंद से मिलने अगस्त माह में पांडिचेरी गए, जहां वह 1910 से संन्यासी का जीवन व्यतीत कर रहे थे।

दोनों ने उन्हें सक्रिय राजनीति में लौटने एवं कांग्रेस की कमान संभालने के लिए मनाने का प्रयास किया परंतु श्री अरविंद ने साफ इंकार कर दिया। बार-बार आग्रह के बाद श्री अरविंद ने डा. मुंजे को 30 अगस्त 1920 को पत्र लिखकर अपनी असमर्थता व्यक्त की। डा. हेडगेवार ने लोगों से अरविंद घोष को पत्र एवं टेलीग्राम भेजकर अपने निर्णय पर पुनर्विचार का आग्रह करने के लिए प्रेरित किया। तब उन्होंने 20 सितंबर 1920 को टेलीग्राम द्वारा जवाब दिया—'पुनर्विचार असंभव है।'

डा. हेडगेवार कांग्रेस अधिवेशन के लिए बनाई गई स्वागत समिति के सदस्य थे। प्रांतीय कांग्रेस ने अध्यक्ष पद के लिए अरविंद घोष, विजयराघवाचार्य, चित्तरंजन दास, मुहम्मद अली एवं क्रांतिकारी श्यामसुंदर चक्रवर्ती का नाम सुझाव के रूप में रखा।

पंजाब, बिहार, दिल्ली, मध्यप्रांत, मद्रास, मुंबई और संयुक्त प्रांत ने विजयराघवाचार्य के नाम का समर्थन किया। डा. मुंजे का भी उन्हें समर्थन प्राप्त था। 10 अक्टूबर 1920 को स्वागत समिति की बैठक नागपुर में हुई। इसमें पूरे प्रांत से 550 प्रतिनिधि शामिल थे। इस बैठक में डा. हेडगेवार ने विजयराघवाचार्य के नाम का विरोध किया। उनके विरोध का आधार सैद्धांतिक एवं भावनात्मक दोनों था। उन्होंने कहा कि जब जालियांवाला बाग की घटना से पूरा देश साम्राज्यवादी निर्ममता के खिलाफ आक्रोश में डूबा हुआ था तब विजयराघवाचार्य मद्रास प्रांत के राज्यपाल के आमंत्रण पर 'चाय पार्टी' में शरीक हुए थे।

उन्होंने प्रश्न किया – 'देश की भावनाओं और साम्राज्यवाद के चरित्र को न समझने वाला व्यक्ति कांग्रेस का अध्यक्ष कैसे हो सकता है?'

डा. मुंजे के प्रयास के बावजूद वह अपने मत पर टिके रहे। उनका मानना था कि कांग्रेस का अध्यक्ष बेदाग व्यक्ति को होना चाहिए 'जिसके चरित्र पर कोई प्रश्न उठाने की हिम्मत न कर सके।' उन्होंने श्यामसुंदर चक्रवर्ती का नाम प्रस्तावित किया, परंतु बहुमत मुंजे के साथ था। अंततः विजयराघवाचार्य का नाम अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के पास अध्यक्ष पद के लिए भेज दिया गया।

डा. हेडगेवार द्वारा उनके विरोध का एक सैद्धांतिक पक्ष भी था। विजयराघावाचार्य असहयोग की अवधारणा से पूरी तरह से सहमत नहीं थे। वह छात्रों को राजनीतिक आंदोलन से जोड़ने के विरोधी थे। डा. हेडगेवार के पक्ष

में स्वागत समिति के युवा सदस्यों ने समर्थन किया। उनके समर्थन में कई पत्रों ने संपादकीय लिखे। मुंबई से प्रकाशित 'संदेश' ने विजयराघवाचार्य के नाम पर बहुमत होने को दुर्भाग्यपूर्ण बताते हुए लिखा था— 'एक अयोग्य व्यक्ति कांग्रेस का अध्यक्ष हो गया।'[1] इसी प्रकार 'महाराष्ट्र' ने भी उनका विरोध किया। कांग्रेस अधिवेशन में विजयराघवाचार्य के भाषण से डा. हेडगेवार की उनके बारे में शंका की पुष्टि हो गई। उन्होंने अध्यक्षीय भाषण में न्यायालय, स्कूल-कालेजों के बहिष्कार पर प्रश्न खड़ा किया। तब 'इंडियन रिव्यू' ने लिखा कि कांग्रेस अध्यक्ष ने विरोधाभासपूर्ण भाषण दिया है।[2] एक दूसरे पत्र 'जन्मभूमि' की टिप्पणी थी कि 'हम यह नहीं समझ पा रहे हैं कि कांग्रेस अध्यक्ष ने असहयोग आंदोलन के समर्थन में अपना भाषण किया है या इसके विरोध में!'

लेकिन एक बार जब वह अध्यक्ष निर्वाचित हो गए, तो डा. हेडगेवार ने अपनी शंकाओं को अधिवेशन की तैयारी में अवरोध नहीं बनने दिया। उन्हें महत्वपूर्ण जिम्मेदारियां सौंपी गईं। वह स्वयंसेवक समिति, सफाई समिति और विषय समिति के सदस्य बनाए गए। इसमें स्वयंसेवक समिति पर पूरे देश से आए प्रतिनिधियों की व्यवस्था, अधिवेशन को सुचारु रूप से चलाने में सहायता देने की जिम्मेदारी थी। इस समिति में डा. ल. वा. परांजपे, हरकरे और डी. वी. देशमुख भी सदस्य थे। लेकिन डा. हेडगेवार इनमें सबसे कम उम्र के थे और स्वेच्छा से पूर्णकालिक कार्यकर्ता के रूप में कार्य कर रहे थे। अतः मुख्य जिम्मेवारी उन्हीं पर थी। उन्होंने 1200 स्वयंसेवकों की भर्ती एवं प्रशिक्षण देने का कार्य किया। नागपुर अधिवेशन अब तक का सबसे बड़ा अधिवेशन था। इसमें तीस हजार लोगों ने भाग लिया था, जिसमें बीस हजार प्रतिनिधि थे। डा. हेडगेवार एक सफल संगठनकर्ता के रूप में सामने आए। स्वयंसेवक समिति को मिल रही बधाई एवं धन्यवाद के वह असली हकदार थे। कार्य की श्रेष्ठता, नेतृत्व द्वारा सराहना एवं प्रतिनिधियों की शाबाशी से वह फूले नहीं। उन्होंने अपनी प्रसिद्धि का उपयोग पद-प्राप्ति के लिए नहीं किया। वह कांग्रेस के सामान्य पदाधिकारी के रूप में कार्य करते रहे। कांग्रेस अधिवेशन में डा. हेडगेवार ने विषय समिति की बैठक में एक समानांतर प्रस्ताव प्रस्तुत किया इस प्रस्ताव में कांग्रेस के उद्देश्य को पुनः परिभाषित करते हुए कहा गया था

---

1. 'महाराष्ट्र' के 20 अक्टूबर 1920 के अंक में पृ. 4 पर इनका पुनःप्रकाशन
2. इंडियन रिव्यू, जनवरी 1921, पृ. 36-37 (मद्रास से प्रकाशित)

कि 'इसका उद्देश्य भारतीय गणतंत्र की स्थापना करना एवं पूंजीवादी अत्याचार से राष्ट्रों को मुक्त कराना है।' यह प्रस्ताव नामंजूर तो हो गया, परंतु डा. हेडगेवार ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को विश्व के सभी पीड़ित, शोषित एवं साम्राज्यवादी शिकंजे में आए राष्ट्रों से जोड़ने का प्रयास किया था। 'माडर्न रिव्यू' ने लिखा था : 'But the proposed resolution, which excited laughter among serious minded people, deserved a better fate than what it met with the subject Committee.[1] इस पत्र ने आगे लिखा कि नागपुर कांग्रेस स्वागत समिति में 'रिपब्लिकन' चरित्र वाले लोग विद्यमान हैं।

नागपुर कांग्रेस के बाद डा. हेडगेवार प्रांत के महत्वपूर्ण नेताओं में गिने जाने लगे थे। अप्रैल 1921 में वह मध्यप्रांत के 12 सदस्यों वाले 'तिलक स्वराज्य फंड' के लिए चुने गए थे। मई महीने में वह नागपुर जिला कांग्रेस के लिए चुने गए। उनकी लोकप्रियता कितनी थी, इसका पता असहयोग आंदोलन के दौरान उनकी भूमिका से चलता है।

1. माडर्न रिव्यू, मार्च 1921

असहयोग आंदोलन

प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ डा. हेडगेवार के पूर्ण असहयोग एवं क्रांति के दृष्टिकोण को भले ही प्रांतीय एवं राष्ट्रीय नेताओं का समर्थन नहीं मिला था, परंतु युद्ध समाप्ति के बाद पूरे मध्यप्रांत में उनकी सराहना की गई। साम्राज्यवाद के प्रति किसी भी प्रकार की सहानुभूति रखना राष्ट्रवाद के साथ बेमानी था। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद साम्राज्यवादी दमन का सिलसिला पुन: शुरू हो गया। रॉलेट बिल एवं जालियांवाला बाग की निर्मम घटना से संपूर्ण देश स्तब्ध था। लोगों में आक्रोश की भावना का संचार हो रहा था। स्वतंत्रता आंदोलन से प्राय: दूर रहने वाला मुस्लिम समुदाय भी ब्रिटेन से विक्षुब्ध था। इसका कारण तुर्की के खलीफा के साथ ब्रिटेन द्वारा किया गया अन्याय था। खलीफा मुसलमानों के धार्मिक नेता के रूप में प्रतिष्ठित थे। Pan Islam के सिद्धांत के तहत खलीफा से भारतीय मुसलमानों की भी सहानुभूति थी। उनके समर्थन में भारतीय मुसलमानों का नेतृत्व एक स्वर से आवाज उठाने लगा था। महात्मा गांधी ने इसे साम्राज्यवाद-विरोधी आंदोलन के सामाजिक आधार को विस्तृत करने के अच्छे अवसर के रूप में देखा। उन्होंने 'आहत' मुस्लिम मन को असहयोग आंदोलन से जोड़ने का काम किया। इसके पीछे उनकी भावना हिंदू और मुस्लिमों के बीच भाईचारा एवं एकता स्थापित करने की थी। गांधीजी की कल्पना के अनुसार आंदोलन शुरू हुआ। कोर्ट, कालेज एवं कौंसिल (विधायिका) का बहिष्कार, सरकारी पदवी लौटाना एवं शांतिपूर्ण ढंग से सरकार का हर स्तर पर विरोध आंदोलन के प्रमुख कार्यक्रम थे।

मध्यप्रांत में स्वराज्य पार्टी का राजनीतिक दबदबा था और असहयोग आंदोलन के प्रति अनेक आशंकाएं एवं आपत्तियां व्यक्त की जा रही थीं। स्वराज्य पार्टी के एक प्रमुख नेता बी. जी. खापर्डे ने तो महात्मा गांधी को पत्र लिखकर सूचित कर दिया कि 'यदि आप यह अपेक्षा करते हैं कि आपके सिद्धांतों को स्वीकार करके मैं असहयोग आंदोलन का समर्थन करूं तो ऐसा करने में मैं पूरी तरह असमर्थ हूं।' यहां तक कि डा. मुंजे ने भी आंदोलन के प्रति अपनी आपत्तियों को सार्वजनिक रूप से अभिव्यक्त किया था। इन सबका

यह मानना था कि महात्मा गांधी मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति अपनाकर आंदोलन का विस्तार करना चाहते हैं। मध्यप्रांत के मराठी क्षेत्रों में आंदोलन कितना सशक्त हो पाएगा, यह एक प्रश्न बनता जा रहा था।

परंतु डा. हेडगेवार ने एम. आर. चोलकर, समीमुल्ला खां एवं अपने अन्य समवयस्क नेताओं के साथ पूरे परिवेश को ही बदल दिया। नागपुर एवं अन्य मराठी जिलों में आंदोलन को अनपेक्षित और अभूतपूर्व सफलता मिली। डा. हेडगेवार ने अपने व्यक्तिगत एवं सामाजिक संबंधों से अलग हटकर तात्कालिक राष्ट्रीय परिस्थिति का विश्लेषण किया। उनके आगे के जीवन की गतिविधियों को देखकर इस बात का अनुमान तो लगाया ही जा सकता है कि खिलाफत के मुद्दे को राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़ने के बारे में उनकी आपत्ति रही होगी; परंतु उन्होंने अपनी आपत्ति को कभी सार्वजनिक रूप से व्यक्त किया हो, इसका कोई प्रमाण विद्यमान नहीं है। उनका किसी संस्था अथवा आंदोलन में सक्रिय होने का एक ही मापदंड था- साम्राज्यवाद का विरोध। उनके विवेक ने उन्हें असहयोग आंदोलन में तन-मन से भाग लेने के लिए प्रेरित किया तो उन्होंने अपने आस-पास के राजनीतिक वातावरण एवं दबंग तिलकवादियों के दृष्टिकोण की तनिक भी चिंता नहीं की। यही है स्वचेतना, संकल्प एवं शुद्ध राष्ट्रभक्ति का पर्याय। उन्होंने प्रश्न किया कि 'क्या व्यक्तिगत अथवा सैद्धांतिक मतभेदों के कारण साम्राज्यवाद-विरोधी लड़ाई में तटस्थ अथवा निष्क्रिय रहना नैतिक है?' अत: उन्हें महात्मा गांधी के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करने एवं उनके नेतृत्व को स्वीकार करने में तनिक भी हिचक नहीं हुई। उनका तो एक ही मकसद था- हर अवसर एवं हर मार्ग का उपयोग राष्ट्रवाद को मजबूत करने एवं साम्राज्यवाद को कमजोर करने में किया जाना चाहिए। इस प्रकार तत्कालीन राजनीति में प्रचलित परिभाषाओं के अनुसार अब वह 'तिलकवादी' से गांधीवाद के पक्षधर बनने लगे।

डा. हेडगेवार का सार्वजनिक जीवन, राजनीतिक दृष्टिकोण, दर्शन एवं नीतियां तिलक अथवा गांधी, हिंसा अथवा अहिंसा का मार्ग, कांग्रेस अथवा क्रांतिकारी आंदोलन—इन संकीर्ण विकल्पों के आधार पर निर्धारित नहीं होती थीं। उनके अब तक के जीवन में व्यक्ति अथवा किसी विशिष्ट मार्ग से कहीं अधिक महत्वपूर्ण स्वतंत्रता-प्राप्ति का मूल ध्येय था। वह सभी राष्ट्रवादी नेताओं, संस्थाओं एवं आंदोलन के तरीकों को एक-दूसरे का पूरक मानते थे और उनका

मत था कि बिना पूर्वाग्रह के सभी राष्ट्रवादियों को एक-दूसरे की मदद करनी चाहिए एवं वादों की संकीर्णता से बचना चाहिए।

एक उदाहरण उल्लेखनीय है। सन 1921 में जब प्रांतीय कांग्रेस की बैठक में क्रांतिकारियों की निंदा करने वाला प्रस्ताव रखा गया तब डा. हेडगेवार ने उसका जबर्दस्त विरोध किया, फलस्वरूप प्रस्ताव वापस लेना पड़ा। बैठक की अध्यक्षता लोकमान्य अणे ने की थी। उन्होंने बाद में लिखा—'डा. हेडगेवार क्रांतिकारियों की निंदा एकदम पसंद नहीं करते थे। वह उन्हें ईमानदार देशभक्त मानते थे। उनका मानना था कि कोई उनके तरीकों से मतभिन्नता रख सकता है, परंतु उनकी देशभक्ति पर उंगली उठाना अपराध है।' ऐसी दर्जनों घटनाएं उनके जीवन में घटी हैं। अतः न तो वह तिलकवादी थे और न ही गांधीवादी। उनके लिए किसी वाद का यदि उपयोग किया जा सकता है तो यह कहना उचित होगा कि वह स्वतंत्रतावादी थे।

जब व्यक्ति शुद्ध मन, निःस्वार्थ भाव एवं प्रतिबद्धता के साथ देशभक्ति को अपने जीवन में उतारता है तो इतिहास हर मोड़ पर ऐसे व्यक्ति का समादर करता है और भविष्य में पीढ़ियां उसे अपना आदर्श मानती हैं। तभी तो डा. हेडगेवार ने नागपुर एवं मराठी मध्यप्रांत में राजनीति की पूरी तस्वीर ही बदल दी।

नागपुर नेशनल यूनियन

असहयोग आंदोलन में उनकी भागीदारी परिस्थिति से उत्पन्न उत्तेजनावश न होकर एक सोचा-समझा हुआ कदम था। नागपुर नेशनल यूनियन में उन्होंने अंग्रेजों के साथ असहयोग विषय पर लंबी बहस चलाई थी। 18 अगस्त 1920 को उन्होंने इस विषय पर कार्यक्रम निर्धारित करने के लिए एक समिति का गठन किया था। इस समिति में डा. चोलकर, मनोहर पंत बोबड़े, आर. एन. पाध्ये एवं विश्वनाथराव केलकर थे। इस समिति ने असहयोग कार्यक्रमों को अंतिम रूप दिया जिसे यूनियन ने कलकत्ता में हो रहे कांग्रेस के विशेष अधिवेशन (सितंबर 1920) में रखा। डा. हेडगेवार स्वयं कलकत्ता अधिवेशन में उपस्थित थे एवं असहयोग आंदोलन के प्रति मराठी मध्यप्रांत के कुछ समर्थकों में से एक थे। यह इस बात का एक ऐतिहासिक प्रमाण है कि स्थानीय स्तर पर छोटी-छोटी संस्थाओं में साम्राज्यवाद के खिलाफ असहयोग की भावना अंतःप्रेरणा से

पनप रही थी। महात्मा गांधी ने उन्हें एकसूत्र में पिरोने का एक महायज्ञ राष्ट्रीय आंदोलन के रूप में किया था।

नागपुर नेशनल यूनियन ने कांग्रेस के द्वारा विधिवत असहयोग आंदोलन की घोषणा से पूर्व ही मराठी मध्यप्रांत में माहौल को गरमाने का राष्ट्रीय व्रत शुरू कर दिया था। इसके नेताओं ने स्थान-स्थान पर आमसभाएं आयोजित करके असहयोग की अवधारणा को जनता के मन एवं मस्तिष्क में बैठाने का काम शुरू कर दिया।[1]

असहयोग आंदोलन समिति

मराठी मध्यप्रांत की तरफ से डा. हेडगेवार की अगुआई में एक असहयोग आंदोलन समिति की स्थापना की गई। इसका उद्देश्य था—कार्यकर्ताओं को असहयोग आंदोलन के लिए बौद्धिक, मानसिक एवं शारीरिक रूप से तैयार करना। इसके द्वारा नियमित रूप से प्रशिक्षण वर्गों का आयोजन किया जाता था। प्रशिक्षणार्थी कार्यकर्ताओं को रहने एवं खाने का खर्च स्वयं ही वहन करना पड़ता था। इसके बावजूद डा. हेडगेवार की अपील पर सैकड़ों युवकों ने समिति में अपनी भर्ती कराई। नागपुर असहयोग समिति ने 11 नवंबर 1920 से एक सप्ताह 'असहयोग सप्ताह' के रूप में मनाया। इस दौरान डा. हेडगेवार ने स्थान-स्थान पर दर्जनों सभाओं को संबोधित किया। उनकी सभा में हजारों लोग उपस्थित रहते थे। 1921 के आरंभ से उनकी अगुआई में सभाओं, प्रदर्शनों एवं असहयोग कार्यक्रमों का दौर और भी तेज हो गया।

नागपुर में नशाबंदी को असहयोग कार्यक्रमों में प्रमुखता दी गई थी। सन 1921 के जनवरी-फरबरी महीनों में आयोजित सभाओं में डा. हेडगेवार का मुख्य विषय यही होता था।[2]

इसके पीछे उनकी योजना मध्यप्रांत की सरकार के राजस्व पर आघात करने की थी। शराब की दूकानों में छापा मारने एवं लोगों को शराब न पीने के लिए प्रेरित करने में उन्हें यथेष्ट सफलता मिली और सरकार को राजस्व के भारी नुकसान का सामना करना पड़ा था।

---

1. महाराष्ट्र, 19 मई 1920, पृ. 5
2. महाराष्ट्र, 2 फरवरी 1921

22 फरवरी 1921 को डा. हेडगेवार ने एक सार्वजनिक सभा में यह घोषणा की कि नागपुर में एक भी शराब की दूकान नहीं चलने दी जाएगी, न ही किसी व्यक्ति को इसे पीने की अनुमति दी जाएगी। इसके बाद सरकार ने दमन की कार्रवाई को और भी तेज कर दिया। न्यायालय द्वारा डा. हेडगेवार को नोटिस भेजा गया। जिला अधीक्षक सरीली जेम्स इरविन के हस्ताक्षर से दिए गए नोटिस में कहा गया था कि 'मैं आप पर सभा करने, सभा में भाग लेने और किसी भी प्रकार से आमसभाओं से जुड़ने पर एक महीने के लिए प्रतिबंध लगाता हूं।' लेकिन 'कष्टांसि मानूं झोला / मृत्युशी खेलूं खेला' (कष्ट को झूला बनाकर मृत्यु से मैं खेल खेलूं) को आदर्श वाक्य मानने वाले डा. हेडगेवार ने सरकारी आदेश का खुल्लमखुल्ला उल्लंघन किया।[1]

सरकार ने 31 मार्च 1921 को दो महीने के लिए सभा आयोजित करने पर प्रतिबंध लगा दिया एवं इसे सख्ती से लागू करने का प्रयास किया।

सामाजिक आधार

नागपुर में आंदोलन की सफलता का एक और आधार था। सामाजिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़े एवं राष्ट्रीय राजनीति से विमुख रहकर रोजी-रोटी कमाने में व्यस्त समुदायों पर विशेष ध्यान दिया गया। डा. हेडगेवार एवं यूनियन की मंडली ने सामाजिक-आर्थिक विषयों को सामने रखकर मोमीन और कोष्ठी जैसी जातियों के बीच राष्ट्रीय चेतना को जाग्रत किया। नशाबंदी का कार्यक्रम इन समुदायों में अत्यधिक लोकप्रिय हुआ और वे बड़ी संख्या में आंदोलन से जुड़े। आंदोलन का सामाजिक आधार डा. हेडगेवार की योजना से विस्तृत एवं सुदृढ़ हुआ। नागपुर में यह आंदोलन उच्च जातियों, पढ़े-लिखे लोगों एवं कुलीनों से होता हुआ कमजोर बस्तियों के मजबूत लोगों तक पहुंचा, तभी तो नागपुर से प्रकाशित ब्रिटिश समर्थक अखबार ने यह टिप्पणी की थी कि 'जिस प्रकार के वर्गों से स्वयंसेवकों को भर्ती किया जा रहा है, उसे देखकर यह कहना अतिशयोक्ति होगा कि आंदोलन का शांतिपूर्ण चरित्र बना रहेगा।'[2]

नागपुर में स्कूल एवं कालेजों के बहिष्कार को अपेक्षित सफलता मिली

---

1. महाराष्ट्र, 20 अप्रैल 1921, पृ. 7
2. हितवाद, 26 फरवरी 1921, पृ. 4

थी। नील सिटी स्कूल के 72 प्रतिशत और मोरिस कालेज के 27.5 प्रतिशत छात्रों ने बहिष्कार किया था। मई 1921 तक नागपुर डिवीजन में 40 अधिवक्ताओं ने न्यायालय का पूर्ण रूप से बहिष्कार किया था। डा. हेडगेवार ने इनके स्वागत में एक बड़ी सभा का आयोजन नागपुर में किया था। मध्यप्रांत की 1920-21 की प्रशासनिक रिपोर्ट ने राजनीतिक गतिविधियों का उल्लेख करते हुए लिखा था कि 'असहयोग के खतरनाक एवं अराजक सिद्धांत का तीव्र विकास हुआ है जिसने सरकार एवं लोगों के बीच सौहार्दपूर्ण संबंधों पर, पहले किए गए किसी भी प्रचार से अधिक आघात पहुंचाया है।' इसे नागपुर एवं मध्यप्रांत में आंदोलन की सफलता का प्रमाणपत्र कहा जा सकता है। सरकार ने 1921 के जनवरी माह से लेकर 1922 के जून माह तक 25 राष्ट्रवादियों पर 'राजद्रोही' भाषण देने के लिए मुकदमा चलाया था, जिनमें से 11 लोगों को कठोर कारावास, दो लोगों को सामान्य कारावास एवं दो लोगों को विशेष कारावास की सजा दी गई।

डा. हेडगेवार पर मई 1921 में 'राजद्रोही' भाषण देने को आधार बनाकर मुकदमा चलाया गया था। इसी महीने वह नागपुर से प्रांतीय कांग्रेस समिति के सदस्य निर्वाचित हुए। असहयोग आंदोलन के दौरान नागपुर की पुरानी पीढ़ी के स्वराजवादी नेतृत्व के स्थान पर डा. हेडगेवार, डा. चोलकर एवं समीमुल्ला खां जैसे युवा तुर्कों का नेतृत्व वर्ग सामने आया। जहां चोलकर एवं खां संसदीय राजनीतिक गतिविधियों से भी जुड़े रहे, वहीं डा. हेडगेवार ने चुनावी राजनीति से अपने आप को पूर्ण रूप से अलिप्त रखा।

'राजद्रोह' का मुकदमा

नागपुर में असहयोग आंदोलन की अभूतपूर्व सफलता ने ब्रिटिश प्रशासन एवं सरकार को झकझोर कर रख दिया था। सरकार द्वारा आंदोलन को कुचलने के लिए अपनाए गए सभी हथकंडे नाकाम साबित होते रहे। धारा 144, सभाओं, जुलूसों, भाषणों पर प्रतिबंध एवं आंदोलनकारियों पर बल-प्रयोग इत्यादि दमनकारी कार्रवाइयों से आंदोलन कमजोर होने की जगह और भी सशक्त होता जा रहा था। अंततः सरकार ने प्रमुख एवं लोकप्रिय नेताओं पर 'राजद्रोह' का मुकदमा चलाकर उन्हें जेल भेजने का काम शुरू किया। इसका प्रत्यक्ष उद्देश्य आंदोलनकारियों को भयभीत एवं नेतृत्वविहीन करना था। सन 1921 में जनवरी से मई महीने तक मध्यप्रांत में सात लोगों पर 'राजद्रोह' का मुकदमा चलाया गया था।[1] इसमें नागपुर से डा. हेडगेवार भी थे।

उन पर आपराधिक दंड संहिता (धारा 108) के अंतर्गत मई 1921 में मुकदमा दर्ज किया गया। उनकी उत्तरोत्तर सरकार विरोधी गतिविधियों के कारण साम्राज्यवादी प्रशासन उन्हें दंडित करने के लिए कृतसंकल्प था। तभी तो छह महीने पूर्व (अक्टूबर 1920 में) काटोल एवं भरतवाड़ा की सभाओं में दिए गए उनके भाषणों को मुकदमे का आधार बनाया गया।[2] उन्होंने इन दोनों सभाओं की अध्यक्षता की थी। उन पर ब्रिटिश सरकार के खिलाफ भड़काऊ भाषण देने, घृणा फैलाने एवं विद्रोह का आह्वान करने का आरोप लगाया गया। महाराष्ट्र में बाल गंगाधर तिलक पर 1908 में उनके उग्र लेखन को आधार बनाकर मुकदमा चलाया गया था। तिलक ने मुकदमे में जिरह के दौरान अपने बचाव के नाम पर साम्राज्यवादी शासन एवं उसकी दमनकारी नीतियों पर हमला किया। उनका यह मुकदमा भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में एक स्फूर्तिदायी प्रसंग बन गया है। डा. हेडगेवार का यह मुकदमा भी उसी के समान एक प्रेरणादायी प्रसंग है। मुकदमे के दौरान न्यायालय में खड़े होकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ उनके द्वारा दिया गया उग्र बयान, राष्ट्र की स्वतंत्रता के पक्ष में प्रबल एवं प्रखर

---

1. फाइल नं. 28/1921, राजनीतिक, भाग-1, पैरा 17, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली
2. महाराष्ट्र, 15 जून 1921, पृष्ठ 4.

दलील एक और जीवंत ऐतिहासिक दस्तावेज है।

यह सत्य है कि स्वतंत्रता आंदोलन के अनेक ओजस्वी प्रसंगों की तरह ही यह मुकदमा भी अभिलेखागार में दशकों तक दबा रहा है।

शोध में जब-जब ऐसी घटनाएं छन-छनकर सामने आती हैं, तब-तब साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन की व्याख्या, प्रकृति एवं स्वरूप पर भी नई दृष्टि पड़ती है। संभवत: डा. हेडगेवार का यह मुकदमा भी जीवंत प्रसंग के रूप में उद्धरणीय होगा।

नागपुर के न्यायालय में न्यायाधीश सिराज अहमद के सम्मुख 31 मई 1921 को मुकदमा शुरू हुआ। प्रारंभिक कार्रवाई के बाद मुकदमे की अगली तारीख 13 जून निश्चित की गई। इस दिन मुकदमा स्मेली के न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया गया। डा. हेडगेवार की ओर से नागपुर के प्रमुख वकील बोबड़े, विश्वनाथराव केलकर, बाबासाहब पाध्ये, बलवंतराव मंडलेकर और बाबूराव हरकरे न्यायालय में दलील देने के लिए उपस्थित हुए। 13 जून को काटोल के पुलिस उप निरीक्षक आबाजी ने सरकार की तरफ से गवाही दी। अगले दिन 14 जून को बोबड़े ने पुलिस उप निरीक्षक से जिरह की।

न्यायाधीश ने डा. हेडगेवार के वकील के प्रत्येक प्रश्न पर आपत्ति उठाना शुरू किया। जब बोबड़े ने जिरह शुरू करते हुए यह जानना चाहा कि पुलिस ने डा. हेडगेवार पर मुकदमा 'ऊपर के अधिकारियों के दबाव में दर्ज किया है अथवा अपने खुद के फैसले के आधार पर किया है', तब आबाजी ने यह स्वीकार किया कि 'मैं अपने आप मुकदमा दर्ज नहीं कर सकता। मुझे एक वरिष्ठ अधिकारी से इसकी अनुमति एक माह पूर्व मिली थी।' तब न्यायाधीश ने बोबड़े को चेतावनी दी कि इस विषय पर आगे कोई प्रश्न पुलिस अधिकारी से नहीं पूछें। बोबड़े के पूछे जाने पर आबाजी ने बताया कि वह 30 से 40 शब्द प्रति मिनट लिख सकता है। बोबड़े का मत था कि डा. हेडगेवार का भाषण तात्कालिक राजनीतिक विषय पर केंद्रित होता है अत: उसे समझने एवं उसकी व्याख्या करने के लिए न्यूनतम राजनीतिक ज्ञान एवं समझ आवश्यक है। तब उन्होंने कुछ सवाल सरकारी गवाह के सामने रखे-

''क्या आप राजनीतिक विषयों पर लिखने वाले समाचार-पत्रों एवं पत्रिकाओं को पढ़ते हैं?''

"आपने कांग्रेस के द्वारा पारित असहयोग आंदोलन के प्रस्ताव को कितनी बार पढ़ा है?"

"क्या आपने गांधी के लेखों को पढ़ा है?"

न्यायाधीश ने प्रत्येक सवाल पर आपत्ति की। लेकिन बोबड़े अपने प्रश्नों पर अटल रहे। अंततः न्यायाधीश को बाध्य होकर अपनी आपत्ति वापस लेनी पड़ी। तब बोबड़े ने आबाजी से पूछा कि 'क्या असहयोग आंदोलन को शांतिपूर्वक एवं बिना हिंसात्मक कार्रवाई के चलाने का संकल्प किया गया है?' सरकारी गवाह उसका उत्तर देने में असमर्थ था और उसने सरकारी वकील लोगो से मदद मांगी। फिर बोबड़े ने पूछा कि 'लोग इस आंदोलन के द्वारा क्या प्राप्त करना चाहते हैं?' बोबड़े के अगले सवाल पर न्यायाधीश ने पुनः आपत्ति उठाई। बोबड़े ने पूछा था कि 'लोग किस प्रकार का स्वराज्य चाहते हैं?' तब पुलिस उप निरीक्षक का उत्तर था कि 'स्वराज्य का तात्पर्य जनता का शासन होता है।' न्यायाधीश ने बोबड़े के सवालों से परेशान होकर उन्हें 'अप्रासंगिक', 'बेमतलब' और 'उद्देश्यहीन' बताया और मुकदमे को 20 तारीख तक स्थगित कर दिया। 20 जून को मुकदमे की कार्रवाई में नाटकीय मोड़ आया। बोबड़े न्यायाधीश से उलझ पड़े। जिरह के दौरान उन्होंने आबाजी से पूछा कि 'क्या यह सत्य नहीं है कि डा. हेडगेवार ने अपने उक्त भाषण में यह प्रतिपादित किया कि भारत सिर्फ भारतवासियों का है?' तब न्यायाधीश ने पहले की तरह ही प्रश्न को अप्रासंगिक घोषित करके लिखने से साफ मना कर दिया। इतना होना था कि बोबड़े ने क्रोधित होकर न्यायालय पर पूर्वाग्रह से ग्रसित होने एवं स्वतंत्र बहस को रोकने का आरोप लगाया। उन्होंने न्यायालय का बहिष्कार करते हुए खुद को मुकदमे से अलग करने का निर्णय लिया। बाद की घटनाओं को देखकर लगता है कि बोबड़े का यह कदम पूर्व नियोजित था।

डा. हेडगेवार ने मुकदमे की बागडोर संभालते हुए स्वयं जिरह करने का निर्णय लिया। वह कानून के विद्यार्थी कभी नहीं रहे और न्यायालय में यह उनका पहला अनुभव था। परंतु उन्हें डर किस बात का होता? वह तो न्यायालय का उपयोग ब्रिटिश राजसत्ता, साम्राज्यवाद एवं कुटिल न्याय व्यवस्था के खिलाफ एक राजनीतिक मंच के रूप में करना चाहते थे और वैसा ही उन्होंने कर दिखाया।

उन्होंने अपने मुकदमे का श्रीगणेश न्यायाधीश का ही मजाक उड़ाकर किया। किसी न्यायाधीश को अयोग्य, अज्ञानी एवं अपात्र घोषित करने का साहस तो कोई प्रखर राष्ट्रवादी ही कर सकता था और डा. हेडगेवार ने वैसी ही निर्भयता एवं आत्मविश्वास का प्रदर्शन किया। उन्होंने स्मेली से मुकदमे की कार्रवाई तब तक रोकने की मांग की जब तक उनके द्वारा न्यायाधीश बदलने के लिए दिए जाने वाली अर्जी पर अंतिम निर्णय नहीं हो जाता। अपमान एवं शर्मिंदगी की स्थिति से स्मेली हक्का-बक्का रह गया। और न्यायालय ने हेडगेवार की बात मान ली।

25 जून को डा. हेडगेवार ने जिला सत्र न्यायाधीश इरविन के यहां इस संबंध में प्रार्थना पत्र दिया। यह अपने आप में अनोखी अर्जी थी। एक ब्रिटिश न्यायाधीश को किसी भारतीय का मुकदमा सुनने के लिए अयोग्य घोषित करने की फरियाद की गई थी। सबको पता था कि इरविन का निर्णय क्या होगा। परंतु हेडगेवार का उद्देश्य तो स्मेली को शिखंडी बनाकर ब्रिटिश न्याय व्यवस्था पर चोट करना था। उनकी अर्जी का सारांश इस प्रकार है:

'श्री स्मेली को मराठी का कामचलाऊ ज्ञान भी नहीं है। भाषण एवं बयान सब मराठी में हैं। फिर उनके लिए मुकदमा समझना असंभव है। अत: वह इस मुकदमे के लिए पूरी तरह से अपात्र हैं। इसका प्रमाण न्यायाधीश का टीप का कोरा कागज है। दिनांक 14 जून को लंबी जिरह के बावजूद वह एक शब्द भी नहीं लिख पाए। इतना ही नहीं, श्री स्मेली का राजनीतिक ज्ञान एवं समझ भी शून्य है। तभी तो आरोपी के वकील द्वारा पूछे गए प्रश्नों पर वह आपत्ति उठाते रहे। पहले प्रत्येक प्रश्न का उद्देश्य उनको समझना पड़ता था तभी कार्रवाई आगे बढ़ पाती थी। समझ में कमी के कारण वह प्रश्नों को अभियोग से असंगत, असंबद्ध और अप्रासंगिक घोषित करते रहे। यदि उन प्रश्नों को खारिज नहीं किया जाता और सरकारी गवाह को उत्तर देने के लिए कहा जाता तो यह प्रमाणित हो जाता कि मेरे भाषण में 'राजद्रोह' का कोई अंश नहीं था।'

इरविन ने अनकी अर्जी को 27 जून को अस्वीकृत करते हुए कहा कि 'स्मेली उक्त मुकदमे को देखने के लिए पूर्णत: उपयुक्त हैं।"[1]

---

1. महाराष्ट्र, 29 जून, 1921, 'डा. हेडगेवार यांचा खटला', पृष्ठ 4

28 जून को स्मेली के न्यायालय में मुकदमा शुरू हुआ। अपमानित एवं क्रोधित स्मेली ने डा. हेडगेवार से लिखित बयान देने के लिए कहा। डा. हेडगेवार ने न्यायाधीश के इस आदेश का विरोध करते हुए कहा कि उन्हें सभी सरकारी गवाहों को सुनने का अधिकार है और उसके बाद ही वह अपना लिखित बयान दे सकते हैं। जब न्यायाधीश ने अपनी बात दोहराते हुए कहा कि न्यायालय को उनका लिखित बयान मांगने का अधिकार है तो डा. हेडगेवार ने भी मुंहतोड़ जवाब दिया— "मुझे जो कहना था, मैंने कह दिया। मैं अपनी बात पर कायम हूं। मैं अपना लिखित बयान तो अंत में दूंगा।" इस तरह का आक्रामक रुख उनकी सहज अभिव्यक्ति के साथ-साथ अटूट संकल्प शक्ति का परिचायक है।

न्यायालय ने उनकी बात मानकर मुकदमे की कार्रवाई को 8 जुलाई तक के लिए स्थगित कर दिया।

8 जुलाई को जब मुकदमा शुरू हुआ तब डा. हेडगेवार ने दूसरे सरकारी गवाह काटोल संभाग के सर्किल इंस्पेक्टर गंगाधरराव से जिरह की।

डा. हेडगेवार : सभा कब तक चली थी और भाषणों को लिखने का काम कैसे हो रहा था?

राव : सभा लगभग पौने आठ बजे रात को समाप्त हुई। और हम लोग टॉर्च की रोशनी में लिखने का कार्य कर रहे थे।

डा. हेडगेवार : वे पूरी तरह से अंधेरे में बैठे थे। न तो उनके पास कोई लालटेन थी न ही टॉर्च। मैं शुद्ध मराठी बोलता हूं परंतु मेरे मुंह में उन्होंने 'बायकोचा पोर' जैसे अशुद्ध मराठी शब्दों को डाला है। गवाह पूरी तरह से निरक्षर प्रतीत होता है।

राव : मुझे व्याकरण का ज्ञान नहीं है। मैं अपनी मां से तेलुगु और पत्नी से मराठी में बात करता हूं। मैं एक मिनट में औसतन 25 से 30 शब्द लिख सकता हूं, कभी-कभी पूरा वाक्य, तो कभी-कभी उसका सारांश लिख लेता था। सारांश लिखने के लिए पूरा वाक्य सुनने की आवश्यकता नहीं है। जो बात मैं नहीं समझ पाता था या चूक जाता था वह मैं दूसरों की सहायता से लिखता था। डाक्टर प्रति मिनट 25 से 30 शब्द बोलते थे।'

डा. हेडगेवार ने हस्तक्षेप करते हुए न्यायालय से कहा कि 'भाषण लिखने में सर्किल इंस्पेक्टर कितने कुशल हैं, इसकी परीक्षा लेने की अनुमति दी जाए।' परंतु यह अनुमति नहीं दी गई। तब उन्होंने गवाह से उसकी शिक्षा के बारे में जानना चाहा। तब राव ने कहा :

'मैं सरकारी सेवा में गत 24 वर्षों से हूं। मैं इंटर की परीक्षा में अनुत्तीर्ण हूं। सबसे पहले मेरी नियुक्ति प्रधान सिपाही के रूप में हुई थी। फिर मेरी प्रोन्नति उप निरीक्षक के रूप में हुई और आजकल मैं सर्किल इंस्पेक्टर के पद पर कार्यरत हूं। मुझे इस बात की जानकारी नहीं है कि डा. हेडगेवार के अतिरिक्त सभा में अलेकर, ओगले या और दूसरे कौन थे। यह बात भी सत्य है कि दूसरे लोगों की तरह मैं भी उनके भाषण से प्रभावित था। लेकिन मुझे इस बात का बोध था कि वक्ता पूरी तरह से झूठ बोल रहा है।'

डा. हेडगेवार : न्यायालय के सम्मुख प्रस्तुत किया गया भाषण मेरा नहीं है। मैं प्रति मिनट औसतन 200 शब्द बोलता हूं, और मेरे भाषण की रिपोर्ट तैयार करने वाले 'लांग हैंड' के नौसिखिये रिपोर्टर तो मेरे भाषण का आठवां हिस्सा भी लिखने में असमर्थ रहे होंगे। अत: वादी की ओर से प्रस्तुत रिपोर्ट अपूर्ण वाक्यों, टूटे-फूटे शब्दों एवं अधूरी बातों से भरी पड़ी है। इसके अतिरिक्त रिपोर्ट पूरी तरह से झूठ का पुलिंदा है। इसमें कोई संदेह नहीं रह गया है कि अयोग्य सिपाहियों ने मेरे भाषण की रिपोर्ट तैयार करने में अपनी कल्पनाशक्ति और याददाश्त का उपयोग किया है। इस रिपोर्ट को पढ़कर कोई भी व्यक्ति इस बात का तनिक भी अंदाज नहीं लगा सकता है कि मैंने कैसे और क्या कहा था। और भरतवाड़ा के मेरे भाषण को लिखना तो असंभव था क्योंकि रात के घनघोर अंधेरे में कागज और पेंसिल तक नहीं दिखाई पड़ती थी। पुलिस के पास रोशनी की कोई व्यवस्था नहीं थी। अत: मेरे भाषण की जो रिपोर्ट दी गई है वह बिल्कुल मनगढ़ंत है तथा यह दिखाने का प्रयास है कि 'जनता के आंदोलन को कुचलने के लिए पुलिस वाले कितनी मेहनत कर रहे हैं।' किसी भी पढ़े-लिखे व्यक्ति के द्वारा सरसरी तौर से रिपोर्ट देखने पर उसे इसकी सत्यता का तुरंत ज्ञान हो जाएगा। ऐसा प्रतीत होता है कि इसी भय से ग्रसित होकर कुछ रिपोर्ट तो पढ़ी भी नहीं गई हैं। जाहिर है, यदि ईमानदारी से मुकदमे की कार्रवाई होती तो वादी पक्ष की भूमिका का पर्दाफाश हो जाता। अपनी रिपोर्ट लेने की पद्धति और मेरे भाषण के वेग के संबंध में जो हास्यास्पद बातें गंगाधरराव ने

कही हैं उन्हें देखकर किसी भी न्यायसम्मत व्यक्ति की समझ में आ जाएगा कि वादी पक्ष की रिपोर्ट में कोई दम नहीं है। इस प्रकार की सभाओं में मेरे भाषण के सामान्य गति से बोलने पर गवाह कितने शब्द लिख सकता है, यह दिखाने का यदि मुझे अवसर दिया जाता तो पुलिस अधिकारियों की असत्यता एवं निम्न वृत्ति सबके सामने आ जाती। परंतु आश्चर्य और खेद की बात तो यह है कि मेरे मुकदमे में अधिकतम रुकावटें डाली गई हैं। मातृभूमि के भक्तों को दमनचक्र में पीसने वाली सरकार पर मेरे द्वारा न्यायालय में किए गए विरोध का कोई असर नहीं होगा, यह मैं भली भांति जानता हूं। मैं अभी भी यही कहता हूं कि हिंदुस्थान हिंदुस्थानियों का है और स्वराज्य हमारा अंतिम ध्येय है। आज तक ब्रिटिश प्रधानमंत्री तथा सरकार द्वारा आत्मनिर्णय की घोषणाएं यदि ढोंग थीं तो सरकार मेरे भाषण को राजद्रोह समझ सकती है। पर मेरा सर्वशक्तिमान ईश्वर के न्याय पर अटल विश्वास है।'

9 जुलाई को डा. हेडगेवार ने न्यायालय से सरकारी गवाहों को फिर से जिरह हेतु बुलाने की विनती की। उनका तर्क था कि उनके वकील द्वारा न्यायालय के बहिष्कार के कारण उन गवाहों से जिरह नहीं हो पाई। लेकिन न्यायाधीश ने उत्तर में कहा कि धारा 108 के अंतर्गत वह गवाहों को पुनः नहीं बुला सकते हैं। डा. हेडगेवार ने न्यायालय में अनेक साक्ष्य प्रस्तुत करके कहा कि जिरह करना उनका स्वाभाविक अधिकार है। इस पर सरकारी वकील ने आपत्ति व्यक्त की। उसने वैधानिक साक्ष्यों पर विचार करने के बजाय डा. हेडगेवार के न्यायालय में व्यवहार पर अधिक ध्यान केंद्रित किया। 13 जून को न्यायाधीश ने आगे किसी जिरह की अनुमति नहीं दी। 9 जुलाई को डा. हेडगेवार ने लिखित बयान दिया :

(क) मुझे इस बात का स्पष्टीकरण देने के लिए कहा गया है कि मेरा भाषण कायदे से प्रस्थापित ब्रिटिश राज्य के विरुद्ध असंतोष, द्वेष व द्रोह उत्पन्न करने वाला तथा हिंदुस्थानियों एवं यूरोपीय लोगों के बीच शत्रु-भाव पैदा करने वाला है। एक भारतीय के किए गए कार्य की जांच और न्याय करने के लिए एक पराई राजसत्ता बैठे, मैं इसे अपना और अपने महान देश का अपमान समझता हूं।

(ख) हिंदुस्थान में न्यायाधिष्ठित कोई शासन है, ऐसा मुझे नहीं लगता है और यदि कोई इस प्रकार की बात करता है तो मुझे आश्चर्य होता है। हमारे

यहां आज जो कुछ भी है वह पाशविक शक्ति के बल पर थोपा गया आतंक का साम्राज्य है। कानून उसका दास है और न्यायालय उसके खिलौने मात्र हैं। विश्व के किसी भूभाग में किसी शासन को रहने का अधिकार है तो वह जनता के द्वारा, जनता के लिए और जनता की सरकार को है। इसके अतिरिक्त अन्य सभी प्रकार की शासन व्यवस्था राष्ट्रों का शोषण करने एवं धूर्त लोगों द्वारा योजनापूर्वक चलाए हुए धोखेबाजी के नमूने हैं।

(ग) मैंने अपने देशवासियों में मातृभूमि के प्रति उत्कट भक्तिभाव जाग्रत करने का प्रयत्न मात्र किया। मैंने उनके हृदय पर यह अंकित करने का प्रयास किया कि हिंदुस्थान हिंदुस्थानियों का है। यदि एक हिंदुस्थानी राजद्रोह किए बिना राष्ट्रभक्ति के ये तत्व प्रतिपादित नहीं कर सकता तथा भारतीय एवं यूरोपीय लोगों में शत्रु-भाव पैदा किए बिना वह इस सत्य का बयान नहीं कर सकता, यदि स्थिति इस हद तक पहुंच चुकी है तो यूरोपीय तथा वे जो अपने आप को भारत सरकार कहते हैं, उन्हें सावधान हो जाना चाहिए कि अब उनके वापस चले जाने की घड़ी आ गई है।

(घ) मेरे भाषण की टिप्पणियां पूरी तरह सही-सही नहीं लिखी गईं। मेरे भाषण का टूटा-फूटा, अनाप-शनाप एवं विपर्यस्त विवरण दिया गया है। परंतु मुझे इसकी चिंता नहीं है। राष्ट्रों के बीच संबंध जिन मूल तत्वों के आधार पर निर्धारित होते हैं, उसी आधार पर ब्रिटेन तथा यूरोपीय लोगों के प्रति मेरा बर्ताव है। मैंने जो कहा, वह अपने देशवासियों के अधिकारों एवं स्वतंत्रता की प्रस्थापना के लिए कहा और मैं अपने कहे गए प्रत्येक शब्द का दायित्व लेने के लिए सहर्ष तैयार हूं। मेरे ऊपर जो आरोपित है, उसके संबंध में यदि मैं कुछ नहीं कह सकता तो मैं एक-एक अक्षर को मानने के लिए तैयार हूं तथा घोषणा करता हूं कि वे सब न्यायोचित हैं।'

जब 5 अगस्त को मुकदमे की कार्रवाई शुरू हुई, तब डा. हेडगेवार को न्यायाधीश ने उन पर (हेडगेवार पर) लगाए गए आरोपों पर सफाई देने की अनुमति दी। तब डा. हेडगेवार ने जिस व्यापक, संवेदनशील और विवेकपूर्ण तरीके से साम्राज्यवादी व्यवस्था पर आक्रमण किया, वह सचमुच में भारतीय राष्ट्रीयता की उच्च स्तर की अभिव्यक्ति है। उन्होंने कहा :

''मुझे सरकार एवं नौकरशाही दोनों की आलोचना करनी होगी। इसलिए

मैं आपसे निवेदन करता हूं कि कृपया कुछ क्षणों के लिए भूल जाइए कि आप सरकारी सेवक हैं और मेरे भाषण को अनजान व्यक्ति के रूप में ध्यान से सुनिए। सरकार ने मेरे मुकदमे में तीन पुलिस वालों को गवाह के रूप में प्रस्तुत किया है। पुलिस वालों ने स्वीकार किया है कि मेरे भाषण की रिपोर्ट मुकदमे का आधार है। अत: उन्हें गवाह की अपेक्षा वादी कहना अधिक उपयुक्त होगा। वे सरकार के पूर्ण रूप से दास हैं। अपने जीविकोपार्जन के लिए वे सरकार पर निर्भर हैं। अत: इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि ये लोग सरकार की तरफ से झूठी गवाही देते हैं। वादी पक्ष को कम से कम एक ऐसे गवाह को बुलाना चाहिए था जो सरकारी सेवक नहीं हो। लेकिन सरकार को मालूम था कि उसके पक्ष में उसके चापलूसों को छोड़कर कोई गवाह नहीं बनेगा।''

डा. हेडगेवार ने स्मेली के पूर्व निर्णयों को अपनी बात की पुष्टि करने के लिए उद्धृत किया। स्मेली ने डा. एम. आर. चोलकर के मुकदमे में एवं जुडीशियल कमिश्नर ने नारायणराव वैद्य के मुकदमे में फैसला दिया था कि 'ऐसे मुकदमे में पुलिस अधिकारियों की अपेक्षा स्वतंत्र गवाह अधिक विश्वसनीय होते हैं।' इस मुकदमे में स्मेली अपने द्वारा तीन महीने पूर्व दी गई व्यवस्था को स्वयं ही ध्वस्त कर रहे थे। यह इस बात का प्रमाण था कि ब्रिटिश सरकार ने नागपुर के राष्ट्रवादियों में डा. हेडगेवार को अपना मुख्य निशाना बनाया था। जिरह के बाद डा. हेडगेवार ने न्यायालय के प्रांगण में खचाखच भरे लोगों एवं वकीलों के बीच राष्ट्रवाद को ध्वनित किया :

''साधारणतया मेरे भाषण का विषय होता है—'हिंदुस्थान हिंदुस्थानियों का है, अत: हमें स्वराज्य चाहिए।' लेकिन सिर्फ इतना कहना यथेष्ट नहीं है। स्वराज्य कैसे प्राप्त करना चाहिए एवं स्वराज्य प्राप्ति के बाद हमें कैसे रहना चाहिए, यह भी लोगों को समझाना पड़ता है। नहीं तो 'यथा राजा तथा प्रजा' की उक्ति के अनुसार हमारे लोग अंग्रेजों का अनुकरण करने लगेंगे। हाल के विश्वयुद्ध से सब लोग समझ चुके हैं कि ब्रिटेन के लोग अपने राज्य से संतुष्ट नहीं हैं और वे दूसरे देशों पर आक्रमण करके उन्हें अपने अधीन करते हैं और उन पर शासन करते हैं। लेकिन जब उनकी स्वयं की स्वतंत्रता खतरे में होती है तो वे शस्त्र उठाते हैं और खून की नदियां बहाने में नहीं हिचकते हैं। इसलिए हमें अपने लोगों को बताना पड़ता है कि ब्रिटेन की शैतानी-सभ्यता का अनुकरण न करें। हमें उन्हें बताना पड़ता है कि स्वतंत्रता शांतिपूर्ण तरीके से प्राप्त करनी

है और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद किसी दूसरे देश पर आक्रमण नहीं करना चाहिए और अपने राज्य से संतुष्ट रहना चाहिए। यह बात लोगों के मन में बैठाने के लिए यह बताना पड़ता है कि एक देश का दूसरे देश पर शासन करना अन्यायपूर्ण है। ऐसा करने में स्वाभाविक रूप से मुझे आजकल की राजनीति की चर्चा करनी पड़ती है।

''दुर्भाग्य से पराए लोग हमारी प्रियतम मातृभूमि पर शासन कर रहे हैं। सरकारी वकील साहब, आपसे मेरा सीधा प्रश्न है कि क्या ऐसा कोई कानून है जिसके तहत एक देश के लोगों को दूसरे देश के ऊपर राज्य करने का अधिकार प्राप्त होता है? क्या आप मेरे इस प्रश्न का उत्तर दे सकते हैं? क्या इस तरह की बात प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध नहीं है? यदि यह बात सत्य है कि एक देश के लोगों को दूसरे देश पर शासन करने का अधिकार नहीं है तो अंग्रेजों को हिंदुस्थानियों को अपने पैरों के नीचे कुचलकर हिंदुस्थानियों पर शासन करने का अधिकार किसने दिया है? अंग्रेज हमारे देश के निश्चय ही नहीं हैं। फिर उन्होंने भारत के लोगों को गुलाम बनने के लिए बाध्य किया है एवं बलपूर्वक अपने आप को शासक घोषित किया है। क्या यह न्याय, नैतिकता एवं धर्म की हत्या नहीं है?

''इंग्लैंड को परतंत्र करके उस पर राज्य करने की हमारी कोई इच्छा नहीं है। लेकिन हम अपने देश पर उसी प्रकार शासन करना चाहते हैं जैसे ब्रिटेन के लोग ब्रिटेन पर एवं जर्मनी के लोग जर्मनी पर शासन करते हैं। हमें पूर्ण स्वतंत्रता चाहिए और इस पर हम कोई समझौता नहीं कर सकते हैं।''

अंत में उन्होंने सरकारी वकील से पुनः सारगर्भित सवाल किया—''क्या स्वतंत्रता की इच्छा रखना नैतिकता अथवा कानून के विरुद्ध है? मेरा पूर्ण विश्वास है कि कानून का निर्माण नैतिकता के हनन के लिए नहीं, बल्कि उसकी रक्षा के लिए होता है।''[1]

उनके भाषण के बाद सरकारी वकील ने टिप्पणी करते हुए कहा कि 'डाक्टर हेडगेवार ने जो भाषण दिया है वह अत्यंत सीधा-सादा और स्पष्ट है। परंतु सभाओं में उनका भाषण भिन्न रहा होगा। नोट करने वाले पुलिस अधिकारियों को गलतफहमी होने का कोई कारण नहीं है।'

---

1. महाराष्ट्र, 10 अगस्त 1921, पृ. 5

उनके मुकदमे के फैसले की तिथि 19 अगस्त निर्धारित हुई। उस दिन न्यायालय के भीतर एवं बाहर अप्रत्याशित भीड़ थी। दोपहर साढ़े बारह बजे स्मेली ने निर्णय दिया। स्मेली ने उनके बयान पर टिप्पणी करते हुए कहा कि 'उनके मूल भाषण की अपेक्षा यह वक्तव्य कहीं अधिक राजद्रोहपूर्ण है।' फिर अपना निर्णय सुनाते हुए न्यायाधीश ने कहा—''आपके भाषण निस्संदेह राजद्रोहपूर्ण हैं। अत : एक वर्ष तक आप इस तरह का भाषण नहीं करेंगे, इसका आश्वासन देते हुए एक-एक हजार रुपये की दो जमानतें और एक हजार रुपये का एक मुचलका दें।'

डा. हेडगेवार ने एक बार फिर औपनिवेशिक शासन व्यवस्था को ललकारते हुए कहा- ''आपको जो भी निर्णय देना है, दें। मैं दोषी नहीं हूं। मेरी अंतरात्मा की आवाज है कि मैं निर्दोष हूं। सरकार अपनी इस दमनकारी नीति से पहले से जल रही आग में घी डालने का ही काम कर रही है। मुझे विश्वास है कि जल्दी ही विदेशी सत्ता को अपने किए पर प्रायश्चित करने का समय आएगा। मुझे सर्वशक्तिमान ईश्वर के न्याय पर भरोसा है। अतः जमानत देना मुझे स्वीकार नहीं है।''

इसके बाद न्यायाधीश ने उन्हें एक वर्ष के सश्रम कारावास की सजा देने की घोषणा की।[1]

डा. हेडगेवार न्यायालय से बाहर आए तो नागपुर कांग्रेस के सभी बड़े नेताओं ने पुष्पहार से उनका स्वागत किया और हजारों लोगों ने उनकी जय-जयकार की। उनके स्वागत में नगर कांग्रेस की ओर से गोखले, डा. मुंजे, विश्वनाथराव केलकर, दा.मू. देशमुख, हरकरे, समीमुल्ला खां, अलेकर, वैद्य, मंडलेकर आदि विद्यमान थे। उनके चाचा मोरेश्वर हेडगेवार, ज्येष्ठ भाई सीताराम पंत भी उपस्थित थे। डा. हेडगेवार ने लोगों को संबोधित किया, फिर जेल के लिए प्रस्थान किया। उन्होंने अपने संबोधन में उन दो भ्रमों को दूर करने का प्रयास किया जो तत्कालीन राजनीतिक जीवन में घर कर चुके थे। न्यायालय में बचाव के लिए जिरह करने को गलत माना जाता था तथा जेल जाने को स्वतंत्रता आंदोलन का पर्याय समझा जाने लगा था। उन्होंने कहा :

---

1. केसरी, 23 एवं 30 अगस्त 1921, पृ. 7

"राजद्रोह के इस मुकदमे में मैंने अपना पक्ष रखा। आजकल यह धारणा है कि जो बचाव करेगा, वह देशद्रोही है। अपना बचाव किए बिना खटमल के समान रगड़े जाना मुझे ठीक नहीं लगता है। हमें सरकार की नीचता को जरूर उजागर करना चाहिए। इसमें भी देश-सेवा है। उल्टे बचाव न करना आत्मघातक है। आपको बचाव करने में आनंद नहीं आए, तो मत कीजिए, परंतु ऐसा करने वालों को आगे से हेय दृष्टि से नहीं देखना चाहिए।

"मातृभूमि की रक्षा करने हेतु जेल तो क्या, काले पानी जाने अथवा फांसी के तख्ते पर लटकने को भी हमें तैयार रहना चाहिए। परंतु जेल जाना मानो स्वर्ग है, वही स्वातंत्र्य-प्राप्ति है- इस प्रकार का भ्रम नहीं पालना चाहिए। केवल जेल जाने से हमें स्वराज्य मिलेगा, यह मत समझिए। जेल न जाकर, बाहर रहकर राष्ट्र सेवा अनेक तरह से की जा सकती है। मैं एक वर्ष बाद वापस आऊंगा। तब तक देश के हाल-चाल का पता मुझे नहीं चल पाएगा। परंतु हिंदुस्थान को पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त कराने का आंदोलन शुरू होगा, ऐसा मेरा विश्वास है। हिंदुस्थान को अब और अधिक विदेशी सत्ता के अधीन रखना संभव नहीं है। उसे गुलामी में नहीं रखा जा सकेगा। आप सबका हृदय से आभार मानकर एक वर्ष के लिए आज्ञा लेता हूं।"

डा. हेडगेवार की गिरफ्तारी ने मध्यप्रांत के राजनीतिक जीवन में प्रेरणादायी लहर का संचार किया। 19 अगस्त को नागपुर में उनके समर्थन में विशाल सभा की गई। गोविंदराव देशमुख ने अध्यक्षता की एवं प्रांत के सभी प्रमुख कांग्रेसी नेता उपस्थित थे। अलेकर ने उन्हें 'नौजवानों का असली नेता' कहकर उनके त्याग को वर्णनातीत बताया।

'केसरी', 'महाराष्ट्र', 'यंग पैट्रियट', 'उदया' आदि प्रांत के समाचार-पत्रों ने उनके द्वारा न्यायालय में दी गई वीरतापूर्ण एवं उच्चस्तरीय दलीलों एवं भाषण की सराहना की। अमरावती से प्रकाशित 'उदया' ने उनकी सराहना करते हुए संपादकीय में लिखा—

'न्यायालय में डा. हेडगेवार का वक्तव्य स्पष्ट एवं सरल था। यद्यपि डा. चोलकर की तरह ही उन्होंने स्वतंत्रता के लक्ष्य का प्रतिपादन किया तथापि उन्हें एक वर्ष के सश्रम कारावास की सजा दी गई। इस प्रकार की सजा

नौकरशाही पर आधारित व्यवस्था के खिलाफ आक्रोश एवं घृणा पैदा होने से नहीं रोक सकती है।"[1]

इस मुकदमे का महत्व इसलिए बढ़ जाता है कि डा. हेडगेवार ने कहीं भी, किसी भी क्षण पूर्ण स्वतंत्रता की अवधारणा पर समझौतावादी रुख नहीं अपनाया। साम्राज्यवाद का विरोध सिर्फ भावनात्मक आधार पर अथवा उत्तेजनावश उन्होंने नहीं किया था बल्कि उसे वैधानिक, नैतिक, राजनीतिक एवं आर्थिक आधारों पर एक 'अप्राकृतिक' घटना की संज्ञा दी। औपनिवेशिक काल में साम्राज्यवाद के सैद्धांतिक आधार पर विरोध की यह एक मिसाल है। वह राष्ट्रीय स्तर के नेता तो नहीं थे, परंतु उनके त्याग तथा न्यायालय में देशभक्तिपूर्ण वक्तव्य ने उनकी विश्वसनीयता एवं लोकप्रियता को बढ़ाया ही। उनका कार्य प्रांत की नई पीढ़ी के राष्ट्रवादियों के लिए ऊर्जा एवं प्रेरणा का स्रोत बन गया।

---

1. उदया, संपादक : बी. जी. खापर्डे, भारतीय समाचार-पत्रों पर रिपोर्ट, मध्यप्रांत एवं बरार, संख्या 35/1921, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली

सत्यनिष्ठ हेडगेवार

डाक्टर हेडगेवार को 19 अगस्त 1921 को नागपुर की अजनी जेल में लाया गया। उन्हें एक वर्ष के सश्रम कारावास की सजा तो दी ही गई थी, उनके उग्र राष्ट्रवाद के कारण अधिकारियों को उन पर कड़ी नजर रखने का प्रशासन द्वारा निर्देश था। इस जेल में उनके साथ चार अन्य आंदोलनकारी सश्रम कारावास की सजा भुगत रहे थे। रघुनाथ रामचंद्र पाठक, पंडित राधा मोहन गोकुल जी, वीर हरकरे एवं इनामुल्ला खां।

डा. हेडगेवार ने जेल जाने से पूर्व उन्हें विदा करने आए जन समुदाय से जो बात कही, वह तत्कालीन राजनीतिक मनोवृत्ति पर एक प्रहार था। जेल जाने में गौरव, सम्मान एवं सच्चा राष्ट्रवाद मानने की भ्रांति को उन्होंने विवेकपूर्ण तरीके से खंडित किया। उनका मत था कि आवश्यकता पड़ने पर ही जेल जाना चाहिए और साम्राज्यवाद से लड़ने के लिए जेल से बचकर बाहर रहने में देशभक्ति कम नहीं होती है। जेल से बाहर रहकर ही अहम भूमिका निभाई जा सकती है। इस छोटी किंतु महत्वपूर्ण बात ने राष्ट्रवादियों के बीच बौद्धिक बहस को जन्म दिया। कुछ लोगों को डा. हेडगेवार के वक्तव्य एवं व्यावहारिक पक्ष के बीच विरोधाभास दिखाई दिया। यह प्रश्न उठा कि डा. हेडगेवार ने जमानत क्यों नहीं ली और जेल से बाहर रहकर राष्ट्रीय आंदोलन में योगदान क्यों नहीं किंया? इस चर्चा का समाधान नागपुर से प्रकाशित साप्ताहिक 'महाराष्ट्र' ने किया। इसके संपादक गोपालराव ओगले ने डा. हेडगेवार के गैर समझौतावादी एवं साम्राज्यवाद विरोधी कृत्य के लिए बधाई देते हुए लिखा था:

'डाक्टर हेडगेवार अपने द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत के विरुद्ध जेल गए। 'जेल जाने से डर गया'—इस प्रकार का लोकापवाद न आए, इसलिए उन्हें जेल जाना आवश्यक प्रतीत हुआ। लोकापवाद अत्यंत ही निर्घृण दुर्वासा ऋषि के समान है। यह बड़े-बड़ों को कसौटी पर कसता है। इसी लोकापवाद के भय से भगवान रामचंद्र ने सीता जी को निष्पाप जानते हुए भी वनवास दिया था। उसी प्रकार डाक्टर जी को यह विश्वास होते हुए भी कि जेल में संसार से कटकर निष्क्रिय बैठने की अपेक्षा वह बाहर रहकर राष्ट्रीय आंदोलन के लिए अधिक काम कर

सकेंगे, वह लोकापवाद से बचने के लिए सहर्ष जेल गए। 'लोकापवादो बलवान्मतो मे'—भगवान रामचंद्र का यह वाक्य सभी सार्वजनिक जीवन जीने वालों को आचरण में लाना पड़ता है। हमें यह पूर्ण विश्वास है कि स्वेच्छा से जेल गए डाक्टर हेडगेवार अपने जेल जीवन में स्वार्थ-त्याग का उदाहरण प्रस्तुत करके और अधिक प्रदीप्त होकर नागपुर की उदयोन्मुख पीढ़ी का नेतृत्व करने एवं अपने विशुद्ध स्वातंत्र्य के ध्येय का प्रतिपादन करने शीघ्र ही हमारे बीच आएंगे।'[1]

जेल जीवन

डाक्टर हेडगेवार के साथ रह रहे लोगों की प्रकृति भिन्न-भिन्न थी। पाठक पेशे से वकील थे एवं सरल स्वभाव के व्यक्ति थे। वीर हरकरे उग्र राष्ट्रवाद के समर्थक थे, पंडित गोकुल जी कट्टर आर्यसमाजी तथा आक्रामक हिंदुत्व के हिमायती थे, तो इनामुल्ला कट्टर मुस्लिम और खिलाफत के समर्थक थे। पंडित गोकुल एवं इनामुल्ला के बीच धर्म के विषय पर वाद-विवाद आम बात थी। कभी-कभी तो झड़प भी हो जाती थी। तब डाक्टर हेडगेवार सहजता से स्थिति को सुलझाते थे। इनामुल्ला के हिंदू धर्म के प्रति दृष्टिकोण से डा. हेडगेवार को प्रतीत हुआ कि उनके मन में हिंदू धर्म के प्रति अज्ञान है। वह इनामुल्ला के मन में व्याप्त गलत धारणा एवं अज्ञान को दूर करने का प्रयास करने लगे।

डाक्टर हेडगेवार प्रतिदिन 'महाभारत' की एक कहानी अपने साथी बंदियों को सुनाया करते थे। ऐसा लगता था कि उन पर सश्रम कारावास का कोई प्रभाव ही नहीं था। उनके अपने चेहरे पर कभी भी उदासीनता का भाव प्रकट नहीं हुआ। जिस मनोहारी एवं सरल तरीके से महाभारत की घटनाओं, उद्धरणों एवं पात्रों को वह प्रस्तुत करते थे, उससे वह एक संन्यासी प्रतीत होते थे। तभी तो जेल अधिकारी नीलकंठराव जठार भी उनके सात्विक चरित्र से प्रभावित हुए बिना नहीं रहे। उन्होंने डाक्टर हेडगेवार से कहा - 'आप राजनीतिक बंदी नहीं, एक धार्मिक व्यक्तित्व वाले महर्षि लगते हैं।'

जठार अपनी क्रूरता के लिए विख्यात थे, परंतु एक वर्ष में वह डा. हेडगेवार के व्यवहार एवं राष्ट्रभक्ति से प्रभावित होकर स्वतंत्रता संग्राम के

---

1. महाराष्ट्र, 24 अगस्त 1921, संपादकीय— 'हेडगेवार जेल क्यों गए'

प्रति सहानुभूति रखने लगे थे। वह डा. हेडगेवार के प्रशंसक बन गए। जेल जीवन के बाद भी वह उनसे मिलने आया करते थे। इनामुल्ला की कट्टरता पर भी डा. हेडगेवार अपना असर छोड़ने में सफल हुए। काफी वाद-विवाद के बाद वह भी उनकी महाभारत कथा के श्रोता बन गए।

जलियांवाला बाग दिवस

डा. हेडगेवार ने 13 अप्रैल 1922 को जेल के अंदर 'जलियांवाला बाग दिवस' मनाने का निर्णय लिया। इनामुल्ला को छोड़कर सभी सहमत थे। यह निर्णय लिया गया कि सश्रम कारावास के अंतर्गत सभी पांचों राजनीतिक बंदी उस दिन काम नहीं करेंगे। इनामुल्ला की शर्त थी कि वह डा. हेडगेवार का अनुसरण करेंगे और उन्होंने भी डा. हेडगेवार के साथ उस दिन काम नहीं किया। एक छोटी सभा भी हुई, जिसमें डा. हेडगेवार का भारतीय राष्ट्रवाद पर एक लघु भाषण हुआ। यह सब जठार के मन में उत्पन्न सहानुभूति के कारण, बिना किसी विघ्न के संपन्न हो गया।

सश्रम कारावास के अंतर्गत सभी बंदियों को अलग-अलग प्रकार का काम सौंपा गया था। पाठक जी को चक्की चलाने का काम दिया गया था तो डा. हेडगेवार को तैयार कागज को घिसकर उसमें सफाई और चमक लाने का काम दिया गया था। डा. हेडगेवार के हाथों में छाले एवं सूजन हो गई थी। परंतु उन्होंने इसके बावजूद जेल अधिकारियों से अपनी सजा कम करने या किसी प्रकार की रियायत की मिन्नत नहीं की। उन छालों के बावजूद वह ईमानदारी से कागज घिसने का काम करते रहे। तब जठार ने स्वयं ही डा. हेडगेवार सहित उनके अन्य चार साथी बंदियों को पुस्तक बांधने का आसान काम दिया।

जेल से मुक्ति

नागपुर में उनके जेल से मुक्त होने की व्यग्रता से प्रतीक्षा की जा रही थी। स्थानीय समाचार-पत्रों ने एक सप्ताह पहले से इसकी सूचना देनी शुरू कर दी। अंततः प्रतीक्षा की घड़ी समाप्त हुई। 11 जुलाई 1922 को वह अपनी सजा पूरी करके बाहर आए। प्रकृति भी मानो उनके स्वागत में तैयारी कर चुकी थी। उस दिन मूसलाधार वर्षा हो रही थी। ऐसी वर्षा कई महीनों के बाद हुई थी।

जनजीवन अस्त-व्यस्त तो था, परंतु राष्ट्रीयता के ज्वार के सामने भला वर्षा कैसे रुकावट बनती! हजारों की संख्या में लोग अजनी जेल के सामने डा. हेडगेवार के बाहर आने की प्रतीक्षा वैसे ही कर रहे थे जैसे एक पिता विदेश से अध्ययन समाप्त करके लौट रही अपनी संतान की प्रतीक्षा किसी रेलवे स्टेशन पर करता है। लोगों में अति उत्साह था। मूसलाधार बारिश में वे आनंद का अनुभव कर रहे थे। प्रांतीय कांग्रेस के सभी प्रमुख नेता भी उनके बीच उपस्थित थे। इनमें डा. मुंजे, डा. ना.भा. खरे, डा. परांजपे, बलवंतराव मंडलेकर, अप्पासाहब हलदर, डा. पांचखेडे और वीर हरकरे शामिल थे। हरकरे डा. हेडगेवार से पूर्व ही जेल से मुक्त हो चुके थे। 'महाराष्ट्र' ने डा. हेडगेवार की रिहाई के बाद लिखा था - 'उनकी देशभक्ति सभी विवादों से परे है। उन्होंने जेल में अपनी निष्ठा साबित की। उनके असाधारण त्याग से उनकी जन्मजात देशभक्ति का गुण और भी चमकने लगा है। उनका जेल-जीवन पूरी तरह से निष्कलंक रहा है।'[1]

डा. हेडगेवार के स्वागत में नागपुर के चिटणीस पार्क में अगले ही दिन एक स्वागत समारोह रखा गया था। समारोह में प्रांतीय कांग्रेस के नेताओं के साथ-साथ हकीम अजमल खां, पं. मोतीलाल नेहरू, राजगोपालाचारी, डा. अंसारी और विट्ठल भाई पटेल जैसे कांग्रेस के राष्ट्रीय नेता भी डा. हेडगेवार के स्वागतार्थ विद्यमान थे।

डा. हेडगेवार कितने लोकप्रिय थे, उनका व्यक्तित्व कितना आकर्षक था और उनकी वाणी में कितना ओज था, इसका अंदाजा उस सभा में उमड़े हुए जनसमुदाय से लगाया जा सकता है। दिनांक 11 जुलाई की तरह 12 जुलाई को भी उतनी ही तेज और लगातार बारिश हो रही थी। इसलिए अंतिम समय में सभा का स्थान बदलकर व्यंकटेश थिएटर में कर दिया गया। लेकिन सभागृह में स्थान जब कम पड़ गया तब थिएटर का दरवाजा बंद करना पड़ा। इसके बावजूद हजारों लोग थिएटर के बाहर मैदान में खड़े होकर डा. हेडगेवार की एक झलक पाने एवं उनका भाषण सुनने के लिए बेताब थे। उनके भीतर के राष्ट्रवाद की प्यास को बुझाने के लिए बारिश के पानी की नहीं, बल्कि डा. हेडगेवार की वाणी की आवश्यकता थी।

इन राष्ट्रीय नेताओं के लिए एक साधारण कार्यकर्ता की इतनी लोकप्रियता

---

1. महाराष्ट्र, 12 जुलाई 1922, पृ. 5

सचमुच में आश्चर्य में डालने वाली थी। अतः उस दिन डा. हेडगेवार के स्वागत में दो समानांतर सभाएं हुईं—एक थिएटर के भीतर और एक खुले आसमान के नीचे।

डा. खरे सभा की अध्यक्षता कर रहे थे। सबसे पहले डा. हेडगेवार को बधाई देने वाला प्रस्ताव पारित किया गया और उन्हें फूलमालाओं से लाद दिया गया। जब-जब वक्ताओं द्वारा उनके निःस्वार्थ राष्ट्र-प्रेम एवं त्याग का उल्लेख होता था, सभा तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठती थी। कांग्रेस (सविनय अवज्ञा) जांच समिति के सदस्यों को जनसमुदाय के सामने कांग्रेस की स्थिति स्पष्ट करने व उन्हें निर्देश देने का अवसर मिला। वे तो सिर्फ प्रांतीय नेताओं से मिलकर वापस जाने वाले थे। अपने स्वागत का उत्तर देते हुए डा. हेडगेवार ने अत्यंत संक्षिप्त भाषण दिया। भाषण के पहले अंश में उन्होंने अपनी जय-जयकार पर व्यंग्य किया:

'एक वर्ष सरकार का मेहमान बनकर रहने के कारण मेरी योग्यता अथवा पहचान नहीं बढ़ी है। और यदि बढ़ी है तो उसके लिए हमें सरकार का ही आभार मानना चाहिए।'

वस्तुतः इस तरह का व्यक्तिपरक समारोह और माल्यार्पण कराना उनके स्वभाव में नहीं था। यह उन्होंने अपने बाद के जीवन में भी दर्शाया। जिसे त्याग, बलिदान एवं राष्ट्र-प्रेम कहा जा रहा था, उसे वह हर भारतीय की स्वाभाविक वृत्ति मानते थे। फिर उन्होंने लोगों एवं उपस्थित सभी प्रांतीय एवं राष्ट्रीय नेताओं को पूर्ण स्वातंत्र्य के लक्ष्य के लिए साफ शब्दों में चेताया—'राष्ट्र के सम्मुख सबसे उत्तम एवं श्रेष्ठ लक्ष्य रखना चाहिए। और पूर्ण स्वतंत्रता की प्राप्ति से कम कोई भी ध्येय रखना उपयुक्त नहीं होगा। इसकी प्राप्ति का मार्ग कौन-सा हो, इस विषय में स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास को भली भांति समझने वाले आज के श्रोताओं को कुछ भी बताना उनका अपमान करने के समान होगा। यह बात जरूर है कि स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करते हुए यदि मृत्यु का भी वरण करना पड़े तो उसकी चिंता नहीं करनी चाहिए। स्वतंत्रता का संघर्ष चलाने में जहां ध्येय हमेशा उच्च स्तर का होना चाहिए, वहीं दिमाग संतुलित होना चाहिए।"[1]

---

1. महाराष्ट्र, 19 जुलाई 1922, पृ. 11

जाहिर है, उन्होंने संसदीय राजनीति के लक्ष्य एवं 'डोमिनियन स्टेटस' की मांग पर अप्रत्यक्ष रूप से प्रहार किया।

नागपुर के बाद उनका स्वागत समारोह पूरे प्रांत के अन्य भागों में आयोजित किया गया। इनमें वर्धा, आर्वी, यवतमाल, अकोला, चांदा, मोहोपा और वाणी की सभाएं प्रमुख थीं।

बदला राजनीतिक परिदृश्य

एक वर्ष जेल में रहने के बाद जब डा. हेडगेवार पुनः राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय हुए तब उन्हें पूरा राजनीतिक परिदृश्य बदला हुआ मिला। दिनांक 12 फरवरी 1922 को असहयोग आंदोलन को वापस ले लिया गया था। महात्मा गांधी ने यह निर्णय संयुक्त प्रांत (यू.पी.) के चौरी-चौरा नामक स्थान पर 5 फरवरी 1922 को आंदोलनकारियों द्वारा हिंसा का रास्ता अख्तियार करने के बाद लिया था। आंदोलन की वापसी के कारण आंदोलनकारियों में निराशा एवं कुछ हद तक हताशा की मनःस्थिति बनी हुई थी।

कांग्रेस के भीतर विधान परिषदों के चुनाव में भाग लेने के विषय में बहस चल रही थी। कांग्रेस का एक वर्ग, जिसका प्रतिनिधित्व चित्तरंजन दास एवं मोती लाल नेहरू कर रहे थे, गांधीजी की नीतियों को अव्यावहारिक समझता था। वे कांग्रेस के अंदर रहते हुए विधान परिषदों के चुनाव लड़ने के पक्षधर थे। मराठी मध्यप्रांत में दास-नेहरू के राजनीतिक दृष्टिकोण को अन्य प्रांतों की अपेक्षा व्यापक समर्थन मिला। सभी बड़े नेता—बी. जी. खापर्डे, डा. मुंजे, वामनराव जोशी परिषद-प्रवेश के पक्षधर थे। वे सभी महात्मा गांधी के राजनीतिक दर्शन एवं कार्यक्रमों से कमोबेश सहमत नहीं थे। इस प्रकार जब स्वराज्य पार्टी का गठन हुआ, तब मराठी मध्यप्रांत में यह एक शक्तिशाली संगठन के रूप में उभरकर सामने आई थी। परंतु डा. हेडगेवार सहकारी सहयोग के पक्ष में नहीं थे। वह नहीं चाहते थे कि जन आंदोलनों की जगह विधान परिषदों के माध्यम से साम्राज्यवाद के खिलाफ लड़ाई लड़ी जाए। एकनाथ रनाडे ने उनके संबंध में लिखा है- 'वह क्रांतिकारी थे, न कि संसदीय राजनीतिज्ञ।'[1] उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था कि 'पूर्ण स्वातंत्र्य के लक्ष्य को 'डोमिनियन स्टेटस' के द्वारा

1. एकनाथ रनाडे, ग्रेटेस्ट हिंदू आफ द एज, आर्गेनाइजर, 23 जुलाई 1950

विस्थापित नहीं किया जा सकता है।' डा. हेडगेवार ने अपने लिए आयोजित स्वागत समारोहों का उपयोग हताशा में डूबे कांग्रेस संगठन में जान फूंकने के लिए किया। उनके भाषणों का लक्ष्य रहता था—आम कार्यकर्ताओं को ऊपर के नेताओं की गुटबाजी से दूर रखना एवं उन्हें पूर्ण स्वातंत्र्य के लक्ष्य के प्रति पुनः तैयार करना। चुनाव लड़ने को वह लक्ष्य से भटकाव मानते थे। लेकिन ऐसा विशुद्ध राष्ट्रीय दृष्टिकोण रखने वाले वह पूरे मराठी मध्यप्रांत में संभवतः अकेले लोकप्रिय नेता थे। प्रायः सभी बड़े नेता गांधी एवं दास-नेहरू गुटों में विभाजित थे।

इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति का सामना उन्होंने बड़े ही संयम एवं विवेक के साथ किया। वह स्वयं किसी भी गुट से नहीं जुड़े और न ही उन्होंने किसी गुट की आलोचना की। राजनीतिक सम्मेलनों की अध्यक्षता करने के लिए उनकी सबसे अधिक मांग थी। ऐसे ही बालाघाट में दो दिवसीय कांग्रेस सम्मेलन में वह अध्यक्ष के नाते विद्यमान थे। पहले दिन 16 दिसंबर 1922 को तत्कालीन राजनीतिक विषयों पर चर्चा हुई। डा. हेडगेवार के अतिरिक्त सोमाजी पाटील, मोरेश्वर हेडगेवार, ठाकुर नरहरि सिंह, बलवंत राव दीक्षित एवं पंडित नर्मदा प्रसाद ने अपने विचार व्यक्त किए। डाक्टर हेडगेवार ने प्रतिनिधियों से 'व्यक्तिनिष्ठ' होने की जगह 'तत्वनिष्ठ' होने की बात कही। उनके ही प्रभाव से दूसरे दिन 'खादी, स्वदेशी, ग्राम पंचायत एवं गो-रक्षा' जैसे विषयों पर प्रचार-प्रसार करने हेतु प्रस्ताव पारित किए गए। ऐसा प्रस्ताव पारित होना इसलिए महत्वपूर्ण हो गया था कि प्रांत के सभी बड़े नेता, जिनका पहले उल्लेख किया जा चुका है, गांधीवादी कार्यक्रमों को सार्वजनिक रूप से अस्वीकृत कर चुके थे। इतना ही नहीं, जब एक प्रस्ताव आया कि 'यह सम्मेलन परिषद-प्रवेश के प्रति विरोध प्रकट करता है' तब सम्मेलन में खलबली मच गई। इस प्रस्ताव के समर्थन में पांच भाषण हुए। तब एक संशोधन प्रस्ताव परिषद-प्रवेश के संबंध में भी रखा गया। आरंभ में डा. हेडगेवार ने प्रतिनिधियों को समझाने-बुझाने का प्रयत्न किया परंतु प्रतिनिधियों का एक वर्ग अपनी राय पर डटा रहा। तब उन्होंने मत विभाजन की अनुमति दी और परिषद-प्रवेश के समर्थकों की जीत हुई।[1]

डा. हेडगेवार ने अपने मत को प्रतिनिधियों के ऊपर थोपने की जगह

---

1. महाराष्ट्र, 20 दिसंबर 1922, पृ. 4

लोकतांत्रिक प्रक्रिया का उपयोग करना बेहतर समझा। बालाघाट का सम्मेलन प्रांत में चर्चित हुआ और डा. हेडगेवार इसी लोकतांत्रिक चरित्र के कारण प्रांतीय राजनीति में सर्वाधिक मान्य व्यक्ति बन गए थे। सन 1922 में वह प्रांतीय कांग्रेस के सहमंत्री बने और उन्हें स्थानीय इकाइयों के चुनाव एवं सदस्यता की जिम्मेदारी सौंपी गई थी। गुटों में विभाजित संगठन के पास वह अकेले निर्गुट नेता थे। इसीलिए जब 13 अप्रैल 1923 को नागपुर में 'झंडा सत्याग्रह' आयोजित किया गया तब मुंजे गुट के लोगों ने आवारी गुट पर तिलकवादियों की उपेक्षा का आरोप लगाया। नेतृत्व की इस लड़ाई से अलग रहकर डा. हेडगेवार ने सत्याग्रह के लिए स्वयंसेवकों को प्रशिक्षित करने का कार्य किया।

राजनीतिक गुटबाजी के कारण प्रांत के असहयोगी स्वयंसेवकों की घोर उपेक्षा हो रही थी। वे सभी अपने-अपने घरों में निष्क्रिय होकर बैठे थे। यह बात डा. हेडगेवार के मन को कचोट रही थी। वह नेतृत्व से अधिक आम कार्यकर्ताओं की भूमिका को महत्व देना चाहते थे। उन लोगों को राष्ट्रीय आंदोलन में पुनः सक्रिय करने हेतु डा. हेडगेवार ने एक महत्वपूर्ण पहल की। उन्होंने सेठ जमनालाल बजाज, नीलकंठराव देखमुख, एम.एस. अणे, बाबासाहब खापर्डे के सहयोग से 'वर्धा परिषद' की स्थापना की। अक्टूबर 1923 में नागपुर में इसका सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में प्रस्ताव पारित करके राष्ट्रीय राजनीति में भटकाव पर दुख प्रकट करते हुए कहा गया कि 'लोग भारत के स्वतंत्रता संघर्ष से अधिक अन्य विषयों को महत्व दे रहे हैं।' इस सम्मेलन में छह प्रस्ताव पारित किए गए, जिनमें सत्याग्रह के दौरान जेल गए आंदोलनकारियों का सम्मान करने, जेल में बंद आंदोलनकारियों की सहायता करने, प्रांत स्तर पर स्वतंत्रता सेनानी संगठन का निर्माण करने एवं धन संग्रह करने से संबंधित थे।[1] कारावास से मुक्त होने के बाद डेढ़ वर्ष तक डा. हेडगेवार प्रांतीय कांग्रेस को मजबूत करने, नेतृत्व एवं कार्यकर्ताओं के बीच आई शिथिलता एवं प्रतिद्वंद्विता तथा राजनीतिक भटकाव को दूर करने का प्रयास करते रहे। उन्होंने दर्जनों सभाओं में हजारों लोगों को संबोधित किया। उनके समर्थकों की एक बड़ी तादाद थी, परंतु डा. हेडगेवार पद एवं प्रतिष्ठा से दूर थे, जय-जयकार कराना उनका स्वभाव नहीं था, इसलिए उनका समर्थन आधार तो प्रत्यक्ष रूप से दिखाई नहीं पड़ रहा था, परंतु कथनी और करनी में एकरूपता के कारण उनका

1. महाराष्ट्र, 24 अक्टूबर 1923, 'वर्धा स्वयंसेवक परिषद'

व्यक्तित्व प्रांतीय नेताओं के बीच चमकते सितारे की तरह एकदम भिन्न रूप में दिखाई पड़ने लगा था। डा. हेडगेवार राजनीतिक आंदोलन में आई निष्क्रियता से अधिक कांग्रेस नेताओं के बीच व्याप्त गुटबाजी, आरोप-प्रत्यारोप, सिद्धांतों के नाम पर व्यक्तिनिष्ठा के विकास और सार्वजनिक जीवन में आ रही गिरावट से चिंतित थे। परंतु उनकी आशावादी एवं संघर्षशील प्रकृति कभी मरने वाली नहीं थी। वह नकारात्मक परिस्थितियों से लड़ना एवं उसके बीच और अधिक शक्तिशाली बनकर उभरकर सामने आना जानते थे। नकारात्मक परिस्थितियों के बीच ही उन्होंने अब तक सकारात्मक व्यक्तित्व का विकास किया था। क्रांतिकारी मार्ग से लेकर अहिंसावादी आंदोलन में हिस्सा लेते हुए वह अन्य महान हस्तियों की तरह वादों के चक्रव्यूह में कभी नहीं फंसे।

तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति में उन्होंने साम्राज्यवादियों के साथ-साथ समझौतावादियों के विरुद्ध जन-जाग्रति को आवश्यक समझा। वर्ष 1924 में उन्होंने पूर्ण स्वातंत्र्य के लक्ष्य को प्रचारित करने के लिए समाचार-पत्र को माध्यम बनाया और वह एक संघर्षशील संपादक की भूमिका में सामने आए। यद्यपि यह थोड़े समय के लिए था परंतु यह मध्यप्रांत के इतिहास का एक महत्वपूर्ण अध्याय है। वास्तव में वह विशुद्ध राष्ट्रवादी थे जो अलग-अलग समय में परिस्थिति की आवश्यकतानुसार अलग-अलग मंचों एवं संस्थाओं से अपने लक्ष्य को प्रसारित करते रहते थे। अगर यह कहा जाए तो गलत नहीं होगा कि वह वास्तविक अर्थ में सत्य के सच्चे प्रयोगकर्ता थे, परंतु इस प्रयोग को उन्होंने लिखकर या बोलकर आत्मप्रवंचना का साधन नहीं बनाया। वह समाज अथवा राष्ट्र के ऊपर अपने आप को महापुरुष के रूप में थोपना नहीं चाहते थे। एक संपादक के रूप में वह पूरे वर्ष भारतीय समाज एवं स्वतंत्रता संग्राम को दोषमुक्त करने के लिए संत कबीर की तरह स्पष्ट एवं ठेठ बयानी करते रहे। वह तो नागपुर के कबीर थे, जिनकी वाणी एवं व्यवहार पूरे राष्ट्र के लिए उपयुक्त था।

'स्वातंत्र्य' का संपादन

सन 1924 के आरंभ में नागपुर में मराठी अखबारों में 'महाराष्ट्र', हिंदी में 'संकल्प', 'प्राणवीर' और अंग्रेजी में 'हितवाद' प्रमुख समाचार-पत्रों में गिने जाते थे। 'हितवाद' के अतिरिक्त बाकी दोनों उग्र राष्ट्रवाद के समर्थक थे। प्रांत के अन्य राष्ट्रवादी पत्रों में 'प्रजापक्ष' (अकोला), 'स्वातंत्र्य हिंदुस्थान' (अमरावती) 'उदया' (अमरावती), 'यंग पैट्रियट' इत्यादि का नाम उल्लेखनीय है। 'महाराष्ट्र' के संपादक गोपालराव ओगले डा. हेडगेवार के मित्र एवं प्रशंसक थे। इसकी प्रसार संख्या 1924 के आरंभ में 6000 थी। 'हितवाद' का रुख ब्रिटेन के समर्थन में था और इसकी प्रसार संख्या 1000 थी। इसके संपादक एच. एन. नावसरकर थे। 'महाराष्ट्र' एवं 'हितवाद' दोनों साप्ताहिक थे जबकि 'प्राणवीर', जिसकी प्रसार संख्या 800 थी, द्विसाप्ताहिक था। 'संकल्प' के हिंदी एवं मराठी दोनों संस्करणों की प्रसार संख्या 500 थी।

असहयोग आंदोलन के बाद की राजनीति के प्रभाव से ये पत्र-पत्रिकाएं भी अछूती नहीं रहीं। इनमें अधिकांश का झुकाव मध्यप्रांत की राजनीतिक संस्कृति के अनुसार स्वराज्य पार्टी एवं सहकारी सहयोग के प्रति था। व्यक्तिगत एवं सैद्धांतिक पूर्वाग्रहों के कारण प्रांत के लोगों को दलीय समाचार अधिक मिलते थे और स्वतंत्रता का लक्ष्य गौण हो गया था।

राष्ट्रवादी प्रेस की इस हालत को देखकर नारायणराव वैद्य, ए.बी. कोल्हटकर एवं डा. हेडगेवार ने नए मराठी दैनिक 'स्वातंत्र्य' का प्रकाशन शुरू किया। थोड़े ही दिन में कोल्हटकर ने 'रणसंग्राम' नामक पत्र शुरू किया और डा. हेडगेवार ने 'स्वातंत्र्य' के संपादन का कार्य अपने हाथ में ले लिया। कोल्हटकर का 'स्वातंत्र्य' छोड़ने का एक कारण 'स्वातंत्र्य' की संपादकीय नीति से असहमति भी थी। 'स्वातंत्र्य' क्रांतिकारियों की भर्त्सना करने की जगह उनकी देशभक्ति की प्रशंसा करता था जो कोल्हटकर को पसंद नहीं था। संपादक मंडल और स्वयं वैद्य डा. हेडगेवार द्वारा बनाई गई संपादकीय नीति का समर्थन करते थे। इसका पहला अंक जनवरी 1924 के दूसरे सप्ताह में निकला। इस अंक में इसके उद्देश्य की घोषणा की गई—

'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस गत तीन वर्षों से भारत के राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए सफलतापूर्वक काम कर रही है। लेकिन इस प्रश्न का अब तक सही समाधान नहीं हो पाया है। इस दैनिक की शुरूआत स्पष्ट एवं बिना किसी लाग-लपेट के भारत के राजनीतिक उद्देश्य को परिभाषित करने के लिए की गई है। इसका नाम 'स्वातंत्र्य' रखा गया है जो इस बात का सूचक है कि अब समय आ गया है जब आत्मनिर्भरता एवं स्वतंत्रता की भावना प्रबल रूप से स्थापित हो; जो पहले की भिक्षावृत्ति की नीति (Policy of Mendicancy) से बिल्कुल विपरीत है। भारत माता के सम्मान और परंपरा को ध्यान में रखते हुए लोगों के सामने आदर्श प्रस्तुत करने का भरपूर प्रयास यह दैनिक करेगा।' आगे इसने अपने उद्देश्य को रखते हुए तत्कालीन राजनीतिक परिदृश्य पर चोट की। दलों के बीच झगड़े एवं स्वतंत्रता की मांग पर व्यक्ति अथवा दल की एकाधिकारवादी प्रवृत्ति को सामने रखते हुए कहा गया कि 'हमारा स्वतंत्रता का जो उद्देश्य है वह किसी खास दल मात्र का लक्ष्य न होकर पूरे राष्ट्र का लक्ष्य है। और यह आशा की जाती है कि सभी दल अपने मतभेदों को भूलकर इस समान उद्देश्य की प्राप्ति हेतु एकताबद्ध होकर कार्य करेंगे।'[1]

अपने प्रकाशन के साथ ही 'स्वातंत्र्य' एक लोकप्रिय समाचार-पत्र बन गया। सरकारी रिकार्ड के अनुसार डा. हेडगेवार के संपादन में इसकी प्रसार संख्या 1200 थी। इसका सीधा असर 'महाराष्ट्र' की प्रसार संख्या पर पड़ा, जो 6000 से घटकर 5000 हो गई।

इसने व्यक्ति, दल एवं सिद्धांत निरपेक्ष होकर पूर्ण स्वातंत्र्य के उद्देश्य एवं उसकी सामर्थ्य का समर्थन किया। जहां कहीं भी खोट नजर आया, डा. हेडगेवार ने आग के शोले बरसाने में तनिक भी हिचक नहीं दिखाई। 'स्वातंत्र्य' का संपादन करते समय उन्होंने अपने-पराए का भेद भुला दिया। जब डा. मुंजे ने मध्यप्रांत की विधान परिषद में ब्रिटेन के प्रधानमंत्री के भारत दौरे के पर एक स्वागत प्रस्ताव रखा तो 'स्वातंत्र्य' ने इसकी कटु आलोचना की। इसने 22 फरवरी 1924 के अंक में इस पर टिप्पणी करते हुए लिखा - 'हमारी राय में यह स्वराज्य पार्टी की घोषित नीतियों के विपरीत कार्य है।'

---

1. भारतीय समाचार पत्रों पर रिपोर्ट - मध्यप्रांत और बरार, संख्या 3, वर्ष 1924, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।

सर मोरोपंत जोशी ने, जो मध्यप्रांत के प्रमुख नेता थे, जब मध्यप्रांत के गृह मंत्री का दायित्व स्वीकार किया तो 'स्वातंत्र्य' के 27 सितंबर 1924 के अंक में डा. हेडगेवार ने लिखा- 'क्या सम्मानीय गृहमंत्री (Home Member) को यह मालूम नहीं है कि श्रीमान (गोपाल कृष्ण) गोखले ने, जिन्हें वह अपना गुरु मानते हैं, अपनी स्वतंत्रता बनाए रखने के लिए वाइसराय की कार्यकारी परिषद की सदस्यता एवं नाइटहुड का सम्मान स्वीकार नहीं किया था और वह ब्रिटिश राज के परंपरागत भक्तों, समर्थों, परांजपेओं और शास्त्रियों की श्रेणी में नहीं आते हैं?' डा. हेडगेवार राजनीतिक संस्कृति में हो रही गिरावट से हैरान थे। डा. मुंजे, जिन्हें वह जीवन भर सम्मान की नजर से देखते थे, ब्रिटिश प्रधानमंत्री का अभिनंदन कर रहे थे तो दूसरे राष्ट्रवादी जोशी साम्राज्यवादी प्रशासन का अंग बनने में सम्मान का अनुभव कर रहे थे। फिर डा. हेडगेवार की संपादकीय नीति प्रांत के राजनीतिज्ञों को कैसे रास आती?

इसने इस परंपरा को भी तोड़ दिया कि जो पत्र क्रांतिकारी आंदोलन का समर्थन करते हैं, वे गांधीवादी आदर्शों को नापसंद करते हैं और जो महात्मा गांधी के दृष्टिकोण का प्रतिपादन करते हैं, वे क्रांतिकारियों की भर्त्सना करते हैं। एक बंगाली युवक गोपीनाथ साहा द्वारा अर्नेस्ट डे की हत्या को इसने ब्रिटेन द्वारा किए जा रहे दमन एवं शोषण का परिणाम घोषित करते हुए साहा के कार्य को सही बताया। इसने लिखा कि 'यूरोपियन एसोसिएशन ने मृतक के परिवार के साथ भावभीनी संवेदना व्यक्त की है। हम यह समझ पाने में असमर्थ हैं कि एसोसिएशन जालियांवाला बाग की त्रासदी से, जिसमें पंजाब की मार्शल लॉ व्यवस्था के अंतर्गत निर्दोष लोगों की निर्मम हत्या हुई थी, क्यों नहीं विचलित हुई थी?

'सच्चाई तो यह है कि इस प्रकार की हत्या तो दमन की कार्रवाई का प्रत्यक्ष परिणाम है।'[1]

मध्यप्रांत में बंगाल के 'युगांतर' की भाषा से किस साम्राज्यवादी प्रशासन की नींद नहीं उड़ती? 'स्वातंत्र्य' को न तो किसी दल, और न ही किसी व्यक्ति का समर्थन था। यह पत्र सिर्फ प्रसार संख्या पर टिका था। इसे सरकारी विज्ञापन तो मिलता ही नहीं था, सरकार के भय से निजी विज्ञापन भी बंद हो गए।

---

1. स्वातंत्र्य, 18 जनवरी 1924

आर्थिक संकट के कारण पत्र मांग के अनुसार छप नहीं पा रहा था। 1200 प्रति से अधिक छापने की इसकी स्थिति नहीं थी। लगातार घाटे के बाद पहले इसे सप्ताह में दो बार, बाद में साप्ताहिक रूप से निकाला जाने लगा। फिर पृष्ठों की संख्या 8 से घटाकर 4 पृष्ठ कर दी गई और अंत में जनवरी 1925 के बाद इसका प्रकाशन बंद करना पड़ा। डा. हेडगेवार बिना किसी पारिश्रमिक के काम करते थे। सन 1924 के अंत में कुल 11,000 रुपये का घाटा था।

विज्ञापन प्राप्त करने के लिए 'स्वातंत्र्य' ने परिस्थितियों, तत्कालीन राजनीतिक स्वार्थों और ताकतों के साथ समझौता नहीं किया। डा. हेडगेवार इस पत्र की प्रसिद्धि और प्रकाशन बंद होने—दोनों के लिए जिम्मेदार थे। 'स्वातंत्र्य' उनकी वैचारिक अवधारणा का वाहक था, तो उसे प्रसिद्धि मिली और उनकी गैर समझौतावादी वृत्ति के कारण उसे आर्थिक समर्थन मिलना असंभव हो गया।

'स्वातंत्र्य' के अंकों में क्रांतिकारियों एवं महात्मा गांधी दोनों की हिमायत की गई। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की पत्र-पत्रिकाओं के बीच यह एक आदर्श प्रयोग था।

डा. हेडगेवार ने पत्र के द्वारा स्व-प्रचार की जगह अपने नाम का उद्धरण कम से कम होने दिया। उनके प्रायः सभी लेख बेनाम छपते थे। अतः जब 'स्वातंत्र्य' पर मानहानि का मुकदमा चलाया गया तब चांदा के न्यायाधीश चमन लाल ने लेखक का नाम पूछा और जब डा. हेडगेवार ने बताने से इंकार किया तो उन्हें हस्तलिखित मूल कापी न्यायालय के सामने प्रस्तुत करने के लिए कहा गया, जिसे डा. हेडगेवार ने ठुकरा दिया। इसके 1 मई 1924 के अंक में डा. हेडगेवार ने जो लिखा, वही बात चौदह साल बाद 1938 में हिंदू युवक परिषद के सम्मेलन में अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने कही। यह भाषण बहुत प्रसिद्ध हुआ। 'स्वातंत्र्य' ने उस अंक में लिखा था—'भारत इस गंभीर समस्या का सामना कर रहा है कि देश को विदेशी दासता से कैसे मुक्त कराएं। समस्या तब और भी गंभीर हो जाती है जब हम पाते हैं कि हमारे शत्रु अंग्रेज हमसे अधिक मजबूत एवं अनुभवी हैं। इस तथ्य से कुछ लोगों की धारणा बन गई है कि पूरब की राजनीति परिस्थिति का सफलतापूर्वक सामना करने में अक्षम है। लेकिन भारत के इतिहास को चंद्रगुप्त से लेकर शिवाजी तक देखने से साफ पता चलता है कि हमारी राजनीति भारत में ब्रिटेन के अधिनायकवाद को परास्त करने में पूर्णतः सक्षम है।'

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की पत्र-पत्रिकाओं में 'स्वातंत्र्य' का स्थान उत्कृष्ट श्रेणी में है। कम समय में व्यापक प्रभाव एवं जनजागरण का कार्य इसने जितना किया, उतना ही राष्ट्रवाद का हित इसने गैर समझौतावादी एवं कट्टर साम्राज्यवाद-विरोधी होने के कारण अस्तित्वहीन होकर किया। पत्रकारिता को डा. हेडगेवार राष्ट्रीय हितों, स्वतंत्रता प्राप्ति एवं सिद्धांतों व मूल्यों की प्रतिष्ठा का एक साधन समझते थे। इसीलिए वह इसे उन्हीं हाथों से बंद करने में तनिक भी विचलित नहीं हुए, जिन हाथों से इसे उत्साहपूर्वक शुरू किया था।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ

'वंदे मातरम्' आंदोलन से लेकर क्रांतिकारी मार्ग, गांधीवादी पथ एवं 'स्वातंत्र्य' का संपादन-कार्य करते हुए डा. हेडगेवार साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन के एक कर्मठ सिपाही ही सिद्ध नहीं हुए, बल्कि उनका परिपक्व एवं चिंतनशील मन और मस्तिष्क राजनीतिक व्यवहारों, सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों एवं विश्व के परिदृश्य में भारतवर्ष के पराभव पर भी सतत मंथन कर रहा था। उन्होंने चिकित्सक होकर भी चिकित्सा का काम नहीं किया; परिवार की गरीबी को देखते हुए भी धनोपार्जन में अपने आप को नहीं उलझाया, दबावों के बावजूद विवाह नहीं किया; और हिंदू महासभा एवं तिलक के अनुयाइयों का उन पर अनुग्रह होते हुए भी उन्होंने अपने विवेक और बुद्धि को उनके वैचारिक अधिष्ठान का दास नहीं बनाया। वह स्वभाव से स्वतंत्र प्रकृति के थे और शैशवकाल में भोंसला राजाओं के दुर्ग के खंडहर एवं उस पर फहरते हुए 'यूनियन जैक' ने उनके मन में जो प्रश्न खड़ा किया था कि 'हम गुलाम क्यों बने?'—उसके समाधान में उनका मन लगातार लगा रहा। उनकी पूरी जीवन दशा ही शुरू से समर्पण एवं कठोर साधना की रही। भौतिक सुख-सुविधाएं उनके जीवन की प्राथमिकता कभी नहीं बनीं।

व.ण. शेंडे ने 1941 ने लिखा था कि '1915 से 1924 तक के उनकी आयु के दस वर्ष, देश में होने वाले विभिन्न आंदोलनों एवं संस्थाओं का अभ्यासपूर्वक सूक्ष्म अवलोकन एवं विश्लेषण करने तथा राष्ट्र को ग्रसित करने वाले रोग का अचूक निदान खोज निकालने में व्यतीत हो गए। हमारी मातृभूमि हिंदुस्थान केवल क्षेत्रफल, आबादी, सृष्टि-सौंदर्य, खनिज, संपत्ति, उर्वरत्व एवं समृद्धि में ही नहीं, अपितु तत्व ज्ञान, धर्म, संस्कृति, इतिहास, पराक्रम, विद्या तथा कला-कौशल आदि में से किसी एक में भी आज से पूर्व कभी भी संसार के पीछे न तो थी और न ही आज है। इतना होते हुए भी कौन-से राष्ट्रीय दुर्गुण के परिणामस्वरूप हमारा यह प्राचीन हिंदू राष्ट्र दिवसानुदिवस अधोगति के गहरे गह्वर में गिरता जा रहा है, यह बात डाक्टर साहब के मन को बेधा करती

थी। ....उक्त प्रश्न के वास्तविक उत्तर को खोज निकालने के लिए वह चिंतन-मनन में निमग्न रहा करते थे।"[1]

भारत के इतिहास, वर्तमान एवं भविष्य को जोड़कर उन्होंने भारतीय राष्ट्रीयता के मूल प्रश्न पर गहन विचार किया। राजनीतिक जीवन में व्याप्त मूल्य-रहित व्यवहार, पद एवं प्रतिष्ठा के लिए राष्ट्रीय हितों का बलिदान एवं व्यक्ति, संप्रदाय, धर्म एवं राजनीतिक दलों के सामने राष्ट्र को गौण समझने की प्रवृत्ति को वह भारतीय जीवन की ऐसी बुराई मानते थे, जिससे राष्ट्र की अधोगति होती रही है। भाषणों, अपीलों अथवा अपेक्षाओं से राष्ट्र सबल नहीं हो सकता। इसके लिए निरंतर राष्ट्रीयता, देशभक्ति, सामूहिकता, सामाजिक संवेदनशीलता एवं ऐक्य के भाव का संचार होना जरूरी है। व्यक्ति राष्ट्र का पहला घटक होता है। जब तक उसके हृदय में राष्ट्र-प्रेम की पवित्र भावना नहीं पनपेगी, तब तक विशुद्ध राष्ट्रीयता की कल्पना नहीं की जा सकती है। व्यक्ति में परिष्कार से ही राष्ट्र का परिष्कार होगा। स्वामी विवेकानंद सहित सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के सभी विशिष्ट चिंतकों, महान भारतीय चिंतन परंपरा और ज्ञान के होते हुए भी राष्ट्र में संकीर्णताओं एवं कृत्रिम विभाजनों से ऊपर उठकर राष्ट्रीय भावना का अभाव था। चिंतक व सिद्धांतकार थे, चिंतन व सिद्धांत था, इतिहास एवं परंपराएं थीं, भविष्य की कल्पनाएं थीं, परंतु इन सबको एक सूत्र में पिरोकर एक स्वर प्रदान करने वाला संगठन नहीं था। डा. हेडगेवार ने राष्ट्रीय जीवन की इसी कमी को पहचान कर उसे पूरा करने का जो व्रत लिया था- 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' की स्थापना उसी का परिणाम थी।

संगठन का संस्कार

1925 में विजयादशमी के दिन 25 विशेष रूप से निमंत्रित, वर्षों से परखे हुए व्यक्तियों के साथ विचार-विमर्श करके उन्होंने एक नए संगठन एवं नई कार्यपद्धति का श्रीगणेश किया। भाऊजी कावरे, अण्णा सोहोनी, विश्वनाथराव केलकर, बालाजी हुद्दार, बापूराव भेदी उपस्थित लोगों में प्रमुख थे। इनमें अधिकांश डा. हेडगेवार के बाल्य जीवन के साथी एवं बाद में क्रांतिकारी गतिविधियों, नागपुर नेशनल यूनियन एवं गांधीवादी आंदोलन के दौरान सहकर्मी थे।

संघ की शुरूआत भी अपने आप में एक असाधारण तरीके से हुई थी।

---

1. व.ण. शेंडे, परम पूजनीय डा. हेडगेवार, 1941, नागपुर, पृष्ठ 11

न तो नए संगठन के बनने की सूचना या विज्ञप्ति समाचार-पत्रों में दी गई, न ही लिखित रूप से उद्देश्यों को घोषित किया गया। यहां तक कि संगठन बन गया, पर छह महीने तक उसका नामकरण भी नहीं हुआ। संगठन में पदों अथवा संगठन की संरचना का भी निर्माण संगठन के विस्तार के साथ-साथ होता गया। दिनांक 17 अप्रैल 1926 को संघ का नामकरण हुआ। अत: यह अति स्वाभाविक ही था कि संघ की स्थापना नागपुर के व्यस्त सामाजिक-राजनीतिक जीवन के लिए कोई हलचल मचाने वाली तो दूर, ध्यान केंद्रित करने वाली भी घटना नहीं थी। डा. हेडगेवार ने इसे प्रचार-प्रसार के तामझाम से जान-बूझकर दूर रखा था। स्थानीय प्रशासन तथा कुलीनों एवं बुद्धिजीवियों को संघ की प्रतिदिन की शाखा आरंभ में 'व्यायामशाला' प्रतीत हुई। यह भी अस्वाभाविक बात नहीं थी।

संघ की स्थापना से पूर्व डा. हेडगेवार हिंदू राष्ट्रवादियों से मिले थे, जिनमें विनायक दामोदर सावरकर भी थे। उनसे मिलने वह रत्नागिरी गए थे। इसके पूर्व जनवरी 1925 में मध्यप्रांत कांग्रेस समिति की ओर से स्वामी सत्यदेव का प्रांत में दौरा हुआ था। इस संपूर्ण दौरे में डा. हेडगेवार उनके साथ थे। स्वामी सत्यदेव ने हिंदू संगठन की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए कहा था :

'यह मानना बिल्कुल गलत होगा कि हिंदू संगठन मुसलमानों के विरुद्ध है। हिंदुस्थान हमारा सब कुछ है, यह निष्ठा और बलवती करने के लिए एक हिंदू संगठन की आवश्यकता है।'

हिंदू धर्म सुधार में राष्ट्रीय चेतना

हिंदू संगठनों के उतार-चढ़ाव, उनकी संरचना, भूमिका, उनके उत्थान-पतन, तात्कालिक एवं सर्वकालिक उद्देश्यों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने के बाद ही डा. हेडगेवार नए संगठन की आवश्यकता महसूस करने लगे थे।

उन्नीसवीं शताब्दी में सामाजिक-सांस्कृतिक सुधारों के द्वारा हिंदू समाज एवं धर्म को सुदृढ़ एवं संगठित करने का प्रयास किया गया था। राजा राममोहन राय का ब्रह्म समाज (1828), स्वामी दयानंद सरस्वती का आर्य समाज (1875) और स्वामी विवेकानंद का रामकृष्ण मिशन ऐसे दर्जनों संगठनों में से कुछ थे। मूलतः हिंदू समाज सुधार की प्रक्रिया से जुड़े रहने के कारण इन संगठनों एवं धर्म सुधारकों ने औपनिवेशिक शासन के दौरान तत्कालीन

राजनीतिक परिवेश एवं राष्ट्रीय चेतना को भी प्रभावित किया। हिंदुओं से संबंधित कोई भी आंदोलन एकांगी इसलिए नहीं रह सकता है कि आधुनिक राष्ट्र राज्य से इस ऐतिहासिक राष्ट्रीय समुदाय का संबंध सिर्फ नागरिक के रूप में नहीं है, बल्कि भारतीय राष्ट्र जिस सभ्यता एवं संस्कृति पर आधारित है, जिस इतिहास की नींव पर खड़ा है और जो सांस्कृतिक एवं वैश्विक चेतना को बौद्धिक रूप से अंगीकार करता है, उन सबके विकास की प्रक्रिया से भी है। भारतीय राष्ट्र की अन्य राष्ट्रों से भिन्नता भी इसी रूप में है। यह किसी सभ्यता अथवा सांस्कृतिक चेतना का हिस्सा न होकर अपनी सभ्यता और संस्कृति से एकात्म रूप से जुड़ा हुआ है। भारतीय सभ्यता एवं भारतीय राष्ट्र एक-दूसरे पर अवलंबित हैं, अत: इस राष्ट्र पर चोट सभ्यता प्रहार है एवं इस सभ्यता पर प्रश्न खड़ा करने का अर्थ भारत की राष्ट्रीयता के अस्तित्व पर प्रश्न खड़ा करना है। इसीलिए आर्य समाज 'अपनी सभी गतिविधियों में राष्ट्रवाद एवं लोकतंत्र की भावना से प्रेरित था।'[1] स्वामी विवेकानंद, लाला लाजपत राय, बाल गंगाधर तिलक, महर्षि अरविंद, विपिनचंद्र पाल, बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय आदि सभी चिंतकों ने हिंदू सभ्यता, हिंदू संस्कृति एवं हिंदू राष्ट्र को संकीर्ण धार्मिक, सांप्रदायिक, जातीय, भाषायी अथवा क्षेत्रीय धारणाओं से ऊपर उठकर देखा है।

इन सभी चिंतकों में एक बात समान रूप से दिखाई पड़ती है कि भारतवर्ष का स्वरूप एवं प्रकृति आध्यात्मिक है और राष्ट्र को 'देवी' के रूप में स्वीकार किया गया है; अर्थात सभी धर्मों से श्रेष्ठ 'राष्ट्र धर्म' को माना गया है। व्यक्तिगत धर्म और राष्ट्र धर्म के बीच विरोधाभास नहीं देखा गया है। राधाकुमुद मुखर्जी ने लिखा है कि 'हिंदुओं की देशभक्ति एक ईर्ष्यालु मालकिन है जो और किसी से संबंध को स्वीकार नहीं करती है।' भारतीय धर्म, समाज एवं संस्कृति का पुनर्जागरण काल हिंदू पुनर्जागरण काल था, क्योंकि धर्म सुधार आंदोलनों का सबसे अधिक प्रभाव हिंदुओं पर ही हुआ। अन्य संप्रदायों में धर्म सुधार की प्रक्रिया या तो बहुत धीमी थी या शुरू भी नहीं हो पाई थी। तभी तो राजा राममोहन राय को, जिन्होंने हिंदू समाज एवं धर्म को अपने सुधार कार्यक्रमों की प्रयोगशाला बनाया था, 'भारतीय पुनर्जागरण का पिता' कहा जाता है। इसलिए डा. हेडगेवार का यह अधिष्ठान कि हिंदू संगठन का कार्य राष्ट्रीय कार्य है, राजा राममोहन राय की परंपरा का द्योतक है। उनका स्पष्ट मत था कि हिंदुत्व ही

1. ए.आर. देसाई, सोशल बैकग्राउंड आफ इंडियन नेशनलिज्म, पृष्ठ 292

राष्ट्रीयत्व है। इसमें किसी धर्म एवं संप्रदाय को छोड़ने की अवधारणा न होकर सनातन सांस्कृतिक चेतना के आधार पर सकारात्मक रूप से राष्ट्रीयता को परिभाषित करने का बोध होता है। उन्होंने संघ की स्थापना के उद्देश्य को सामने रखते हुए कहा था :

'स्वप्रेरणा से एवं स्वयंस्फूर्ति से राष्ट्र सेवा का बीड़ा उठाने वाले व्यक्तियों का केवल राष्ट्रकार्यार्थ निर्मित संघ ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ है। प्रत्येक राष्ट्र में, उस राष्ट्र के व्यक्ति अपने देश की सेवा करने के लिए ऐसे ही संघ का निर्माण करते हैं। यही हमारा प्रियतम हिंदू राष्ट्र अर्थात हिंदुस्थान हमारा कार्यक्षेत्र रहने के नाते उसी के हित रक्षणार्थ हमने इस देश में संघ स्थापित किया है तथा इसी संघ के आधार पर हमने राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति करने का निश्चय किया है।'

उन्होंने 'हिंदू राष्ट्र' को हिंदुस्थान के सांस्कृतिक चरित्र का बोध कराने वाले भावात्मक विशेषण के रूप में प्रयुक्त किया है, जिसे 'धार्मिक राज्य' के साथ भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए। उन्होंने राष्ट्र को परिभाषित करते हुए कहा था :

'जिस भूमि पर एक विशिष्ट जाति व विशिष्ट परंपरा के अनुगामी, एक विचारधारा वाले तथा समान इतिहास वाले व्यक्ति एकत्र रहते हैं, उसी भूमि को राष्ट्र कहते हैं, तथा वह राष्ट्र भी उनके निवासियों के नाम से पहचाना जाता है। ऐसे स्वजातीय लोगों के हित संबंध एक जैसे होते हैं और उनमें एक प्रकार से एकत्व की भावना विद्यमान रहती है और यही भावना उनकी प्रगति का कारण बन जाती है। भिन्न-भिन्न देशों के, भिन्न-भिन्न संस्कृति के मानने वाले, भिन्न-भिन्न विचारधारा वाले, भिन्न-भिन्न इतिहास, परस्पर शत्रुता, परस्पर विरोधी हित संबंध रखने वाले, भक्ष्य और भक्षक के नाते रहने वाले तथा भिन्न-भिन्न हेतुओं से प्रेरित होकर एकत्र हुए लोग राष्ट्र की सृष्टि नहीं कर सकते और ऐसे लोगों के समूह को राष्ट्र नहीं कहा जा सकता है।'

हिंदुत्व आंदोलन का चरित्र

डा. हेडगेवार द्वारा संघ आंदोलन की शुरूआत को संघ पर कार्य/शोध करने वाले विद्वान गहराई से समझने की जगह तात्कालिक राजनीतिक, धार्मिक, सांप्रदायिक परिस्थितियों से जोड़कर देखते हैं।

तत्कालीन सामाजिक-सजनीतिक परिस्थितियों में हिंदू राष्ट्रवादियों के बीच किस प्रकार की बहस चल रही थी, इस पर एक नजर डालना आवश्यक है। बीसवीं शताब्दी में हिंदू चिंतकों के मन में हिंदू अस्तित्व चेतना का भाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो रहा था। सन् 1909 में दो लोगों ने इस भाव को तार्किक एवं ठोस तथ्यों के आधार पर रखा था। बंगाल के यू.एन. मुखर्जी ने 'डाइंग रेस' अर्थात् 'मरणासन्न जाति का सिद्धांत' प्रतिपादित किया था। उन्होंने लिखा था कि 'हम हिंदू हास्यास्पद रूप से अनभिज्ञ हैं। हमारे चारों तरफ क्या हो रहा है, इसका हमें कुछ पता नहीं है। दो समुदायों की हालत आज क्या है? मुसलमानों का भविष्य उज्ज्वल है और उनका इस बात में विश्वास भी है। परंतु हिंदुओं को इसकी कुछ कल्पना नहीं है। ... वर्ष के अंत में वे अपनी बढ़ी हुई संख्या गिनते हैं तो हम अपनी जनसंख्या में आई कमी को स्वीकार कर लेते हैं। उनमें ताकत, धन और भ्रातृत्व के भाव सुदृढ़ हो रहे हैं और हम टुकड़ों में बंटते जा रहे हैं।'

मुखर्जी ने जाति समस्या के कारण हिंदुओं के बीच उत्पन्न अनेकता को नैतिक प्रश्न से नहीं, बल्कि अस्तित्व के प्रश्न से जोड़कर देखा। बाद में 1911 की जनगणना में यह दिखाया गया कि हिंदुओं की जनसंख्या में पिछले तीस वर्षों में कमी आई है। मुखर्जी के इस जनसंख्या विश्लेषण ने तत्कालीन हिंदू नेताओं को प्रभावित किया। स्वामी श्रद्धानंद ने लिखा था कि 'मैं मुखर्जी द्वारा रखे गए तथ्यों से अत्यंत प्रभावित हूं।'

उधर पंजाब के आर्य समाजी नेता लालचंद ने 1909 में 'द पंजाबी' अखबार में लेखों की श्रृंखला लिखी। इसका शीर्षक था—'राजनीति से आत्मनिषेध'। इसमें उन्होंने हिंदुओं के पतन का मुख्य कारण राजनीति से विमुख रहने की प्रवृत्ति बताते हुए हिंदू हितों की उपेक्षा करने के लिए कांग्रेस की आलोचना की थी। उन्होंने हिंदुओं को एक राजनीतिक मंच पर एकताबद्ध होने पर जोर दिया और इसे वर्तमान संकट का एकमात्र समाधान बनाया।

वस्तुतः हिंदू राजनीति के लिए इन दोनों चिंतकों ने एजेंडा निर्धारित कर दिया था। एक दशक तक चली इस बहस एवं आत्ममंथन के परिणामस्वरूप अलग-अलग स्थानों पर छोटे-छोटे संगठनों का निर्माण होना शुरू हुआ। 'शुद्धि एवं संगठन' की घोषणा आर्य समाज ने की तथा स्वामी श्रद्धानंद ने 'भारतीय

हिंदू शुद्धि सभा' की स्थापना की। 1915 में अखिल भारतीय हिंदू महासभा की स्थापना की गई।

सन् 1906 में मुस्लिम लीग के निर्माण, औपनिवेशिक शासन के द्वारा इसे संरक्षण एवं कांग्रेस द्वारा तुष्टीकरण की नीति और असहयोग आंदोलन के बाद केरल के मोपला दंगों ने हिंदू राजनीति की आवश्यकता को मजबूत आधार प्रदान किया। नागपुर से डा. मुंजे के नेतृत्व में मालाबार (केरल) में एक जांच समिति भेजी गई जिसने वहां पर हिंदुओं पर हुए अत्याचारों की घटनाओं को पूरे राष्ट्र के सामने रखा। अहसयोग आंदोलन के बाद मुस्लिम उग्रता में वृद्धि हुई थी। इसी का परिणाम था कि 1922 के गया अधिवेशन में हिंदू महासभा की नई भूमिका सामने आई। इस अधिवेशन की अध्यक्षता पंडित मदन मोहन मालवीय कर रहे थे। उन्होंने अपने भाषण में हिंदुओं को आत्मरक्षा के लिए संगठित होने की अपील की।

1906 के बाद मुस्लिम मानसिकता का विकास जिस प्रकार हुआ, वह किसी भी राष्ट्रवादी के लिए घोर चिंता का विषय था। खिलाफत के बाद हिंदू-मुस्लिम संबंधों में परिवर्तन तेजी के साथ आया। मुस्लिम आक्रामक चरित्र ने हिंदू ध्रुवीकरण की संभावनाओं को बढ़ाने का काम किया।

मोपला दंगों पर गठित नागपुर कमीशन की रिपोर्ट ने भी धार्मिक आधार पर हिंदुओं में एकता स्थापित करने की बात कही। विनायक दामोदर सावरकर की पुस्तक 'हिंदुत्व : हू इज़ ए हिंदू' (1923) ने पूरी प्रक्रिया को सैद्धांतिक रूप प्रदान किया। इस प्रकार आर्य समाज, हिंदू महासभा एवं अन्य हिंदू संगठनों में इस बात पर आम सहमति थी कि तत्कालीन परिस्थिति में हिंदुओं को राजनीतिक शक्ति एवं संगठन के रूप में अग्रणी भूमिका निभानी चाहिए। वे इसे अंग्रेजी साम्राज्यवाद एवं मुस्लिम उग्रता और प्रभुत्व के खतरे—दोनों का मूल समाधान मानते थे। परंतु हिंदू एकता कैसे हो? हिंदुओं के बीच व्याप्त विरोधाभासों को कैसे समाप्त किया जाए? खंडित हिंदू समाज को कैसे राष्ट्रीय स्वरूप में संगठित किया जाए? ये सभी बुनियादी प्रश्न अनुत्तरित थे। सावरकर की पुस्तक ने हिंदू राष्ट्र को सभ्यता, भौगोलिक सीमा एवं पूर्वजों के परिप्रेक्ष्य में परिभाषित करने का प्रयास तो किया, परंतु पुस्तक पर उठे विवाद एवं उसका समाधानकारक उत्तर हिंदू चिंतकों के द्वारा न मिलने के कारण यह पुस्तक बुद्धिजीवियों के बीच सिर्फ अस्तित्व चेतना का ग्रंथ बनकर रह गई।

हिंदू चेतना के मंथन में एवं हिंदुओं के भविष्य की योजनाओं पर पं. मालवीय, भाई परमानंद, डा. मुंजे, वीर सावरकर, स्वामी श्रद्धानंद एवं लाला लाजपत राय एकाग्रता से जुटे हुए थे। राष्ट्रीयता के प्रश्न पर कुल मिलाकर उनके दृष्टिकोणों में एकरूपता थी। उनके वैश्विक दृष्टिकोण में यह भावना थी कि अल्पसंख्यकों के अस्तित्व का समाधान हिंदुओं के प्रभुत्व वाली राजनीति में स्वत: हो जाएगा। कुछ हद तक मुस्लिमों से प्रतिद्वंद्विता, भय और उनकी उग्रता से हिंदुओं में उत्पन्न असुरक्षा का भाव ही इस हिंदू राजनीति के प्रसार का आधार था। यह कहना गलत नहीं होगा कि 1909 से 1923 तक की हिंदू राष्ट्रवादी धारा, बहस, कार्यक्रमों एवं जन अभियानों पर मुस्लिम संदर्भ हावी था। कांग्रेस द्वारा मिश्रित राष्ट्रवाद के सिद्धांत को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया जा रहा था और 'हिंदू चरित्र' पर किए जाने वाले आरोपों के अपराध बोध के कारण इस राष्ट्रीय संगठन का नेतृत्व सदैव मुस्लिमों की सांप्रदायिकता, धर्मांधता तथा हिंदुओं के प्रति उनके उत्तेजक व्यवहारों पर पर्दा डालता था। यह विडंबना ही थी कि कांग्रेस मुस्लिम पृथकतावादियों को सम्मान के साथ संवाद में शामिल करती थी, परंतु हिंदू महासभा से दूरी बनाए रखती थी। विभाजन के दिन तक संवाद एवं राजनीतिक सहवास के लिए लीग आमंत्रित रहा, परंतु महासभा को अछूत बनाए रखा गया।

इसके साथ समकालीन हिंदू राष्ट्रवादियों ने भी हिंदुत्व एवं हिंदू राष्ट्र को सीमित रूप से चित्रित करने में एवं उसे प्रभावहीन बनाने में कम भूमिका नहीं निभाई है। उन्होंने सभा, सम्मेलनों, प्रचार आदि राजनीतिक कार्यक्रमों को आधार बनाकर पढ़े-लिखे बुद्धिजीवियों और मध्यमवर्गीय हिंदू परिवारों तक सीमित रखा। उनकी अपील की एक ही धुरी थी—कांग्रेस को विस्थापित करके हिंदू महासभा की प्रतिष्ठा, और संदर्भ था—कांग्रेस की अल्पसंख्यकों के प्रति नीति और लीग का अलगाववादी चरित्र। परिणामस्वरूप इनका सामाजिक आधार संकुचित था। हिंदू समाज के वास्तविक सवालों पर, जिनमें छुआछूत, जातियों के बीच ऊंच-नीच का भाव, घोर व्यक्तिवाद इत्यादि शामिल थे, कभी व्यावहारिक स्तर पर अच्छी तरह ध्यान नहीं दिया गया। उनकी सामाजिक समानता की अपेक्षा हिंदुओं में स्वत: हृदय-परिवर्तन की कल्पना पर निर्भर थी। इन कुलीन हिंदू नेताओं का सत्तावादी दृष्टिकोण आम हिंदुओं को कांग्रेस में न्यूनताओं के बावजूद प्रभावित नहीं कर पाया। अत: इस काल में हिंदुत्व

बहुमतवादी राजनीतिक अवधारणा के रूप में ही परिभाषित और प्रचारित होता रहा।

समकालीन घटनाचक्रों के बीच जब संघ की स्थापना की गई तब डा. हेडगेवार के मन में हिंदू सुरक्षा बल बनाने अथवा हिंदू राजनीति के लिए स्वयंसेवकों की फौज बनाने जैसी बातें नहीं थीं। यदि ऐसा होता तो वह हिंदू महासभा के मंच से ही हिंदू ध्रुवीकरण एवं हिंदू सुरक्षा का कार्य करते रहते। उन्हें महासभा में सम्मानित स्थान प्राप्त था तथा महासभा के सभी अखिल भारतीय नेताओं—पं. मालवीय, डा. मुंजे, भाई परमानंद, पद्मराज जैन, डा. श्यामाप्रसाद मुखर्जी और सावरकर का उन्हें सान्निध्य प्राप्त था। वह मानते थे कि सांप्रदायिक घटनाओं का प्रतिरोध होना, हिंदू हितों पर हो रहे हमले के विरुद्ध राजनीतिक स्वर उठाना आवश्यक है और महासभा अपने स्तर पर इन दायित्वों का निर्वाह कर रही है। परंतु राष्ट्रीय समस्या का यह स्थायी और चिरंतन समाधान नहीं है। जिस प्रकार के संगठन की कल्पना महासभा करती थी, वह क्षणिक आवेश और भावनाओं से प्रेरित था। सिर्फ घटनाओं की प्रतिक्रिया के आधार पर जो कार्य शुरू होता है, वह घटनाओं के निष्प्रभावी होते ही विलुप्त होने लगता है। डा. हेडगेवार हिंदू संगठन के सकारात्मक, स्थायी, प्रगतिशील एवं सर्वव्यापी स्वरूप की कल्पना कर रहे थे। अत: समकालीन हिंदू संगठनों की उपयोगिता अथवा न्यूनताओं के चक्रव्यूह से अलग हटकर उन्होंने नई शुरूआत की। इसीलिए 1925 का वर्ष भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास में मील का पत्थर बन गया।

दार्शनिक पृष्ठभूमि

मुखर्जी-लालचंद (1909) से लेकर मालवीय-सावरकर (1923) तक के हिंदू चिंतन एवं गतिविधियों से डा. हेडगेवार कितने सहमत अथवा असहमत थे, यह कहना आसान नहीं है। संघ के संदर्भ में हुए अध्ययनों में उन्हें इसी परंपरा का हिस्सा बताया जाता रहा है। यह हिंदू चिंतन प्रक्रिया को परखने, परिभाषित करने और अखंडित स्वरूप में देखने का आसान, सुलभ और सतही तरीका है। ऐसा होने का एक कारण संभवत: यह भी है कि डा. हेडगेवार ने सार्वजनिक अथवा निजी स्तरों पर कभी भी समकालीन हिंदू राष्ट्रवादी धाराओं, संगठनों अथवा नेतृत्व की न्यूनताओं के प्रति अपनी असहमति नहीं प्रकट की, न ही वह कभी

नेतृत्व की प्रतिस्पर्धा अथवा समानांतर सिद्धांत निरूपण के नायक बने। अत: सतही स्तर पर उन्हें डा. मुंजे, मालवीय, परमानंद और सावरकर की शृंखला में ही एक कड़ी के रूप में देखा जाता रहा है। परंतु सूक्ष्म दृष्टि डालने पर उनका दृष्टिकोण समकालीन हिंदूवादियों के दृष्टिकोण से साफ तौर पर अलग दिखाई पड़ता है।

उन्होंने हिंदू समाज, संस्कृति एवं धर्म को सभ्यता के प्रवाह का अंग माना है। अत: भारत की सभ्यता और राष्ट्र परस्पर एक-दूसरे पर निर्भर हैं। राष्ट्र का उद्भव सभ्यता की कोख से हुआ और सभ्यता का प्रवाह राष्ट्र के संबल से होता रहा है। अत: हिंदू राष्ट्र चिरंतन काल की ऐतिहासिक चेतना को सांस्कृतिक रूप से प्रतिबिंबित करने वाला एक दर्पण है। हिंदू दर्शन, साहित्य, संस्कृति एवं इतिहास एकत्व का बोध कराता है। हिंदू संगठन राष्ट्रीयता को सभ्यता के परिप्रेक्ष्य में स्थायी, गतिमान और ठोस आधार प्रदान करने का उपकरण मात्र है। हिंदुओं का संगठन एक राष्ट्रीय कार्य है। इसीलिए उन्होंने कहा था कि 'संघ का कार्य तथा उसकी विचारधारा हमारा कोई नया आविष्कार नहीं है। हमारा परम पवित्र सनातन हिंदू धर्म, हमारी पुरातन संस्कृति, हमारा स्वयंसिद्ध हिंदू राष्ट्र तथा अनादि काल से चला आया परम पवित्र भगवा ध्वज—ये सभी बातें संघ ने पूर्ववत सबके सामने रखी हैं। उपर्युक्त बातों में नवचैतन्य का संचार करने के लिए परिस्थिति के अनुकूल जो नई कार्यप्रणाली संघ को आवश्यक प्रतीत होगी, उसे संघ अंगीकृत करेगा।'

उन्होंने मुखर्जी के 'मृतप्राय जाति' के अधिष्ठान को अस्वीकृत कर दिया। उनका मत था—संख्यात्मक आधार पर हिंदुओं को तौलना एवं हिंदू राष्ट्र के पराभव की कल्पना सीमित बौद्धिकता का प्रतीक है। हिंदू एक ऐतिहासिक राष्ट्रीय जाति है, जो राष्ट्रीय पहचान का प्रतिनिधित्व करती है। यह भाववाचक है। और राष्ट्र की दुर्बलता का कारण हिंदू समाज, धर्म एवं संस्कृति का पराभव है; संगठन की वृत्ति का अभाव है। उन्होंने कहा—'दुर्बल समाज का दौर्बल्य ही वाह्य आक्रमणों का मूलभूत कारण होता है। संसार में शांति भंग करने का भी पाप ऐसे दुर्बल समाज के माथे ही मढ़ा जाता है। अतएव आक्रमणकारियों को दोष देने में व्यर्थ समय न खोते हुए संसार में अशांति का कारण बने दौर्बल्य को हर प्रयत्न से दूर करना—यही दुर्बल समाज का परम कर्तव्य है।'

डा. हेडगेवार का बल दो बातों पर था—प्रथमत: , हिंदू समाज की राजनीति एवं सामाजिक स्तरों पर दुर्बल स्थिति का दोष वाह्य कारणों एवं कारकों को देना सच्चाई से मुंह फेरना है; तथा द्वितीयत:, प्रभुत्व आंतरिक शक्ति और इच्छाशक्ति से स्थापित होती है। इसका निदान है- हिंदुओं के बीच अनवरत राष्ट्रीयता के भाव से संगठन करना। दौर्बल्य का कारण हिंदू समाज का विभेदकारी, संकीर्ण भावनाओं से पीड़ित होना था। अत: संगठन का पहला दायित्व राष्ट्रीयता की चेतना के आधार पर हिंदुओं में उनके ऐतिहासिक समुदाय की भूमिका को, जो उनके अवचेतन मन में विद्यमान है, जाग्रत करना है। उनकी दृष्टि में व्यापकता थी और सर्वग्राह्यता भी। संघ की स्थापना उन्होंने मोपला की प्रतिक्रिया में न करके राष्ट्रधर्म के सकारात्मक पहलू के आधार पर की थी। उन्होंने कहा था- 'आज हमारे हिंदुस्थान में हिंदू पच्चीस करोड़ हैं। इस देश की कुल जनसंख्या पैंतीस करोड़ आई कहां से? ये दस करोड़ लोग किसी समय हम ही में थे।' फिर उन्होंने जो सवाल उठाया, वह उनकी स्थितप्रज्ञता एवं व्यापक सैद्धांतिक धरातल का सूचक है। वह पूछते हैं: 'इन्हें हमने क्यों खो दिया? हम गहरी नींद में सो रहे थे। इसीलिए तो वे हममें से चले गए?' यह आत्मालोचन हिंदू राष्ट्रवादी चिंतन, मनन एवं मंथन में बिल्कुल भिन्न धरातल पर था।

उन्होंने हिंदू राष्ट्रवादियों द्वारा दी गई 'हिंदू' की परिभाषा एवं 'हिंदू राष्ट्र' की व्याख्या को संघ के सिद्धांत का आधार नहीं बनाया। वह जानते थे कि शब्दों द्वारा की गई परिभाषा भावनाओं के अमूर्त रूप को प्रकट करने में अक्षम होती है और अपूर्णता किसी सिद्धांत को निष्प्रभावी बना देती है। उन्होंने संघ के कार्य में बौद्धिकता को गतिविधियों और सिद्धांत को व्यवहार से जोड़कर उन प्रश्नों पर ध्यान दिया, जो अछूते थे—एक हिंदू का व्यावहारिक रूप कैसा है? वह कितनी राष्ट्रीय वृत्ति वाला है और राष्ट्रीयता एवं संस्कृति से कितना निकट है? वह अपनी किस पहचान—जातीय, वर्ग आधारित, क्षेत्रीय, भाषायी अथवा राष्ट्रीय—को महत्व एवं प्राथमिकता देता है? व्यक्तिगत आस्था एवं राष्ट्रधर्म के प्रति कितना सामंजस्य स्थापित करता है एवं व्यक्तिगत तथा पारिवारिक दायित्वों से ऊपर उठकर राष्ट्र के प्रति कितना उत्तरदायित्व महसूस करता है?

संघ का मूल मंत्र वैचारिक क्रियाशीलता है। डा. हेडगेवार ने कहा था कि 'यह ठीक तरह से समझ लो कि संघ न तो व्यायामशाला है, न क्लब है, न

मिलिटरी स्कूल ही। संघ है हिंदुओं का राष्ट्रवादी संगठन, जिसे फौलाद से भी अधिक मजबूत होना चाहिए।'

डा. हेडगेवार ने संगठन को उसी समकालीन परिवेश में खड़ा तो किया, परंतु इसका चरित्र पूर्णतः मौलिक था।

संगठन

उनकी मृत्यु के उपरांत 'केसरी' ने लिखा था कि 'तिलक की मृत्यु के बाद बहुत से दल थे, परंतु किसी ने भी राष्ट्रीय जीवन के सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलुओं—राष्ट्र के लिए गर्व पैदा करने, देशभक्ति व आत्मसम्मान—पर ध्यान केंद्रित नहीं किया। राष्ट्र के आधार को मजबूत करने के लिए यह आवश्यक है। डा. हेडगेवार ने इसे क्रियान्वित किया।' जब संघ आरंभ हुआ तब विचारधारा के नाम पर एक शब्द था—'राष्ट्र', और संगठन में सिर्फ एक ही श्रेणी थी-'स्वयंसेवक' और आदर्श के रूप में 'भगवा झंडा'। जैसे-जैसे संगठन का विस्तार होता गया, संगठन की संरचना खड़ी होती गई। 'शाखा' स्वयंसेवकों का समष्टि रूप है। शाखा में होने वाले देशी खेलों का उद्देश्य व्यक्ति में सामूहिकता के भाव का संचार करना है।

उन्होंने संघ में लिखित सदस्यता अथवा सदस्यता शुल्क जैसी परंपरागत संगठन शैली को लागू नहीं किया। उपस्थिति एवं सदस्यता को स्वैच्छिक बनाया गया। राष्ट्र के प्रति भावनात्मक प्रतिबद्धता का ध्येय ही सदस्यों के बीच एकता का आधार है। शाखा व्यायामशाला अथवा शारीरिक प्रशिक्षण केंद्र न होकर वैचारिक आंदोलन का नियमित केंद्र है। स्वयंसेवकों को प्रशिक्षण देने तथा उनकी प्रतिबद्धता को और मजबूत करने के लिए 'संघ शिक्षा वर्ग' की योजना लागू की गई, जिसे 'अधिकारी प्रशिक्षण शिविर' भी कहा जाता है। ऐसे प्रशिक्षित स्वयंसेवकों से संगठन विस्तार की अपेक्षा रहती है। ओ. टी. सी. के नाम से प्रचलित इस प्रशिक्षण की शुरूआत 1929 से की गई।

चार साल बाद डा. हेडगेवार ने उन प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं को, जो संघ के कार्य के लिए स्वेच्छा से पूर्ण समय देने के लिए तैयार रहते थे, प्रांत एवं प्रांत से बाहर कार्य के विस्तार के लिए भेजा। ऐसे सुप्रशिक्षित स्वयंसेवकों को 'प्रचारक' की संज्ञा दी गई। संगठन की संरचना में 'प्रचारक' ध्रुव की तरह कार्य करता है।

चौदह वर्षों तक संघ के प्रसार के बाद डा. हेडगेवार ने 1939 में नागपुर के निकट सिंदी नामक गांव में संघ की बैठक की। यह बैठक दस दिनों तक चली जिसमें उनके अतिरिक्त मा.स. गोलवलकर, आप्पाजी जोशी, नानासाहब टालाटुले, बाबाजी सालोडकर, तात्या तेलंग, कृष्णराव मोहरीर, विट्ठलराव पतकी और बालासाहब देवरस सम्मिलित हुए। संघ के दृष्टिकोण से यह बैठक अत्यंत ही महत्वपूर्ण साबित हुई। शाखा की नियमावलियों, संघ की प्रार्थना, प्रतिज्ञा आदि बातें इसी बैठक में निश्चित की गई थीं। संघ में संगठन दो समानांतर स्तरों पर काम करता है—औपचारिक एवं अनौपचारिक। औपचारिक स्तर पर संगठन की संरचना होती है, जो मुख्य शिक्षक से सरसंघचालक तक की लंबी श्रृंखला के रूप में होती है। अनौपचारिक स्तर पर औपचारिक पदों से बाहर रहकर संगठन कार्यों में प्रबल भूमिका निभाने वाले स्वयंसेवक होते हैं। इसी औपचारिक-अनौपचारिक योजना के कारण ही एक ही व्यक्ति उच्च पद पर कार्य करने के बाद अपने कनिष्ठ व्यक्ति के अधीन पहले की तुलना में पदहीन होकर अथवा लघु दायित्व वाले पद पर रहकर कार्य करता है। अत: अन्य संगठनों की तरह संघ में शक्ति का केंद्र अपरिभाषित एवं अदृश्य रहता है। इसका एकमेव कारण यह है कि डा. हेडगेवार ने 'सामूहिक नेतृत्व', 'सामूहिक उत्तरदायित्व' एवं 'आम सहमति' के आधार पर निर्णय लेने की परंपरा स्थापित की। अत: संघ का प्रत्येक सदस्य बुनियादी तौर पर स्वयंसेवक होता है। सरसंघचालक के पद को अधिकतम गरिमा प्राप्त है एवं उन्हें 'पथ प्रदर्शक, दार्शनिक एवं मित्र' की भूमिका में स्वीकार किया गया है। संघ की संगठन रचना इसे परंपरागत संगठनों से भिन्न व विशिष्ट रूप में स्थापित करती है। पहले धन, कार्यालय, चंदे की रसीद एवं पदों का निर्माण करने के बाद संगठन का विस्तार किया जाता है। परंतु डा. हेडगेवार ने संगठन को बिना नाम दिए, बिना पदों का सृजन किए संगठन खड़ा किया। इसका नामकरण स्थापना के छह महीने बाद हुआ तो सरसंघचालक, सरकार्यवाह एवं सरसेनापति जैसे पदों का निर्माण चार वर्षों के बाद हुआ। सरसंघचालक पद का निर्माण अनोखी रीति से किया गया।

देश की बदलती राजनीतिक परिस्थिति पर विचार-विमर्श करने के बाद संघ के सभी प्रमुख स्वयंसेवकों की दो दिनों की बैठक 9 व 10 नवंबर 1929 को नागपुर में हुई। बैठक में भविष्य में कांग्रेस के कार्यक्रमों के प्रति संघ की नीतियों एवं संगठन विस्तार पर चर्चा हुई। संगठन का आधार एकचालकानुवर्ती

रखने का निर्णय लिया गया। यह एक महत्वपूर्ण निर्णय था। इस पर गहन चर्चा हुई थी जिसमें विश्वनाथराव केलकर, तात्याजी कालीकर, आप्पाजी जोशी, बापूराव मुठाल, बाबासाहब कोलते, बालाजी हुद्दार, कृष्णराव मोहरीर, मार्तंडराव जोग एवं देवईकर ने भाग लिया था।

एकचालकानुवर्ती संघ को परंपरागत पाश्चात्य परंपरा के संगठनों से अलग स्वरूप प्रदान करता है। यह औपचारिक एवं अनौपचारिक संरचनाओं का सम्मिश्रण है। संगठन में व्यक्ति का महत्व उसके द्वारा अर्जित 'नैतिक शक्ति' से होता है। यह सिद्धांत इस मान्यता पर आधारित है कि संगठन में पारिवारिक परिवेश होता है जो एक कुटुंब के समान होता है। सभी सदस्य एक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए समान भाव से स्वैच्छिक समर्पण के द्वारा योग्य नेतृत्व के निर्देशन में काम करते हैं।

इसी सिद्धांत के तहत इन नौ प्रमुख कार्यकर्ताओं ने अन्य स्वयंसेवकों से विचार-विमर्श करके सरसंघचालक के पद का निर्माण किया। विचार-विमर्श की इस पूरी अनौपचारिक प्रक्रिया से डा. हेडगेवार अनभिज्ञ थे।

बैठक के अंतिम दिन जब स्वयंसेवकों की बड़ी सभा हुई तो आप्पाजी जोशी ने बैठक के निर्णयों को सुनाने के पहले आदेश दिया—'सरसंघचालक प्रणाम—एक, दो, तीन।' और स्वयंसेवकों ने डा. हेडगेवार को सरसंघचालक के रूप में प्रणाम किया। वह एकदम सकते में आ गए। कार्यक्रम के बाद उन्होंने अपनी अस्वीकृति का भाव व्यक्त करते हुए आप्पाजी जोशी से कहा—''यह मुझे पसंद नहीं है कि अपने से बड़े आदरणीय त्यागी पुरुषों का प्रणाम ग्रहण करूं।''

इस पर आप्पाजी ने उन्हें सूचित किया कि यह संघ का सामूहिक निर्णय है और 'संगठन के हित में आपको अप्रसन्न करने वाली यह बात तो स्वीकार करनी होगी।'

सरसंघचालक परिवार के मुखिया की तरह होता है। डा. हेडगेवार ने अपनी भूमिका को संघ के सामने रखकर अपने लोकतांत्रिक चरित्र, व्यवहार एवं आदर्श को संघ में परंपरा के रूप में स्थापित कर दिया। 1933 में उन्होंने निम्नलिखित घोषणाएं की थीं:

- इस राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का जन्मदाता अथवा संस्थापक मैं न होकर आप सब हैं—यह मैं भली भांति जानता हूं।
- आपके द्वारा स्थापित संघ का, आपकी इच्छा के अनुसार, मैं एक धाय का कार्य कर रहा हूं।
- मैं यह काम आपकी इच्छा एवं आज्ञा के अनुसार आगे भी करता रहूंगा तथा ऐसा करते समय किसी भी प्रकार के संकट अथवा मान-अपमान की मैं कतई चिंता नहीं करूंगा।
- आपको जब भी प्रतीत हो कि मेरी अयोग्यता के कारण संघ की क्षति हो रही है तो आप मेरे स्थान पर दूसरे योग्य व्यक्ति को प्रतिष्ठित करने के लिए स्वतंत्र हैं।
- आपकी इच्छा एवं आज्ञा से जितनी सहर्षता के साथ मैंने इस पद पर कार्य किया है, इतने ही आनंद से आपके द्वारा चुने हुए नए सरसंघचालक के हाथ सभी अधिकार सूत्र समर्पित करके उसी क्षण से उसके विश्वस्त स्वयंसेवक के रूप में कार्य करता रहूंगा।
- मेरे लिए अपने व्यक्तित्व के मायने नहीं हैं; संघ कार्य का ही वास्तविक अर्थ में महत्व है। अतः संघ के हित में कोई भी कार्य करने में मैं पीछे नहीं हटूंगा।
- संघचालक की आज्ञा का पालन स्वयंसेवकों द्वारा बिना किसी अगर-मगर के होना अनुशासन एवं कार्य प्रगति के लिए आवश्यक है। 'नाक से भारी नथ'—इस स्थिति को संघ कभी उत्पन्न नहीं होने देगा। यही संघ कार्य का रहस्य है।
- अतः प्रत्येक स्वयंसेवक स्वेच्छा से आज्ञा पालन करके दूसरे स्वयंसेवकों को ऐसा करने के लिए प्रेरित करे, यह स्वयंसेवक का कर्तव्य है।

जिस संगठन के मुखिया के विचार व्यवहार एवं कार्यों में समतुल्य हों, वह आदर्श चरित्र के रूप में संगठन का प्रकाशपुंज बन जाता है। डा. हेडगेवार ने सिर्फ आदर्श वाणी का उच्चारण ही नहीं किया, उसे अपने जीवन में अक्षरशः उतारा। तभी आद्य सरसंघचालक के रूप में वह अपने जीवन में और जीवन

के बाद भी जीवंत रूप से प्रेरणा के स्रोत बने रहे। उनके क्रिया-कलाप ने एकचालकानुवर्त्ती को एक आदर्श संगठनात्मक सिद्धांत बना दिया।

संघ के विस्तार के साथ-साथ संगठन की संरचनाओं का भी निर्माण होता गया। जिस प्रकार ब्रिटेन में लिखित संविधान की जगह परिपाटियों (conventions) का महत्व है, वैसे ही संघ संगठनात्मक परंपराओं एवं परिपाटियों के आधार पर चलता है।

सरसंघचालक पद के निर्माण के बाद सरकार्यवाह (महासचिव) एवं सरसेनापति इन दो पदों का भी निर्माण हुआ। संघ में दो उच्च स्तरीय संस्थाओं—अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा एवं अखिल भारतीय कार्यकारी मंडल—में नीतियों एवं कार्यक्रमों को निर्धारित करने का काम होता है। डा. हेडगेवार ने संगठन के लोगों से सलाह-मशविरे के बाद 1940 में गोलवलकर जी को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था। तब से निवर्तमान सरसंघचालक अपने उत्तराधिकारी की नियुक्ति इसी परंपरा के अनुसार करते हैं।

संघ में धन संगठन के स्तर पर ही एकत्र किया जाता है। वर्ष में एक बार स्वयंसेवक 'गुरु पूर्णिमा' के दिन संघस्थान पर ध्वज को दक्षिणा के रूप में स्वेच्छा से धन अर्पित करते हैं। इसे 'गुरु दक्षिणा' का नाम दिया गया है। यह परंपरा 1928 से चल रही है।

संघ की यह पूरी कार्यपद्धति एवं संरचना डा. हेडगेवार की ही कल्पना है। दत्तोपंत ठेंगड़ी ने ठीक ही कहा है कि संघ की विचारधारा एवं कार्यपद्धति 'डा. हेडगेवार की दृष्टि का ही उत्तरोत्तर प्रस्फुटीकरण है।'

डा. हेडगेवार ने संघ एवं राष्ट्र को समानार्थक बनाने का जो उद्देश्य रखा, उसका आधार संगठन के कार्य का एकमेव राष्ट्रीय भाव होना था। तभी वह कहा करते थे कि 'अपना संघ कार्य भी राष्ट्रीय कार्य है'; एवं संगठन का काम 'ईश्वरीय' है। संक्षेप में, शुद्ध एवं पवित्र भाव से बना एवं कार्यरत संगठन ही सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का आधार हो सकता है। संघ व्यक्ति में राष्ट्रीय चेतना एवं राष्ट्र में सांस्कृतिक चेतना उत्पन्न करने का साधन मात्र है।

स्वतंत्रता आंदोलन और डा. हेडगेवार

राष्ट्रीय मुद्दों पर आम सहमति किसी भी राष्ट्र के विकास के लिए आवश्यक मानी जाती है। यह तब और भी आवश्यक हो जाता है जब देश परतंत्र हो। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान बड़ी संख्या में छोटे-बड़े संगठन राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में सक्रिय थे। उनके बीच सैद्धांतिक मतभेद भी थे। एक ओर कांग्रेस का राजनीतिक मंच था तो दूसरी ओर कम्युनिस्ट पार्टी थी। हिंदू महासभा, मुस्लिम लीग आदि प्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक कार्यों में भाग ले रही थीं। डा. हेडगेवार ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की नीतियों एवं कार्यक्रमों को भिन्न रूप से विकसित किया, परंतु उनका मत था कि जब राष्ट्र के सामने जीवन-मरण का प्रश्न हो तब संगठनात्मक एवं सैद्धांतिक मतभेदों, नेतृत्व के बीच विवादों एवं 'अहम्' का कोई महत्व नहीं रह जाता है।

स्वतंत्रता की लड़ाई भी भारतीय राष्ट्र के अस्तित्व एवं अस्मिता का प्रश्न था। अत: वह साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन में बेहिचक सहयोग के पक्षधर थे। संघ की स्थापना से पूर्व वह क्रांतिकारी एवं बाद में कांग्रेसी कार्यकर्ता के नाते आंदोलनों में शरीक हुए थे। परंतु विशिष्ट सैद्धांतिक मार्ग को अपनाकर जब उन्होंने एक अलग संगठन बनाया एवं उसे अखिल भारतीय स्वरूप देने में व्यस्त थे तब भी उनकी प्रकृति एवं दृष्टिकोण में कोई अंतर नहीं आया। संघ के सरसंघचालक के रूप में उन्होंने जो नम्रता, राष्ट्रीय हित में व्यापक दृष्टिकोण और दृढ़ इच्छाशक्ति दिखाई थी, उसकी स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास में कोई तुलना नहीं है।

पूर्ण स्वतंत्रता का ध्येय

बाहर से संघ की शाखा नागपुर की व्यायामशालाओं जैसी ही लगती थी। शारीरिक प्रशिक्षण के साथ-साथ स्वयंसेवकों को मिल रहे बौद्धिक प्रशिक्षण का आभास प्राय: लोगों को नहीं था। डा. हेडगेवार हिंदू राष्ट्र को स्वतंत्र देखना चाहते थे और स्वयंसेवकों को उसी के अनुसार तैयार किया जा रहा था। इसीलिए डा. हेडगेवार पर शोधपूर्ण ज्ञान रखने वाले विद्वानों में भी संघ के उद्देश्य

के विषय में मतभेद है। देवेंद्र स्वरूप का मत है कि 'डा. हेडगेवार ने संघ की स्थापना सिर्फ स्वतंत्रता प्राप्त करने के उद्देश्य से की थी।' परंतु अधिकांश लोग इससे सहमत नहीं हैं। दत्तोपंत ठेंगड़ी के अनुसार डा. हेडगेवार संघ को स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए तैयार कर रहे थे, 'परंतु उनका लक्ष्य भारत को एक मजबूत, परम वैभवशाली राष्ट्र के रूप में स्थापित करना था। और यह काम स्वतंत्रता प्राप्ति के बिना संभव नहीं था।'

संघ की शाखाओं एवं प्रशिक्षण वर्गों में आरंभ से ही देशभक्ति से ओतप्रोत बौद्धिक, कार्यक्रमों एवं खेलों का आयोजन किया जाता था। वर्धा में 27-28 अप्रैल 1929 को एक सौ स्वयंसेवकों का प्रशिक्षण शिविर लगाया गया था। सभी वक्ताओं ने प्रशिक्षणार्थियों से अपील की थी कि स्वराज्य प्राप्ति के लिए वे अपना सर्वस्व त्याग करने हेतु तैयार रहें और सार्वजनिक तौर पर घोषणा की गई कि 'संघ का अंतिम लक्ष्य स्वराज्य प्राप्त करना है।' डा. हेडगेवार ने कहा कि 'ब्रिटेन की सरकार ने अनेक बार भारत को स्वतंत्र करने का आश्वासन दिया, परंतु वह झूठा साबित हुआ। अब यह साफ हो गया है कि भारत अपने ही बल पर स्वतंत्रता हासिल करेगा। आयरलैंड ने ब्रिटेन की संप्रभुता को स्वीकार करने से इंकार कर दिया। ब्रिटेन के शासक आयरलैंड के लोगों का दिल नहीं जीत सके और वे भारतीयों के दिलों को भी जीत नहीं पाए हैं। उन्होंने जबर्दस्ती भारत को अपना उपनिवेश बनाया है। प्रत्येक भारतीय, चाहे वह किसी भी धर्म को मानने वाला हो, हिंदू है; और हमारा स्वराज्य हिंदू स्वराज्य है। जो स्वतंत्रता की लड़ाई में भाग नहीं ले रहे हैं, उनकी आलोचना की जानी चाहिए। सभी भारतीय हिंदू हैं और उनकी यह जिम्मेदारी है कि स्वराज्य प्राप्त करें।'

यह महज एक संयोग ही है कि संघ की स्थापना के एक सप्ताह पूर्व डा. हेडगेवार एवं उनके सहयोगी हरेकृष्ण (आप्पाजी) जोशी प्रांतीय कांग्रेस समिति के लिए चुने गए थे। तब से लेकर 1928 के अंत तक वह प्रांतीय कांग्रेस समिति से जुड़े रहे। डा. हेडगेवार का प्रांतीय कांग्रेस के कार्यक्रमों के निर्धारण एवं कार्यान्वयन में महत्वपूर्ण योगदान होता था। 30 जनवरी 1927 को नागपुर शहर कांग्रेस ने भारत सरकार द्वारा फौज को चीन भेजे जाने के खिलाफ एक सभा की। सभा में सरकार के खिलाफ एक प्रस्ताव पारित किया गया। इस प्रस्ताव को संघ के नेता ल.वा. परांजपे ने सभा के सामने रखा था। प्रस्ताव में कहा गया था कि 'सभा सभी भारतीय नागरिकों से अपील करती है कि सभी

उचित तरीकों, यथा—प्रदर्शनों, प्रचार, विरोध प्रस्तावों के जरिए सरकार द्वारा भारतीय नागरिकों का सैन्य उद्देश्य के लिए उपयोग करने का प्रतिरोध करें।' इस प्रस्ताव को डा. हेडगेवार ने तैयार किया था।

साइमन-विरोध

1928 में साइमन विरोधी आंदोलन, असहयोग आंदोलन के बाद एक महत्वपूर्ण साम्राज्यवाद-विरोधी कार्यक्रम था। कांग्रेस के बनारस में हुए विशेष अधिवेशन में साइमन कमीशन का बहिष्कार करने एवं अखिल भारतीय स्तर पर हड़ताल रखने का निर्णय लिया गया था। मराठी मध्यप्रांत की कांग्रेस में जोशी महासचिव थे और हेडगेवार कांग्रेस कार्यसमिति के सदस्य थे। साइमन विरोधी आंदोलन के लिए प्रचार करने एवं लोगों को जाग्रत करने का कार्य डा. हेडगेवार को सौंपा गया था। उस वक्त तक नागपुर एवं उसके आसपास के क्षेत्रों में संघ की अठारह शाखाएं थीं। नागपुर में कांग्रेस ने साइमन कमीशन के विरोध में सभा करके प्रस्ताव पारित किया। प्रस्ताव में कहा गया था कि 'देश के हिंदुओं एवं मुस्लिमों को एकताबद्ध होकर साम्राज्यवादी ताकत को उचित जवाब देना चाहिए। जब साइमन कमीशन मार्च 1929 में मध्यप्रांत एवं बरार आया तब 'अलग-अलग राजनीतिक दृष्टिकोणों के बावजूद हिंदू नेताओं ने कमीशन के साथ सहयोग करने से इंकार किया जबकि मुस्लिमों ने कमीशन का स्वागत किया।'[1] साइमन कमीशन विरोधी आंदोलन में संघ की भागीदारी थी। डा. हेडगेवार ने संघ के स्वयंसेवकों को कांग्रेस की मार्फत कार्य करने का निर्देश दिया था। उन पर कार्यक्रम के प्रचार-प्रसार की जिम्मेदारी थी।

26 जनवरी 1930

स्थानीय स्तर पर संघ एवं कांग्रेस के बीच संबंधों में खटास आने लगी थी। कुछ प्रमुख कांग्रेसी नेता संघ पर झूठे एवं मनगढ़ंत आरोप लगा रहे थे। इस बात की सूचना जब डा. हेडगेवार को दी गई तब उन्होंने 24 अगस्त 1929 को लिखा था—

'मुझे इसकी पूर्व कल्पना थी। इस परिस्थिति में से भी हमें गुजरना ही

---

1. मध्यप्रांत एवं बरार की प्रशासनिक रिपोर्ट, वर्ष 1931-32. खंड-II, पृ. 9; गवर्नमेंट प्रिंटिंग प्रेस, नागपुर, 1933.

होगा। परमेश्वर के चरणों में हम प्रार्थना करें कि वह सबको सद्बुद्धि दे। अपनी सद्विवेकपूर्ण बुद्धि से और परमात्मा का ध्यान करके अपना कार्य करने पर भी यदि किसी व्यक्ति के मन में हमारे प्रति विवाद उत्पन्न होता है, या किसी को लगता है कि संघ का विरोध किया जाना चाहिए, तो हम क्या कर सकते हैं? यह राजनीति है। इससे हम कब तक डरते रहेंगे?'

स्पष्ट है कि कांग्रेसी नेता संघ के विस्तार एवं स्वतंत्र नेतृत्व से प्रसन्न नहीं थे। परंतु डा. हेडगेवार ने इन विवादों को राष्ट्रीय प्रश्न के सामने तनिक भी महत्व नहीं दिया। दिसंबर 1929 में कांग्रेस ने अपने लाहौर अधिवेशन में ऐतिहासिक प्रस्ताव पारित किया। इसने पूर्ण स्वतंत्रता को अपना ध्येय घोषित करते हुए 26 जनवरी 1930 (रविवार के दिन) को देश भर में स्वतंत्रता दिवस मनाने का निर्देश दिया। डा. हेडगेवार को इसका पूर्वाभास था और उन्होंने कांग्रेस के निर्णय पर अपनी प्रसन्नता प्रकट की। उन्होंने कांग्रेस द्वारा स्वतंत्रता दिवस मनाने के निर्णय को संघ का निर्णय बनाकर कार्यान्वित किया। स्थापना के बाद संघ की ओर से पहली बार कोई निर्देश शाखाओं को भेजा गया। 21 जनवरी 1930 को डा. हेडगेवार ने भेजे गए अपने परिपत्र में लिखा था—

'...इस वर्ष कांग्रेस ने 'स्वाधीनता' को अपना लक्ष्य निश्चित करके, कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने रविवार, दिनांक 26 जनवरी 1930 को संपूर्ण भारत में 'स्वाधीनता दिवस' मनाया जाए, ऐसा घोषित किया है।

'यह देखकर कि अखिल भारतीय राष्ट्रीय सभा अपने स्वातंत्र्य के ध्येय तक आ पहुंची है, यह जानकर हम सबको आनंदित होना स्वाभाविक ही है और इस ध्येय को सामने रखकर काम करने वाली किसी भी संस्था का सहयोग करना हमारा स्वाभाविक कर्तव्य है।

'इसीलिए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की सभी शाखाएं रविवार दिनांक 26-1-1930 को सायंकाल छः बजे अपने-अपने संघ स्थानों पर अपनी-अपनी शाखाओं में सभी स्वयंसेवकों की सभा आयोजित करके राष्ट्रीय ध्वज अर्थात भगवा ध्वज का वंदन करें। भाषण के रूप में सभी को स्वातंत्र्य का सही अर्थ और सही ध्येय प्रत्येक को अपने सामने किस प्रकार से रखना चाहिए, यह व्याख्या सहित स्पष्ट करें, तथा कांग्रेस ने स्वातंत्र्य के ध्येय को स्वीकार किया है इसलिए कांग्रेस का अभिनंदन करें। इस कार्यक्रम की रिपोर्ट हमारे पास भेजें।'

कांग्रेस के एकतरफा विरोध को उन्होंने संघ कार्यकर्ताओं के मन एवं मस्तिष्क में नहीं आने दिया। अपने परिपत्र में उन्होंने कांग्रेस को 'अखिल भारतीय' एवं 'राष्ट्रीय' संस्था माना और संघ एवं कांग्रेस के बीच नेतृत्व अथवा संगठन के नहीं, अपितु ध्येय के ऐक्य, समरूपता एवं पवित्रता को सहयोग का आधार बनाया। स्वतंत्रता के लक्ष्य के लिए सशर्त समर्थन देने वालों को वह स्वार्थी एवं अविवेकी मानते थे। संघ की शाखाओं में 26 जनवरी को संध्याकाल में स्वतंत्रता दिवस पर सभाएं मराठी मध्यप्रांत की सबसे प्रभावशाली घटना थी। उन्होंने प्रमाणित कर दिया कि राष्ट्र का हित संगठन के हित से ऊपर होता है और जो संस्थाएं शुद्ध राष्ट्रीय भाव से कार्य करती हैं, उनका हित भी राष्ट्रीय हितों में ही निहित होता है।

सविनय अवज्ञा आंदोलन

असहयोग आंदोलन को स्थगित करने के बाद आई शिथिलता 1928-29 तक पूरी तरह से समाप्त हो चुकी थी। महात्मा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस एक बार फिर साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन की तैयारी में जुटी हुई थी। कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन ने अखिल भारतीय कांग्रेस समिति को संघर्ष छेड़ने का अधिकार दे दिया था। समिति ने फरवरी 1930 में साबरमती में अपनी बैठक में महात्मा गांधी को आंदोलन का नेतृत्व करने एवं पथ प्रदर्शन करने का पूर्ण अधिकार दे दिया। महात्मा गांधी ने 6 अप्रैल 1930 को दांडी में नमक कानून तोड़कर सविनय अवज्ञा आंदोलन का श्रीगणेश किया। उसके बाद पूरे देश में सत्याग्रह के द्वारा कानूनों का उल्लंघन शुरू हो गया।

मध्यप्रांत में अकोला में आंदोलन की शुरूआत 9 अप्रैल 1930 को हुई। वहां भी नमक कानून तोड़ा गया। परंतु आंदोलन अप्रभावकारी रहा। सरकार सत्याग्रहियों की गिरफ्तारी न करके परस्पर संघर्ष को टालती रही। अतः प्रांतीय कांग्रेस ने आंदोलन को और प्रभावकारी बनाने के लिए 'जंगल सत्याग्रह' को भी आंदोलन के कार्यक्रमों में शामिल करने का अनुरोध किया। अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने इसे मान लिया।

मध्यप्रांत में वन विभाग के अंतर्गत 19,618 वर्ग मील जंगल था। 1930-31 में इससे प्रांत को 51,11,944 रुपये का राजस्व प्राप्त हुआ था। कुल खर्च

39,60,430 रुपये हुआ था एवं कुल बचत 11,51,514 रुपये की हुई थी। 1929-30 में कुल बचत 20,21,566 रुपये हुई थी। अत: कांग्रेस ने 'जंगल सत्याग्रह' द्वारा प्रांतीय सरकार के राजस्व को निशाना बनाया। उसका उद्देश्य इसके माध्यम से, प्रतिबंधित वन्य क्षेत्रों में घास एवं वृक्षों को काटकर सरकारी नियमों की अवहेलना करना था।

सविनय अवज्ञा आंदोलन का प्रभाव एवं गांधीजी के नेतृत्व में आंदोलन में भाग लेने की मानसिक स्थिति संघ में पूरी तरह से बन चुकी थी। डा. मुंजे की डायरी का निम्नलिखित उद्धरण संघ के भीतर के वातावरण को प्रदर्शित करता है—

'ग्रीष्मावकाश के दौरान प्रशिक्षण के लिए गांवों से आए स्वयंसेवकों को मैंने शाम को संबोधित किया था। मैंने उन्हें समझाया कि संघ का आदर्श भारत को हिंदू भारत एवं स्वराज्य को हिंदू राज उसी तरह बनाने का है जैसे अफगानिस्तान में मुस्लिम राज है। मैंने एक घंटे तक भाषण किया ... मैं उन लड़कों के चेहरों को देखकर समझ गया कि वे मेरे भाषण की प्रशंसा नहीं कर रहे हैं। संभवत: महात्मा गांधी का स्वराज्य प्राप्ति के लिए सविनय अवज्ञा आंदोलन उनके दिलो-दिमाग पर कुछ ज्यादा ही प्रभाव जमा चुका था या मेरा भाषण ही अच्छा नहीं था।''[1]

आंदोलन के आरंभ से संघ के स्वयंसेवकों ने सत्याग्रह में भाग लेना शुरू कर दिया था। लेकिन चरमोत्कर्ष तब आया, जब डा. हेडगेवार ने स्वयंसेवकों के साथ सत्याग्रह में भाग लेने का निर्णय लिया। देश की बदलती राजनीतिक परिस्थिति में संघ की भूमिका निश्चित करने के लिए नागपुर में सभी संघचालकों की एक बैठक नवंबर 1929 में बुलाई गई थी। तीन दिनों तक चली बैठक में सामूहिक रूप से यह तय किया गया कि संघ कांग्रेस द्वारा घोषित आंदोलन का पूर्ण एवं बिना शर्त समर्थन करेगा। 1929 के अंत तक संघ की कुल 37 शाखाएं थीं। नागपुर के बाद वर्धा संघ के दूसरे महत्वपूर्ण केंद्र के रूप में विकसित हुआ था। यहां 12 शाखाएं थीं। 1930 के मध्य तक संघ की 52 शाखाएं हो गई थीं एवं स्वयंसेवकों की संख्या दो-ढाई हजार थी। इसमें युवा स्वयंसेवक सात-आठ सौ थे।

---

1. मुंजे पेपर्स, प्राइवेट डायरी, 3 जून 1930, नेहरू स्मृति संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली

अत: संघ द्वारा आंदोलन का समर्थन करने का निर्णय अचानक अथवा किसी भी दबाव में नहीं किया गया। डा. हेडगेवार संघ की योजनाओं को महीनों पूर्व निर्धारित करते थे, जो संगठन की परंपरा बन गई। आंदोलन के प्रति संघ का दृष्टिकोण एवं इसका मूल्यांकन डा. हेडगेवार के भाषण के इस अंश से स्पष्ट हो जाता है—'इस भ्रम में नहीं रहना चाहिए कि वर्तमान आंदोलन स्वतंत्रता प्राप्ति की अंतिम लड़ाई है। इस आंदोलन के बाद निर्णायक लड़ाई होगी और हमें सर्वस्व त्यागकर उसमें कूदने के लिए तैयार रहना चाहिए।'

डा. हेडगेवार ने 1920-21 के अनुभवों से सीखा था कि कार्यकर्ताओं के मन में झूठा विश्वास उत्पन्न करने का परिणाम अच्छा नहीं होता है। 'एक वर्ष में स्वराज्य' की घोषणा से असहयोग आंदोलन के प्रति अति उत्साह तो उत्पन्न हुआ था, परंतु उसके बाद उसी अनुपात में हताशा, निराशा एवं क्षुब्धता भी उत्पन्न हुई थी। अत: उन्होंने स्वयंसेवकों से अपील की थी कि आंदोलन की वास्तविक प्रकृति समझाकर लोगों को इसमें शामिल करना चाहिए।

संघ की भागीदारी किस प्रकार हो, यह मुद्दा स्वयंसेवकों के मन में प्रश्न के रूप में खड़ा था। अनेक लोगों की इच्छा थी कि भगवा ध्वज के अंतर्गत संघ गणवेश में भागीदारी से संघ की पहचान बनेगी। इस प्रश्न का समाधान डा. हेडगेवार ने इस प्रकार किया- 'स्वयंसेवक व्यक्तिश: आंदोलन में संघचालक की अनुमति से भाग लें। उसमें उनके सहभागी होने पर किसी प्रकार की बाधा नहीं है।' डा. हेडगेवार साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन के एक मंच, एक झंडा, एक बैनर, एक कार्यक्रम के समर्थक थे। संघ के बैनर, ध्वज एवं अलग नेतृत्व के साथ आंदोलन में सम्मिलित होने का अर्थ था- 'व्यर्थ में विवाद को जन्म देना', अत: 'बिना किसी सैद्धांतिक बहस के', उन्होंने स्वयंसेवकों को सलाह दी- 'आंदोलन में पूरी तरह से समरस होने की कोशिश करनी चाहिए।' उन्होंने स्वयं उसका उदाहरण प्रस्तुत किया।

आदर्श पहल

संघ की योजनानुसार 12 जुलाई 1930 को नागपुर में गुरु दक्षिणा महोत्सव पर विशेष सभा आयोजित की गई। बड़ी संख्या में स्वयंसेवक एवं संघ के शुभचिंतक उपस्थित थे। तभी डा. ल. वा. परांजपे ने अपने भाषण में यह बताया कि डा. हेडगेवार अपने सहयोगियों के साथ 'जंगल सत्याग्रह' में भाग लेने जा

रहे हैं। उन्होंने आगे कहा कि 'जिन्हें भी इस आंदोलन में भाग लेना है, वे सहर्ष लें, पर शेष को इस नवजात संगठन के कार्य में हाथ बंटाना चाहिए। इसमें तनिक संदेह नहीं है कि वर्तमान आंदोलन राष्ट्र को स्वतंत्रता की दिशा में आगे बढ़ाने वाला है। इसके साथ ही साथ आगे की लड़ाई में सर्वस्व न्यौछावर करने वाले मनुष्यों को संगठित करते रहने का वास्तविक कार्य भी जारी रखना है।'

उत्सव के अंत में डा. हेडगेवार ने संक्षिप्त भाषण दिया। उन्होंने जो उदाहरण प्रस्तुत किया, वैसा संभवत: किसी भी संस्था ने स्वतंत्रता आंदोलन में नहीं किया था। कम्युनिस्ट आंदोलन को मजबूत करने की जगह कांग्रेस संगठन पर आधिपत्य जमाने के अवसर की तलाश करते थे और कांग्रेस के कई जनसंगठनों पर उन्होंने अपना कब्जा स्थापित करने में सफलता भी पाई थी। समाजवादी कांग्रेस के भीतर एक दल के रूप में खड़े थे। हिंदू महासभा एवं लीग दोनों ही अपने संगठन के अभिमान एवं समुदायों का नेतृत्व करने के स्वरचित घमंड में डूबे हुए थे। डा. हेडगेवार ने संघ को न तो आंदोलन के नाम पर विसर्जित होने दिया, न ही आंदोलन के भीतर खंडित मानसिकता का विकास होने दिया। वह कांग्रेस आंदोलन में सिर्फ एक सत्याग्रही के नाते शामिल हुए थे। उन्होंने अपने ऐतिहासिक भाषण में कहा :

'धन्यवाद देकर बैठने के बाद मैं संघ का सरसंघचालक नहीं रहूंगा। डा. परांजपे ने संघ का चालकत्व अपने ऊपर लेने की स्वीकृति दी है। इसके लिए संघ की ओर से हम उनका हार्दिक धन्यवाद करते हैं। हम लोग जो इस आंदोलन में भाग ले रहे हैं, सब अपने व्यक्तिगत स्तर पर ऐसा कर रहे हैं। संघ की विचारधारा एवं कार्यपद्धति में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ है, न ही हमारी उस पर से श्रद्धा डिगी है। देश में जितने भी आंदोलन चलें, अंतर्वाह्य ज्ञान प्राप्त करना तथा उनका उपयोग अपने कार्य के लिए करना देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के ध्येय से कार्यरत किसी भी संस्था का कर्तव्य है।'

1921 में जेल जाते समय उन्होंने जेल जाने के उत्साह को देशभक्ति का पर्याय नहीं माना था और कहा था कि जब आवश्यकता हो तभी जेल जाना चाहिए अन्यथा बाहर रहकर देश की स्वतंत्रता के लिए कार्य करना चाहिए। एक बार फिर उन्होंने अपने संबोधन में इस बात का उल्लेख किया। उन्होंने कहा :

'जेल जाना आज देशभक्ति का पर्याय बन गया है। पर जो मनुष्य दो वर्ष

जेल में रहने के लिए तैयार है, उससे यदि यह कहा जाए कि घर-बार के कामों से दो वर्षों की छुट्टी लेकर देश में स्वातंत्र्योन्मुख संगठन का काम करो तो कोई भी तैयार नहीं होता। ऐसा क्यों नहीं होता? ऐसा लगता है कि लोग यह बात समझने के लिए तैयार नहीं हैं कि देश की स्वतंत्रता साल-छह महीने काम करने से नहीं, वर्षानुवर्ष सतत संगठन करने से मिलेगी। इस क्षणिक देशभक्ति को छोड़े बिना तथा देश की स्वतंत्रता के लिए संगठन का कार्य करते हुए जीने का निश्चय किए बिना देश का भाग्य नहीं पलटेगा। यह वृत्ति युवकों में उत्पन्न करना तथा उनका संगठन करने का कार्य करना संघ का ध्येय है।'

उनके भाषण के पश्चात संघ के सरसेनापति मार्तंड राव जोग ने उन्हें तथा उनके साथ जाने वाले प्रमुख कार्यकर्ताओं को पुष्पहार अर्पण किए।

पुसद सत्याग्रह

14 जुलाई को डा. हेडगेवार के नेतृत्व में सत्याग्रह की टुकड़ी नागपुर से रवाना हो गई। उन्हें नागपुर स्टेशन पर विदाई देने के लिए सैकड़ों लोग उपस्थित थे। इनमें कार्यवाहक सरसंघचालक डा. परांजपे, ढबले, बैरिस्टर गोविंदराव देशमुख प्रमुख थे।

जहां-जहां ट्रेन रास्ते में रुकी, सैकड़ों लोगों ने उनका स्वागत किया एवं अनेक लोग उनके साथ होते गए। 15 जुलाई को वर्धा पहुंचने पर उनकी शोभायात्रा निकाली गई। यहां भी अनेक संघ नेता एवं स्वयंसेवक उनके साथ सत्याग्रह टुकड़ी में शामिल हो गए। इनमें नारायणराव देशपांडे एवं त्र्यंबकराव देशपांडे भी शामिल थे। डा. हेडगेवार के साथ आप्पाजी जोशी, 'महाराष्ट्र' के संपादक बालासाहब ढबले, दादाराव परमार्थ, विट्ठलराव देव, भैय्याजी कुंबलवार, आर्वी के अंबाडे, चांदा के पालेवार आदि प्रमुख लोग थे। टुकड़ी 16 जुलाई को पुसद पहुंची। 17 जुलाई को डा. हेडगेवार ने यवतमाल में एक बड़ी सभा को संबोधित किया। आंदोलन के लिए बनी 'वार कौंसिल' ने डा. हेडगेवार के सत्याग्रह का दिन 21 जुलाई को निर्धारित किया था। उनके साथ आए सभी संघ नेताओं को 'वार कौंसिल' ने अलग-अलग सत्याग्रह टुकड़ियों का नेतृत्व करने का निर्देश दिया।

पहले चरण के सत्याग्रह को, जिसका श्रीगणेश एम. एस. अणे ने पुसद में किया था, अपेक्षित सफलता नहीं मिल पाई थी। अनेक बड़े नेता एक सप्ताह

तक सत्याग्रही टुकड़ियों का नेतृत्व कर चुके थे। अतः सत्याग्रह का कार्यक्रम एक सप्ताह के बाद स्थगित करना पड़ा। 'वार कौंसिल' ने दूसरे चरण के सत्याग्रह की तिथि 21 जुलाई निश्चित की थी, जिसका उद्घाटन डा. हेडगेवार ने किया। टी. एस. बापट की इस घोषणा के बाद पुलिस रिपोर्ट में सत्याग्रह के संबंध में कहा गया कि 'पुसद का सत्याग्रह सफल नहीं था। परंतु दूसरे चरण का सत्याग्रह, जो यवतमाल से चार मील दूर 21 जुलाई को होने वाला है, उसके सफल होने की पूरी संभावना है।'

21 जुलाई को सुबह साढ़े छह बजे नागपुर भवन के मैदान में स्वयंसेवकों ने पहले ध्वज-वंदना की फिर कॉटन मार्केट के लिए प्रस्थान किया। आरंभ में डा. हेडगेवार के साथ तीन-चार हजार लोग थे, परंतु जैसे-जैसे वह आगे बढ़ते गए, लोगों की संख्या बढ़ती गई। सत्याग्रह स्थल पर यह संख्या दस हजार हो गई थी, जिसमें सात-आठ सौ महिलाएं थीं। लोग विभिन्न सवारियों से, जिसमें मोटरकार से लेकर बैलगाड़ी तक शामिल थी, चल रहे थे। डा. हेडगेवार के साथ उमड़े जन सैलाब ने पुलिस की भविष्यवाणी को सच साबित किया। सत्याग्रह स्थल पर पुलिस एवं वन विभाग के सभी बड़े अधिकारी मौजूद थे। जब डा. हेडगेवार ने टुकड़ी के साथ 'जंगल कानून' तोड़ा, उन्हें तुरंत गिरफ्तार कर लिया गया। हेडगेवार लोगों से सत्याग्रह जारी रखने की अपील करके पुलिस हिरासत में चले गए। 21 जुलाई की शाम को उन पर मुकदमा चलाया गया। न्यायाधीश भरूचे ने उन्हें नौ महीने के सश्रम कारावास की सजा दी। आपराधिक दंड संहिता 117 के अंतर्गत छह महीने का सश्रम कारावास एवं 379 के अंतर्गत तीन महीने का सश्रम कारावास इसमें सम्मिलित था। पुलिस एवं प्रशासन इसकी सफलता के कारण आशंकित थे कि आंदोलन का स्वरूप तेज एवं उग्र न हो जाए। यही कारण है कि डा. हेडगेवार को अन्य सत्याग्रहियों की तुलना में अधिक सजा दी गई। समान जुर्म के लिए एक ही मजिस्ट्रेट ने एक ही दिन अलग-अलग सजा सुनाई। जहां उन्हें नौ महीने के सश्रम कारावास की सजा दी गई, वहीं उनके साथ गए सभी 11 सत्याग्रहियों को चार महीने की साधारण कैद की सजा दी गई। डा. हेडगेवार के सत्याग्रह के प्रभाव के बारे में पुलिस रिपोर्ट में लिखा गया कि 'डा. हेडगेवार को दी गई सजा का संतोषप्रद असर हुआ और कोई भी उस स्तर का नेता सत्याग्रह करने आगे नहीं आया।' नागपुर में उनके समर्थन में एक बड़ी रैली निकाली गई। यवतमाल से डा. हेडगेवार

द्वारा सत्याग्रह के दौरान काटी गई घास को नागपुर लाया गया एवं शाखाओं में रिपोर्ट पढ़ने के बाद घास को ध्वज के ऊपर चढ़ाया गया। 21 जुलाई को ही कांग्रेस ने भी उनके समर्थन में रैली का आयोजन किया था।

डा. हेडगेवार का सत्याग्रह मध्यप्रांत के सविनय अवज्ञा आंदोलन में सर्वाधिक सफल कार्यक्रमों में से एक था।

आंदोलन में तीव्रता

डा. हेडगेवार को कड़ी सजा मिलने का असर प्रांत के कांग्रेस संगठन पर भले ही न हुआ हो, परंतु संघ के स्वयंसेवकों ने और भी जोर-शोर से सत्याग्रह में हिस्सा लेना शुरू कर दिया था। जहां-जहां संघ का प्रभाव था वहां-वहां सत्याग्रह के भिन्न-भिन्न रूप सामने आने लगे।

इसका सबसे अधिक प्रभाव शराब की दुकानों पर छापा मारने पर पड़ा। नागपुर में नशाबंदी के लिए स्वयंसेवकों ने जमकर अभियान चलाया। 1920-21 में अहसयोग आंदोलन के दौरान भी यह कार्यक्रम प्रांत में सफल रहा था और 1931 में इस आंदोलन के फलस्वरूप शराब की बिक्री में साठ प्रतिशत की कमी आई। सरकार विरोधी आंदोलनों में 1930-32 में संघ की अग्रणी भूमिका को स्वीकार किया गया।[1]

प्रतिबंधित साहित्य पढ़ना भी सविनय अवज्ञा आंदोलन में शामिल किया गया था। नागपुर में संघ के कार्यकर्ताओं ने सार्वजनिक सभाओं में ऐसे साहित्य को पढ़कर गिरफ्तारियां दी थीं। इसमें संघ के सरकार्यवाह जी. एम. हुद्दार भी शामिल थे। उन्होंने एक सार्वजनिक सभा में मैजिनी एवं विनायक दामोदर सावरकर की प्रतिबंधित पुस्तकों को पढ़कर खुल्लमखुल्ला पुलिस एवं प्रशासन को ललकारा और गिरफ्तारी दी थी।[2] नागपुर के संघचालक आप्पासाहब हलदे ने संघचालक के दायित्व से मुक्त होकर वार कौंसिल के डिक्टेटर की भूमिका निभाई और बाद में 'जंगल सत्याग्रह' करके जेल गए। उसी प्रकार सिरपुर के संघचालक बाबूराव वैद्य ने भी गिरफ्तारी दी थी। संघ के दूसरे अखिल भारतीय

---

1. पाक्षिक रिपोर्ट, मध्यप्रांत और बरार, जुलाई 1932 का उत्तरार्द्ध, F.L/P&J/12/40 राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली
2. केसरी, 9 दिसंबर 1938

अधिकारी मार्तंड जोग को, जिन्हें संगठन में 'सेनापति' का पद दिया गया था, वार कौंसिल के स्वयंसेवकों का 'कैप्टन' नियुक्त किया गया था। उन्होंने कौंसिल के गुप्त समाचार पत्र 'वार बुलेटिन' के भी प्रकाशन की जिम्मेवारी ली थी। बाद में 4 सितंबर को संघ के स्वयंसेवकों के साथ नागपुर से साठ कि. मी. दूर तलेगांव में सत्याग्रह करके गिरफ्तारी दी। सभी को चार महीने के सश्रम कारावास की सजा हुई थी। उनके सत्याग्रह में भी हजारों की संख्या में लोग शामिल थे। रामभाऊ वखरे, विट्ठलराव गाडगे, सीताराम पंत मेहकर जैसे अनेक प्रमुख संघ नेताओं ने सत्याग्रहियों का नेतृत्व किया था। मेहकर यवतमाल में संघ के कैंप के व्यवस्था-प्रमुख थे। उन्होंने संघ के स्वयंसेवकों के साथ गिरफ्तारी दी थी।[1] तलेगांव के डा. अंबादास नारायण, विष्णु गोविंद घोटकर, विट्ठल भामजी लोहन आदि स्वयंसेवकों को चार महीने के सश्रम कारावास की सजा मिली।[2]

संघ के सरसंघचालक डा. हेडगेवार सहित 125 स्वयंसेवक अकोला जेल में ही बंद थे। प्राय: सभी पदाधिकारियों ने संगठन के दायित्व से मुक्त होकर कांग्रेस सत्याग्रह में भाग लिया था। यद्यपि संघ के स्वयंसेवक व्यक्तिगत तौर पर ही इसमें भाग ले रहे थे परंतु मध्यप्रांत के सत्याग्रह में उन्होंने जान फूंकने का ऐतिहासिक दायित्व निभाया था। डा. हेडगेवार को इस बात का अत्यधिक संतोष था। एक नवजात संगठन द्वारा अपने से शत्रुता का भाव रखने वाले कांग्रेसी नेताओं द्वारा निर्मित वार कौंसिल के निर्देशन में पूरे मन से आंदोलन में भाग लेना मध्यप्रांत की तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति में सचमुच असाधारण घटना थी। डा. हेडगेवार ने अपनी कथनी 'राष्ट्र संगठन से बड़ा होता है' एवं 'राष्ट्रीय हित सभी हितों से ऊपर होता है' को व्यवहार में बदलकर दिखा दिया था।

संघ ने अपने प्रशिक्षण कैंपों के लिए स्वयंसेवकों को प्रशिक्षित करके प्राथमिक चिकित्सा हेतु एक सुश्रुषा पथक का निर्माण किया था। इसमें 100 स्वयंसेवक थे। इस पथक ने मध्यप्रांत में सत्याग्रह के दौरान महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। प्रदर्शनों, शोभायात्राओं एवं सत्याग्रहियों के साथ स्वयंसेवकों का

---

1. केसरी, 2 अगस्त 1930 एवं 22 जुलाई 1930, पृ. 2
2. वही

दल चला करता था। पुलिस के दमन या कमजोरी से मूर्च्छा खाकर गिरने वाले आंदोलनकारियों की प्राथमिक चिकित्सा की जाती थी। 9 सितंबर को नागपुर में पुलिस ने सत्याग्रहियों पर अमानुषिक प्रहार किया, जिसमें दर्जनों सत्याग्रही जख्मी हुए थे। इन सबका उपचार कार्यवाहक सरसंघचालक डा. परांजपे के क्लिनिक में किया गया था। उससे एक महीने पूर्व जब पूरे प्रांत में 'गढ़वाल दिवस' मनाया जा रहा था तब पुलिस एवं आंदोलनकारियों के बीच मध्य रात्रि तक टकराव चलता रहा। तब इस पथक ने दिन-रात एक करके आंदोलनकारियों की सहायता की थी।

1930 में दशहरे के अवसर पर संघ की सभी शाखाओं में 'रे मन! तुझे सुख का अधिकार नहीं' नामक निबंध का वाचन किया गया था। देशभक्ति की भावना से ओतप्रोत इस निबंध का भाव था कि 'जब तक मातृभूमि परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त नहीं हो जाती और राष्ट्र सबल एवं वैभवशाली नहीं हो जाता, हमें सुख की तनिक भी लालसा करने का अधिकार नहीं है। वह संतान निकृष्ट होती है, जो अपनी मां को दुख-दर्द, अपमान एवं दासता में छोड़कर भौतिक सुखों के पीछे भागती है। वास्तविक सुख तो इन बेड़ियों को तोड़ने एवं राष्ट्र को स्वतंत्र करने में है।'

अंतत: डा. हेडगेवार ने अपने और अपने संगठन के सामूहिक व्यवहार से प्रमाणित कर दिया कि देशभक्ति, राजनीतिक चेतना से अधिक सांस्कृतिक चेतना से प्रवहमान होती है। अत: संघ के गैर-राजनीतिक स्वरूप से स्वतंत्रता आंदोलन के प्रति समर्पण का जो भाव प्रस्फुटित हुआ था वह उनके नए अधिष्ठान की सार्थकता का सूचक था।

दूसरा कारावास

डाक्टर हेडगेवार की गिरफ्तारी पर पूरे प्रांत में प्रतिक्रियाएं हुईं। जब उन्हें ट्रेन से अकोला जेल ले जाया जा रहा था तब प्राय: सभी स्टेशनों पर लोग उनका अभिवादन करने के लिए उपस्थित थे। यवतमाल मुर्तिजापुर रेल लाइन के बीच दारव्हा स्टेशन पर तो इतनी भीड़ इकट्ठी थी कि पूरा प्लेटफार्म ही सभास्थल में बदल गया था। लोगों की संख्या हजार-बारह सौ थी। प्लेटफार्म पर ही एक मंच भी बना दिया गया था एवं दारव्हा के कांग्रेसी नेताओं ने दाऊ के नेतृत्व में डा. हेडगेवार से ट्रेन में मिलकर मंच पर आकर उपस्थित जनसमुदाय को संबोधित करने का आग्रह किया। लोगों के दबाव में पुलिस अधिकारी विवश थे और उन्होंने हेडगेवार को मंच पर जाने की अनुमति दे दी।

उनका भाषण छोटा किंतु उत्साहवर्द्धक था। उन्होंने कहा था:

'एक दशक पूर्व अंग्रेजों के खिलाफ हमने असहयोग आंदोलन किया था, अब हम औपनिवेशिक कानूनों की धज्जियां उड़ा रहे हैं। सरकार की गलतफहमी है कि दमन से जनता डर जाएगी। हिंदुस्थान का पूरा इतिहास ही धर्म एवं अधर्म के बीच लड़ाई का है। हमें अंग्रेजों से वैधानिकता का पाठ नहीं पढ़ना है। जिसे वे कानून कहते हैं, वे हमारी बेड़ियां हैं, जिसे वे अशांति कहते हैं वह आगे आने वाले समय की पूर्व सूचना मात्र है, जिसे वे पहचान नहीं पा रहे हैं। समझौता एवं वार्ता साम्राज्यवादी समस्या का निदान नहीं है। जिन लोगों ने धोखे एवं छल से पूरे राष्ट्र को बल प्रयोग से अपने अधीनस्थ कर रखा है, वे राक्षसी शक्ति के प्रतीक हैं। जैसे माता सीता का अपहरण करने वाले राक्षस का विनाश हुआ था वही परिणाम अंग्रेजों को भी देखना पड़ेगा, यदि वे समय रहते हिंदुस्थान से वापस नहीं चले जाते हैं।'

उनके ओजपूर्ण भाषण ने पूरे वातावरण को उग्र राष्ट्रवाद के रंग में रंग दिया और 'वंदे मातरम्' के जयघोष से उन्हें विदाई दी गई। पुलिस अधिकारी उनके उत्तेजक एवं सरकार विरोधी भाषणों से चिढ़े हुए थे और बार-बार डा. हेडगेवार द्वारा जनसमुदायों को संबोधित करना उन्हें पसंद तो नहीं ही था,

इसके अलावा उन्हें अपने ऊपर अनुशासनात्मक कार्रवाई का भी भय सताने लगा। ट्रेन खुलते ही पुलिस अधिकारी ने उन्हें हथकड़ी पहनाने का आदेश दिया। काफी देर तक वाद-विवाद चलता रहा। मर्यादाओं में जीने वाले डा. हेडगेवार राष्ट्राभिमानी तो थे ही, उनमें आत्मसम्मान, मनोबल, आत्मविश्वास एवं निर्भयता कूट-कूट कर भरी हुई थी। वह पुलिस अधिकारी के सामने उग्र रूप में खड़े हो गए और उन्होंने हथकड़ी लगाने को चुनौती दे डाली। उनके साथ के सभी सत्याग्रहियों ने विरोध का स्वर उठाया। फलस्वरूप उसे अपना आदेश वापस लेना पड़ा और डा. हेडगेवार पूर्ववत आगे भी लोगों का अभिवादन स्वीकार करते रहे।

कारावास में जीवन

यह उनका दूसरा कारावास था। उन्हें 'बी' श्रेणी एवं उनकी टुकड़ी के सत्याग्रहियों को 'सी' श्रेणी दी गई। करीब बीस लोग थे। सौ फुट लंबे और तीस फुट चौड़े कमरे में उन्हें सात दिनों तक अकेला ही रखा गया था। इसके बाद यवतमाल के एस. एच. बल्लाल को उनके साथ रखा गया। इसके बाद मेहकर की संघ शाखा से जुड़े राजेश्वरराव देशमुख एवं दादासाहब सोमन को उनके साथ 18 अगस्त से रखा गया। देशमुख ने लिखा है —

'श्रावण के कृष्ण पक्ष का सोमवार था। उस दिन मेरे जीवन का अत्यंत महत्व का क्षण था। जाते ही सामने परमपूज्य डा. हेडगेवार बैठे दिखे। ... संघ के जन्मदाता के साथ रहने का अवसर मिलेगा, मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी। मुझे बड़ा आनंद हुआ और वृद्ध माता-पिता और छोटे-छोटे बच्चों को पीछे छोड़कर जेल जाने का दुख बिल्कुल भूल गया।'

बाद में 'बी' श्रेणी में राजनीतिक कैदियों की संख्या बढ़कर 35 तक हो गई थी।

याचना नहीं

जेलाधिकारी फोर्ड डा. हेडगेवार के पहले कारावास के दौरान भी अजनी जेल में थे। अतः उनका परिचय पुराना था। वह आयरिश थे और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के प्रति उनके मन में थोड़ी सहानुभूति भी थी। डा. हेडगेवार का राष्ट्रवाद एवं मर्यादित व्यवहार उन्हें बहुत पसंद था, अतः फोर्ड उनका बहुत सम्मान करते

थे। यह देखकर जब 'बी' श्रेणी के सत्याग्रहियों ने उनसे अनुरोध किया कि फोर्ड से जाकर खाने, रहने एवं पहनने की अधिक सुविधाओं की मांग रखें तब डा. हेडगेवार का उत्तर था- 'मैं जानता हूं कि फोर्ड मेरी बात मान लेंगे। वह एक नेक अधिकारी हैं। परंतु वह औपनिवेशिक शासन के ही प्रतिनिधि हैं। उनसे कुछ मांगना ब्रिटिश साम्राज्यवाद से याचना करने के समान होगा। हम रण के लिए निकले हैं, सुख-सुविधाओं में यदि जीना था तो सत्याग्रह करने की आवश्यकता क्या थी?'

एक दूसरी घटना उनके विशुद्ध राष्ट्रवाद को पुष्ट करती है। आप्पाजी जोशी संघ के नेता के साथ-साथ प्रांत के जाने-माने कांग्रेसी नेता थे। वह 1928 तक प्रांतीय कांग्रेस के मंत्री रह चुके थे। इसके साथ-साथ वह प्रांत की अन्य सामाजिक गतिविधियों से जुड़े थे। उनके स्वास्थ्य में गिरावट को देखकर फोर्ड उन्हें 'बी' श्रेणी में रखना चाहते थे तथा उनसे आग्रह करते थे कि वह इस बात की मांग एक आवेदन-पत्र लिखकर करें। आप्पाजी टालते रहे। अंत में फोर्ड ने उन्हें डा. हेडगेवार से राय लेने के लिए कहा। तब डा. हेडगेवार ने आप्पाजी से कहा :

'आप कांग्रेस के महामंत्री रह चुके हैं। आवेदन करने पर कुछ बिगड़ेगा तो नहीं, परंतु जिस आंदोलन में आप शरीक होकर जेल पहुंचे हैं, उस आंदोलन की प्रतिष्ठा की रक्षा का दायित्व भी आप पर है।'

आप्पाजी ने निश्चय कर लिया कि वह आवेदन नहीं करेंगे और अपनी बीमारी की हालत में भी वह 'सी' श्रेणी में ही रहे। अंततः उनकी बुरी हालत को देखकर जेल प्रशासन ने उन्हें 'बी' श्रेणी में स्थानांतरित कर दिया।

डा. हेडगेवार का मत था कि व्यक्ति जिस आंदोलन अथवा संगठन में रहे, वह उसकी सीमाओं, सिद्धांतों, मर्यादाओं एवं अनुशासन का पालन करे। अनुशासन भंग होने से ही असहयोग आंदोलन वापस लेना पड़ा था। और 'राष्ट्रवाद की मर्यादा को न पहचानने के कारण ही धर्मांध लोगों ने मोपला में हिंदुओं के साथ अत्याचार किया था।' यही कारण है कि जब डा. हेडगेवार को यवतमाल में सत्याग्रह के बाद गिरफ्तार किया गया था तब उन्होंने उत्तेजित जनसमुदाय से अहिंसा के मार्ग पर बने रहने की अपील की थी। उन्होंने कहा था :

'अंग्रेजी शासन की लड़ाई का आज पहला अथवा अंतिम दिन नहीं है। अंग्रेजी दमन तो सिर्फ इस बात का सूचक है कि विदेशी सरकार कितनी अलोकप्रिय है, कितनी भयभीत है एवं कितनी स्वतंत्रता विरोधी है। इस बात पर विचार करना होगा कि क्यों मुट्ठी-भर लोगों ने हमें अपना अधीनस्थ बना रखा है? एक दिन के अति उत्साह एवं उत्तेजित भाव से स्वतंत्रता प्राप्त नहीं होगी। जो लोग जेल नहीं आए हैं उन्हें संगठन का कार्य करके आगे की लड़ाई की तैयारी करते रहना चाहिए।'

गांधीजी का आदेश था कि जेल के नियमों एवं आदेशों का पालन किया जाना चाहिए। क्षोभजनक व्यवस्था के बावजूद डा. हेडगेवार एवं उनके सहयोगी अनुशासित बने रहे। डा. हेडगेवार एवं गांधीजी के व्यावहारिक दृष्टिकोण में समानता सबको दिखाई पड़ रही थी। जेल में जब 'सी' श्रेणी के बंदियों के साथ सख्त एवं अमानवीय व्यवहार होने लगा तब 'बी' एवं 'सी' श्रेणी के सभी सत्याग्रहियों ने भूख हड़ताल रखी थी। जेल में डा. हेडगेवार ने 'गढ़वाल दिवस' आयोजित किया और उस दिन उनकी अपील पर सत्याग्रहियों ने उपवास भी रखा।

ऊपर से आए सख्त आदेश के कारण डा. हेडगेवार पर जेल प्रशासन की तीखी दृष्टि थी। यह बात जब बाहर आई तब डा. मुंजे 29 जुलाई को उनसे मिलने जेल गए। डा. मुंजे ने लिखा है कि 'यद्यपि उन्हें (संघ स्वयंसेवकों को) कठोर काम करना पड़ता है फिर भी वे खुश नजर आ रहे थे। वे सभी जेल की वेशभूषा में थे। डा. हेडगेवार जेल की वेशभूषा में नहीं थे, परंतु उन्होंने शिकायत की थी कि ऊपर के अधिकारियों के आदेश से उनके साथ बुरा व्यवहार किया जा रहा है। इंस्पेक्टर जनरल मेजर जठार जेल आए थे लेकिन डा. हेडगेवार का कहना था कि उन्होंने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। मैंने वार कौंसिल के डिक्टेटर श्रीराम से कहा कि वह इस संबंध में विरोध प्रस्ताव पारित करें।'

लोक संग्रह

डा. हेडगेवार की अद्‌भुत विशेषता थी—लोक संग्रह करना। वह वाद-विवाद को प्रतिवाद में बदलते थे और मनुष्यों में व्याप्त सकारात्मक पहलुओं के आधार पर उन्हें अपने मिशन से जोड़ने का कार्य करते थे। जेल के भीतर भी उन्होंने

ऐसा ही कर दिखाया। राजनीतिक बंदियों में कुछ लोग ऐसे भी थे जो संघ को हिंसक एवं सांप्रदायिक मानते थे। डा. हेडगेवार उनके मत को सुनते थे तथा राष्ट्र, संस्कृति, समाज, देश, महात्मा गांधी, क्रांतिकारी आंदोलनों के प्रति संघ का दृष्टिकोण उनके सामने रखते थे। संघ के प्रति व्याप्त भ्रांति दूर होते ही डा. हेडगेवार ने जेल के अंदर विजयादशमी के दिन से प्रात: संघ प्रार्थना का आयोजन शुरू कर दिया। जेल से बाहर आने के बाद उनमें से अनेक लोग संघ कार्य से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ गए थे।

जेल के अंदर डा. हेडगेवार को राजनीतिक घटनाओं की जानकारी मिलती रहती थी। संघ के पदाधिकारी उन्हें संगठन की प्रगति की भी जानकारी देने जाते थे। इनमें डा. परांजपे एवं भाऊराव कुलकर्णी प्रमुख थे।

दो घटनाओं से वह चिंतित हुए। स्वतंत्रता आंदोलन के बीच में लंदन में बुलाए गए गोलमेज सम्मेलन में डा. मुंजे के भाग लेने का निर्णय उन्हें अच्छा नहीं लगा था। परंतु उनके विरोधियों द्वारा उन्हें 'गेंडा' के रूप में सार्वजनिक रूप से चित्रित करने को भी उन्होंने ओछी राजनीति की संज्ञा दी।

गोलमेज सम्मेलन में मुस्लिम पृथकतावाद की बात को सुनकर वह हैरान थे। उन्होंने कहा था कि 'कोई व्यक्ति अपने पूर्वजों, अपने इतिहास, अपने भूगोल एवं पड़ोसियों और परंपराओं से कैसे कट सकता है? क्या राष्ट्रधर्म हमारे व्यक्तिगत धर्म से हीन होता है?'

इसी बीच संघ पर एक कहर गिरने की खबर ने उन्हें मायूस कर दिया। हुद्दार जब जेल की सजा काटकर बाहर आए तब वह बालाघाट में राजनीतिक डकैती में शरीक हुए थे और जनवरी 1931 में गिरफ्तार कर लिए गए थे। हुद्दार संघ के शीर्ष नेताओं में थे। इन्हीं घटनाचक्रों के बीच डा. हेडगेवार 14 फरवरी 1931 को जेल से मुक्त हुए। अकोला, वर्धा एवं अन्य स्थानों पर उनका स्वागत किया गया और वह 17 फरवरी को नागपुर पहुंचे। वहां भी बड़ी शोभायात्रा निकाली गई एवं उसी दिन उन्होंने सरसंघचालक के दायित्व को पुन: स्वीकार किया।

हिंदू महासभा, कांग्रेस और संघ

डाक्टर हेडगेवार के जीवनकाल में संघ की शक्ति में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई और इसका अखिल भारतीय स्वरूप सबके सामने आया। जैसे-जैसे संघ का प्रभाव क्षेत्र बढ़ता गया, वैसे-वैसे मध्यप्रांत एवं देश के दूसरे हिस्सों के राजनीतिज्ञों के मन में इससे 'अपेक्षाएं' भी पनपने लगीं। वे सभी संघ को वैचारिक आंदोलन के रूप में नहीं देख पाते थे और सिर्फ गणवेशधारी अनुशासित स्वयंसेवकों की टुकड़ी उन्हें आकर्षित करती थी। हिंदू महासभा के साथ-साथ अनेक कांग्रेसी नेता भी संघ के संगठन का उपयोग अपनी व्यक्तिगत राजनीति के संवर्द्धन में करना चाहते थे।

महासभा में डा. हेडगेवार

महासभा की गतिविधियों से डा. हेडगेवार नागपुर में इसकी 1923 में हुई स्थापना के बाद जुड़ गए थे। उन्हें 14 सदस्यों वाली 'प्रचार समिति' का सदस्य मनोनीत किया गया था। राजा लक्ष्मणराव भोंसले और डा. मुंजे इसके क्रमशः अध्यक्ष एवं सचिव थे। 1926 में डा. हेडगेवार को नागपुर इकाई का सचिव बनाया गया। वह 1927 तक इस पद पर रहे। इस दौरान भी वह अन्य दो सचिवों- उदाराम पहलवान एवं गोपालराव दलवी की अपेक्षा कम सक्रिय थे। वह बैठकों से प्राय: अनुपस्थित रहते थे।

डा. हेडगेवार का कांग्रेस एवं महासभा के संबंध में दृष्टिकोण स्पष्ट था। वह कांग्रेस के अखिल भारतीय चरित्र को स्वीकार करके इसे साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन का सर्वमान्य मंच मानते थे। वह सैद्धांतिक असहमति एवं मतभेदों के कारण स्वतंत्रता आंदोलन में अलग-अलग साम्राज्यवाद विरोधी मंचों के विरोधी थे। इससे यह संग्राम सिर्फ कमजोर होता। अत: वह चाहते थे कि अन्य कार्यों में लिप्त दूसरे संगठन साम्राज्यवाद विरोधी मुद्दे पर कांग्रेस के मंच का उपयोग बिना किसी शर्त के करें। यही कारण है कि कांग्रेस के आंदोलनात्मक अथवा रचनात्मक कार्यों में डा. हेडगेवार बिना किसी पूर्वाग्रह अथवा शर्त के भाग लेते रहे। इसके लिए वह कांग्रेस से कृतज्ञता की अपेक्षा

नहीं करते थे। और यही भावना वह दूसरे संगठनों एवं नेतृत्व में देखना चाहते थे। साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन में वह महासभा को कांग्रेस का विकल्प नहीं समझते थे। महासभा द्वारा हिंदू हितों के लिए विभिन्न स्तरों पर जो कार्य हो रहा था, हिंदुत्व के लिए वह उसकी सीमित उपयोगिता समझते थे।

जैसे-जैसे महासभा सामाजिक-सांस्कृतिक सुधारों एवं हिंदू एकता के प्रश्न से अधिक महत्व राजनीतिक प्रश्नों को देने लगी और राजनीति में मुस्लिम लीग की तर्ज पर अपने आप को हिंदुओं का प्रतिनिधि घोषित करने लगी, वैसे-वैसे डा. हेडगेवार की इससे स्वभावतः दूरी बढ़ने लगी। वह 1927 के बाद सांकेतिक तौर पर इससे जुड़े रहे और 1930 के दशक में महासभा के नेताओं से व्यक्तिगत संबंध भर रह गया था। कई अर्थों में वैचारिक समानता एवं इसके नेतृत्व के प्रति उनकी श्रद्धा के कारण संघ द्वारा यदा-कदा महासभा को जन-बल की सहायता मिलती रहती थी।

संघ एवं महासभा के बीच संबंधों को लेकर भ्रम का एक कारण यह भी था कि संघ ने आरंभिक दिनों में महासभा के नेताओं की सहायता नए स्थानों पर संगठन का विस्तार करने में ली थी। दत्तोपंत ठेंगड़ी ने इस संबंध में कहा है कि 'जब संघ का कार्य शुरू हुआ तब डा. हेडगेवार ने हिंदुत्ववादी नेताओं की मदद ली थी। इसका उद्देश्य संघ को नए-नए स्थानों पर स्थापित करना था। यह उनकी संगठनात्मक रणनीति थी। उनमें से कुछ को तो कई स्थानों पर संघचालक भी नियुक्त किया गया था।'

इस सबके बावजूद डा. हेडगेवार ने संघ की स्थापना के दिन से ही संगठन की स्वायत्तता बनाए रखी। इस पर किसी भी तरह आंच नहीं आने दी। वह सभी महत्वपूर्ण प्रश्नों पर निर्णय संगठन के सहयोगियों के साथ विचार-विमर्श के बाद ही लिया करते थे। इसके अनेक उदाहरण विद्यमान हैं। नीतियों एवं कार्यक्रमों के निर्धारण में संघ को महासभा पर निर्भर तो नहीं ही रखा, महासभा नेताओं को किसी भी स्तर पर इस प्रक्रिया में उन्होंने सम्मिलित भी नहीं किया था। इसका पहला द्रष्टांत 1930 के सविनय अवज्ञा आंदोलन के समय सामने आया। इस आंदोलन के प्रति महासभा में एक राय नहीं थी। इसका एक धड़ा, जिसका प्रतिनिधित्व भाई परमानंद कर रहे थे, महात्मा गांधी का विरोध कर रहा था, तो दूसरे लोग, जिनमें डा. मुंजे भी सम्मिलित थे, आंदोलन में बेमन से महात्मा

गांधी की नीतियों के प्रति आपत्तियां उठाते हुए शरीक हुए थे। डा. मुंजे 11 जुलाई 1930 को सत्याग्रह करते हुए गिरफ्तार हुए थे और पांच रुपये का जुर्माना लेकर उन्हें छोड़ दिया गया था। परंतु संघ ने अपना निर्णय राष्ट्रीय परिस्थितियों का मूल्यांकन करके लिया। डा. हेडगेवार महासभा के द्वंद्व एवं दुविधा से पूरी तरह बेखबर एवं बेअसर थे। संघ की भागीदारी बिना शर्त एवं पूरी प्रतिबद्धता के साथ थी।

महासभा की अपेक्षा

1932 में महासभा ने प्रस्ताव पारित करके संघ के अखिल भारतीय स्वरूप को स्वीकार किया था। प्रस्ताव में डा. हेडगेवार की प्रशंसा की गई थी। हिंदू महासभा अपने आप को हिंदू राजनीति का ध्रुव मानती थी और संघ से इसकी अपेक्षा थी कि वह इसकी स्वयंसेवी संस्था बनकर जन बल की सहायता करे। कांग्रेस के आंदोलनों में इसकी भागीदारी महासभा नेताओं को पसंद नहीं थी। महासभा नेतृत्व बैठकों, सम्मेलनों, कार्यक्रमों एवं प्रचार-प्रसार के कामों में स्वयंसेवकों का उपयोग करने के लिए लालायित नजरों से संघ को देखता था।

स्वयंसेवकों के प्रति महासभा की अवधारणा कैसी थी, यह डा. हेडगेवार द्वारा संघ के एक नेता काशीनाथ लिमये को 4 नवंबर 1935 को लिखे गए पत्र से पता चलता है। उन्होंने लिखा था कि महासभा के नेताओं को समझाने की आवश्यकता है कि संघ के स्वयंसेवकों का काम टेबल-कुर्सियां उठाने का नहीं है। वह आगे लिखते हैं- 'परिस्थितिवश, जो चल रहा है वैसा ही और कुछ समय तक चलता रहे, इसके बिना अन्य उपाय नहीं है। मैं जानता हूं कि वहां की परिस्थिति स्वयंसेवकों को अत्यंत पीड़ादायक अनुभव होती है, और इस कारण मेरा हृदय सदैव व्यथित रहा है।'

जब डा. हेडगेवार ने दोनों संस्थाओं के बीच लक्ष्मण रेखा खींच दी, तब महासभा में संघ एवं डा. हेडगेवार के प्रति आक्रोश उत्पन्न होने लगा, जो आपसी चर्चा एवं कभी-कभी सार्वजनिक तौर पर व्यक्त होता रहा। 1934 में डा. मुंजे ने डा. हेडगेवार के एक सहयोगी जी. वी. देशमुख से शिकायत की थी कि संघ महासभा से थोड़ा भी सहयोग नहीं कर रहा है।[1] यहां तक कि विनायक दामोदर

---

1. जी. वी. देशमुख, काल समुद्रांतील रत्नें, वीना प्रकाशन, नागपुर, पृ. 155-157

सावरकर ने भी पनेवल की सार्वजनिक सभा में संघ की महासभा के प्रति 'तटस्थता' के लिए आलोचना की थी। उन्होंने कटाक्ष करते हुए कहा था-'संघ के स्वयंसेवकों की कहानी होगी कि वह जन्मा, संघ में शामिल हुआ और बिना कुछ किए मर गया।' सावरकर के उपर्युक्त कथन के बाद निचले एवं मध्य स्तर के महासभा नेताओं ने संघ पर प्रहार और भी तेज कर दिया। इनमें माधव बिंदु पुराणिक, नाथूराम गोडसे, वीर यशवंतराव जोशी, जी. जी. अधिकारी इत्यादि प्रमुख हैं। पुराणिक ने गोडसे, जोशी एवं सोलापुर के राजवाड़े की सहमति से सावरकर को पत्र लिखकर संघ नेताओं की तीखी आलोचना की थी। उन्होंने संघ नेतृत्व पर टीका करते हुए लिखा था कि 'वे संघियों को महासभा का काम करने से जान-बूझकर रोकते हैं। उनके अनुसार हिंदू महासभा नेताओं का समूह मात्र है। वे ऐसे महत्वाकांक्षी हैं जिन्हें कांग्रेस में सम्मानित स्थान प्राप्त नहीं हुआ है। संघ कुटिलता से हमारा उपयोग अपना कार्य बढ़ाने के लिए करता है।'

भागानगर सत्याग्रह

अक्टूबर 1938 में महासभा एवं आर्य समाज ने हैदराबाद के निजाम की हिंदू विरोधी नीतियों के विरुद्ध संयुक्त रूप से सत्याग्रह संग्राम शुरू किया था। सावरकर स्वयं इसका नेतृत्व कर रहे थे। महासभा की अपेक्षा थी कि जिस प्रकार डा. हेडगेवार ने 'जंगल सत्याग्रह' में स्वयंसेवकों के साथ भाग लिया था, उसी प्रकार भागानगर सत्याग्रह में भी शामिल हों। सन 1930 से 1937 तक संघ के कार्य का विस्तार कई गुना अधिक हो गया था। महासभा परोक्ष रूप से संघ की सहभागिता पर निर्भर थी। परंतु डा. हेडगेवार के सामने मूल प्रश्न था देश की स्वतंत्रता का। अत: तात्कालिक प्रश्नों पर वह संघ की शक्ति एवं ऊर्जा का क्षय करना नहीं चाहते थे। साम्राज्यवाद-विरोधी आंदोलन से जितना वह उत्साहित होते थे, इस प्रकार के आंदोलनों के प्रति सहानुभूति के बावजूद वह सक्रिय नहीं हो पाते थे। भागानगर सत्याग्रह के मुद्दों से उनकी सहमति थी परंतु वह इसे स्वतंत्रता की लड़ाई के अंतिम चरण में उपयुक्त नहीं मानते थे। औपनिवेशिक काल में संघ एवं महासभा की प्राथमिकताओं में वैसे ही अंतर था जैसे डा. हेडगेवार एवं महासभा नेताओं की प्रकृति, स्वभाव और कार्यपद्धति में अंतर था। डा. हेडगेवार स्वयंसेवकों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं निर्णय लेने की क्षमता को सदैव महत्व देते थे। यही कारण है कि उन्होंने संघ के निर्णयों, अभिमतों एवं कार्यक्रमों को स्वयंसेवकों पर कभी नहीं थोपा था। संघ में सदैव स्वेच्छा से

सहभागिता पर जोर दिया जाता था। उन्होंने संघ के एक अधिकारी द्वारा भागानगर सत्याग्रह के संबंध में पूछे गए सवाल के जवाब में जो पत्र 12 नवंबर 1937 को लिखा था, उसमें स्पष्ट शब्दों में कहा था—

'संघ के सदस्यों को अपने व्यक्तिगत अधिकार क्षेत्र में संघ के अतिरिक्त किसी भी संस्था में या आंदोलन में सहभागी होने के लिए या किसी भी सभा में उपस्थित रहने के लिए संघ की मनाही तो असंभव है। किंतु ऐसे सदस्यों की यह जिम्मेदारी रहेगी कि उसके किसी भी कार्य से संघ की हानि न हो।'

उन्होंने दूसरे पत्र में लिखा था कि स्वयंसेवक व्यक्तिशः इस आंदोलन में भाग ले सकते हैं। संघ की इसमें भागीदारी सांकेतिक थी। भैयाजी दाणी के नेतृत्व में संघ के सौ स्वयंसेवकों का दल इसमें सम्मिलित हुआ था। परंतु इससे महासभा संतुष्ट होती, इसका तो प्रश्न ही नहीं उठता है। इसके विपरीत महासभा के नेताओं में संघ के प्रति आवेश चरम पर पहुंच गया। पहली बार डा. हेडगेवार की सार्वजनिक तौर पर आलोचना की गई। मुंबई से प्रकाशित महासभा समर्थित पत्र 'वंदे मातरम्' के संपादक जी. जी. अधिकारी ने 12 लेखों की श्रृंखला लिखकर डा. हेडगेवार को 'हठी', 'अभिमानी' 'महत्वाकांक्षी' तक कहा। उन पर हिंदुत्व के आंदोलन में सहयोग न करने और हिंदू शक्ति को बांटने का आरोप लगाया गया। चौंकाने वाली बात यह है कि किसी भी महासभा नेता ने आगे बढ़कर इसका प्रतिवाद नहीं किया। परंतु 'वंदे मातरम्' के संपादक को महाराष्ट्र के विभिन्न भागों से लेख श्रृंखला की आलोचना में सैकड़ों पत्र मिले और 'वंदे मातरम्' का कई स्थानों पर बहिष्कार भी हुआ। नागपुर से प्रकाशित 'सावधान' ने 27 मई के अंक में भागानगर सत्याग्रह में संघ द्वारा भाग न लेने की आलोचना करने वालों को जवाब दिया। इसने लिखा—

'नित्य कार्य और नैमित्तिक कार्य—इनका ज्ञान यदि जी. जी. अधिकारी को होता, तो संघ के विरुद्ध बारह जहरीले फूत्कार उन्होंने छोड़े ही न होते। भागानगर सत्याग्रह के उत्साह के बचकाने आवेश में वह भूल गए हैं कि अभी राष्ट्र की स्वतंत्रता का कार्य शेष पड़ा है। जिस समय राष्ट्र की मुक्ति के लिए अंतिम दांव लगाना होता है, उसकी पूर्ण तैयारी के लिए राष्ट्र विमोचन के नित्य कार्य हैं एवं भागानगर सत्याग्रह जैसे आंदोलन उसके नैमित्तिक कार्य हैं। भिन्न-भिन्न कार्य करने वाली संस्थाएं पृथक होती हैं ... परंतु नित्य कार्य में संलग्न संस्था नैमित्तिक कार्य के लिए ऐसा कोई भी पग नहीं उठा सकती जिससे वह

अपनी शक्ति 'सर्वस्व एवं वैशिष्ट्य को भुलाकर नित्य कार्य में खंड (विभाजन) उत्पन्न कर दे।' बाबाराव सावरकर ने एक लेख लिखकर हिंदू महासभा को जवाब दिया। उन्होंने भागानगर सत्याग्रह के संबंध में संघ की भूमिका का समर्थन करते हुए लिखा था कि '... संघ की प्रेरणा से जिन लोगों के मन में हिंदुत्व एवं राष्ट्र के प्रति प्रेम एवं अभिमान जाग्रत हुआ है वे कभी भी अपने कर्तव्य मार्ग से जी नहीं चुरा सकते हैं। वे अपना कर्तव्य दूसरों की अपेक्षा अधिक योग्य रीति से समझते हैं एवं उसका निर्वाह करते हैं।'

परंतु महासभा की उत्तेजना इससे समाप्त नहीं हुई। 7 जून 1939 को अधिकारी ने ओछी भाषा में, डा. हेडगेवार पर पुनः प्रहार किया। 'वंदे मातरम्' ने लिखा कि '...डा. हेडगेवार से हम विनम्रतापूर्वक निवेदन करते हैं कि अहंकार का विष सर्प के विष से भी भयंकर होता है। इसी अहंकार के कारण गांधी के विनाश का ताजा इतिहास आंखों से ओझल मत कीजिए। निस्संदेह रा. स्व. संघ की स्थापना और विकास से आपने हिंदू समाज का उपकार किया है। पर राहगीरों के लिए बनाए तालाब में यदि दाता स्वयं ही क्रूर जलचर छोड़ दे तो उसे क्या कहा जाए? आप ऐसा ही कर रहे हैं और जान-बूझकर कर रहे हैं। अतः कृपा करके बाज आइए। यदि आपने ऐसा करना जारी रखा तो हिंदू समाज का भावी इतिहासकार आपका उल्लेख तक नहीं कर सकेगा।'

इस कटु एवं ओछी भाषा का उत्तर डा. हेडगेवार ने जिस सरलता एवं सहजता से दिया वह किसी भी सार्वजनिक कार्यकर्ता के लिए एक प्रेरणादायक प्रसंग है। जब उन्हें यह गाली-गलौज से भरा लेख पढ़कर सुनाया गया तो वह हंसते हुए बोले- 'मेरी भी यही इच्छा है। मेरा नाम इतिहास में नहीं आया तब भी काम चलेगा, परंतु संघ पर इस प्रकार कीचड़ उछालने वालों का अवश्य भरपूर नामोल्लेख होना चाहिए।'

जिस प्रकार डा. हेडगेवार का लक्ष्य बड़ा था, उसी प्रकार और उनकी सोच, उनका मन और दृष्टिकोण भी उसी अनुपात में व्यापक था। यही कारण है कि वह इन आलोचकों की निंदा करने या उन्हें जवाब देने की अपेक्षा प्रत्यक्ष कार्य में अपनी ऊर्जा, समय एवं ध्यान लगाए रखते थे एवं इतिहास को इन आलोचनाओं का जवाब देने के लिए छोड़ देते थे। तभी तो अधिकारी भी 1940 में डा. हेडगेवार की मृत्यु के बाद उनके प्रशंसक हो गए और उन्होंने उनके जीवन पर लेखों का संग्रह करके एक पुस्तिका का प्रकाशन भी किया। सभ्यता

की धारा को प्रभावित करने वाला व्यक्ति संयम, धैर्य एवं दृढ़ संकल्प की चट्टान के समान होता है। जब विनायक राव आपटे ने संघ की बात समाज के सामने रखने के लिए 'राष्ट्रधर्म' नामक साप्ताहिक के प्रकाशन का विचार किया तब डा. हेडगेवार ने उन्हें 10 नवंबर 1937 को लिखा था:

'इसमें तनिक संदेह नहीं है कि 'राष्ट्रधर्म' में अपनी विचारधारा का ही हमेशा प्रतिपादन होगा, किंतु विभिन्न लोगों द्वारा लगाए गए लांछनों के उत्तर-प्रत्युत्तर में आप कभी न पड़ें। आजकल आपके क्षेत्र के समाचार-पत्रों में संघ पर झूठे एवं आक्षेप भरे आरोप लगाए जा रहे हैं। आरोप चाहे समाचार-पत्रों में प्रकाशित किए गए हों अथवा सार्वजनिक सभाओं में कहे गए हों, हमें उनका उत्तर न देकर, पूरी तरह अनदेखा करना चाहिए।'

राम सेना

महासभा दिनोंदिन चुनावी राजनीति में लिप्त होती जा रही थी। परंतु इसका संगठनात्मक आधार प्राय: शून्य था। आम हिंदू कांग्रेस के नेतृत्व से अलग हटकर महासभा से जुड़ने के लिए तैयार नहीं थे। उनकी सहानुभूति तो महासभा के प्रति थी परंतु कमजोर संगठन के कारण महासभा उन्हें अपने मंच पर लाने में असमर्थ थी। अत: रह-रहकर संघ की तरफ वे आशा एवं अधिकार भरी नजरों से देखते थे। अभी भागानगर सत्याग्रह का विवाद एवं आवेश थमा नहीं था कि महासभा ने एक दूसरा विवाद खड़ा कर दिया। सितंबर 1939 में हिंदू महासभा ने 'हिंदू मिलीशिया' नामक स्वयंसेवी संगठन बनाने का निश्चय किया। इसकी बैठक में डा. हेडगेवार को जब डा. मुंजे ने पत्र लिखकर आग्रहपूर्वक आमंत्रित किया तो बैठक में उपस्थित होने की किसी भी संभावना से उन्होंने साफ इंकार कर दिया। डा. हेडगेवार ने 30 सितंबर 1939 को पत्रोत्तर में लिखा—

'मेरा स्वास्थ्य प्रवास करने योग्य न होने के कारण 8 अक्टूबर को मैं पूना नहीं आ सकूंगा। यदि आप यह कहें कि बैठक नागपुर में ही कर ली जाएगी तब भी मैं उसमें सम्मिलित नहीं हो पाऊंगा क्योंकि उस दिन नागपुर जिले के संघ कार्यकर्त्ताओं की बैठक है।' आगे उन्होंने डा. मुंजे को आग्रहपूर्वक हिदायत दी कि 'हिंदू मिलीशिया' के संबंध में आप मेरा नाम कहीं भी न डालें।' डा. मुंजे ने उनके पत्र को नजरंदाज करके 'हिंदू मिलीशिया' हेतु जारी अपील में

उनका नाम शामिल कर दिया। डा. हेडगेवार ने उनसे उनका नाम न घसीटने का पुनः अनुरोध किया और अपने को महासभा की व्यूह रचना से अलग कर लिया।

परंतु महासभा की दृष्टि डा. हेडगेवार के संगठन कौशल एवं उनकी प्रसिद्धि और विश्वसनीयता पर लगी ही हुई थी। छः महीने उपरांत 17 मार्च 1940 को महासभा की ओर से 'राम सेना' नामक स्वयंसेवी दल प्रारंभ किया गया। इसका निर्माण करके महासभा संघ के समानांतर स्वयंसेवी संगठन खड़ा करना चाहती थी। 'राम सेना' का कार्य आक्रामक हिंदुत्व की अपील पर आधारित था। महासभा ने इसकी स्थापना के पीछे संघ की महासभा के प्रति तटस्थता की भूमिका को कारण बताया जो महासभा की इस टिप्पणी से स्पष्ट हो जाता है कि 'हिंदुओं के सैनिक शिक्षण के द्रोणाचार्य पूज्य डा. हेडगेवार ने नागपुर में निष्पक्ष संगठन प्रारंभ किया।' 27 मार्च को 'राम सेना' के पदाधिकारियों की जो सूची प्रकाशित की गई उसमें डा. हेडगेवार का भी नाम था। महासभा राजनीति की व्याकुलता में सभी हदों को पार कर रही थी। डा. हेडगेवार ने इसे किसी योजना का अंग माना और समाचार-पत्रों में इसका जोरदार प्रतिवाद किया। जब महासभा ऐसा कर रही थी तब वह अपनी प्राकृतिक चिकित्सा के लिए राजगीर (बिहार) में थे। उन्हें गोलवलकर ने इस बात की सूचना दी। तब उन्होंने तार भेजकर उन्हें (गोलवलकर को) इसका प्रतिवाद प्रकाशित कराने का निर्देश दिया था। 'महाराष्ट्र' में यह प्रतिवाद छपा कि 'राम सेना के साथ डा. हेडगेवार का नाम बिना उनकी जानकारी एवं सहमति के जोड़ा गया है। इससे उनका कोई वास्ता नहीं है।'

'राम सेना' ऐसी अकेली संस्था नहीं थी। महासभा के नेताओं ने स्थानीय स्तर पर संघ का मुकाबला करने के लिए अनेक संगठन बनाए थे। इनमें 'हिंदू राष्ट्र दल', 'शक्ति दल', 'हिंदू सेवा दल' एवं नाथूराम गोडसे की 'हिंदू राष्ट्र सेना' प्रमुख थे। ये सभी संघ के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक दृष्टिकोणों से असहमत थे।

संघ की स्थापना के बाद डा. हेडगेवार ने हिंदू जीवन दर्शन को राष्ट्रीय जीवन दर्शन के रूप में स्थापित करने एवं हिंदुओं में व्याप्त संकीर्णताओं को राष्ट्रीयता के भाव एवं भावना से विस्थापित करने का व्रत लिया था। इसलिए उन्होंने हिंदू, हिंदुत्व एवं हिंदू राष्ट्र को सर्वाधिक व्यापक एवं सर्वग्राह्य रूप में

प्रस्तुत किया। देशभक्ति, मातृभूमि-वंदना, पुरखों-पूर्वजों के प्रति आदर, संस्कृति एवं सभ्यता से मानसिक एवं भावात्मक लगाव—इस परिप्रेक्ष्य में उन्होंने संघ रूपी वटवृक्ष का विकास करना शुरू किया। वह इन भावनात्मक एवं ऐतिहासिक शब्दावलियों एवं अवधारणाओं को कठोरता से परिभाषित करने से बचते रहे। अत: संघमार्ग द्वारा हिंदुत्व एवं राष्ट्रीयत्व की स्थापना अनौपचारिक शिक्षा-शिक्षण जैसा कार्य हो गया। व्यक्ति एवं समाज के पारस्परिक परिवर्तन की प्रक्रिया तात्विक एवं जीवंत संबंधों पर आधारित है। यह मार्ग पद, प्रसिद्धि और व्यक्तिगत लाभ से जुड़ा नहीं है; कठोर संयम, समय का संगठन के माध्यम से उपयोग और व्यक्तिगत जीवन में शुचिता पर आधारित है। भावनात्मक परिस्थितियों में आया परिवर्तन अस्थायी होता है और विवेकजनित परिर्वतन स्थायी होता है। संघ के कार्य की धुरी व्यक्ति की 'नैतिक शक्ति' होती है, जो व्यक्ति अपने कृतित्व एवं चरित्र द्वारा प्राप्त करता है। व्यक्ति की विद्वत्ता, धन, वैभव और प्रसिद्धि तभी उपयोगी है जब वह इनका प्रयोग सार्वजनिक हित में नि:स्वार्थ भाव से करता है।

इन मापदंडों के कारण महासभा-मार्ग एवं संघ-मार्ग में एक बड़ी खाई बन गई। सावरकर-मुंजे-परमानंद हिंदू एकता, हिंदू समरसता, हिंदू राष्ट्र—इन सबको राजनीतिक अपील, परिस्थिति जनित विश्लेषणों, बाह्य आक्रमणकारियों एवं विशेषकर इस्लाम के संदर्भ में स्थापित करना चाहते थे। वे यह मानकर चलते थे कि प्रचार-प्रसार एवं हिंदुत्व की शिक्षा से समाज में व्याप्त विरोधाभासों का स्वत: अंत हो जाएगा। इसीलिए महासभा नेताओं की प्रतिस्पर्धा कांग्रेस से थी और उनका सैद्धांतिक संदर्भ मुस्लिम लीग थी। संघ की प्रतिस्पर्द्धा न तो कांग्रेस से थी न ही किसी हिंदू संगठन से। सन् 1945 तक न तो लीग ने संघ की आलोचना की न ही संघ ने इस्लामी आतंक के भय को अपने विस्तार का आधार बनाया।

परंतु बौद्धिक स्तर पर संघ एवं महासभा के दृष्टिकोणों के अंतर को डा. हेडगेवार ने कभी व्यक्त नहीं किया। वह हिंदुत्व के लिए कार्यरत संगठनों को कठघरे में खड़ा करके उन्हें कमजोर करना नहीं चाहते थे।

डा. हेडगेवार एवं डा. मुंजे

महासभा नेताओं में डा. मुंजे से डा. हेडगेवार की सबसे अधिक घनिष्ठता थी।

इसका एक प्रमुख कारण यह था कि बाल्यकाल से ही उनकी देशभक्ति एवं आत्मविश्वास को डा. मुंजे का समर्थन एवं सराहना मिलती रही थी। उन्हें क्रांतिकारी आंदोलन में भी डा. मुंजे का सक्रिय सहयोग मिला था। जहां डा. मुंजे का डा. हेडगेवार पर जीवनपर्यंत स्नेह बना रहा, वहीं डा. हेडगेवार के मन में उनके प्रति सम्मान एवं आभार का भाव था।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन एवं हिंदू संगठन की प्रकृति, उद्देश्य, रचना और कार्यक्रमों के प्रश्नों पर दोनों के बीच का संबंध व्यक्तिगत संबंधों से भिन्न था। अलग-अलग अध्यायों में इस प्रश्न पर प्रकाश डाला जा चुका है। उदाहरण के तौर पर, असहयोग आंदोलन एवं सविनय अवज्ञा आंदोलन दोनों के प्रति डा. हेडगेवार की डा. मुंजे से भिन्न राय थी। इसी प्रकार कांग्रेस एवं महात्मा गांधी को लेकर भी दोनों के दृष्टिकोणों में अंतर था।

संघ की स्थापना और इसके संगठन एवं सिद्धांतों के विकास में डा. मुंजे की भूमिका को संघ एवं हिंदू महासभा का अध्ययन करने वाले लेखकों ने बढ़ा-चढ़ाकर देखा है। औपनिवेशिक काल में जाने-अनजाने मध्यप्रांत की सरकार भी डा. मुंजे को ही संघ का संस्थापक एवं सिद्धांतकार समझती थी। सरकार की इस गलत धारणा का निवारण मार्च 1934 में प्रांत की विधान परिषद (Legislative Council) में संघ पर लंबी बहस के दौरान सदस्यों ने किया था। (इसका उल्लेख 'ऐतिहासिक बहस' अध्याय में किया जा चुका है।) लेकिन यह भ्रम ज्यों का त्यों बना रहा या संघ के आलोचकों ने बनाए रखा।

दुर्भाग्य से विधान परिषद की यह चर्चा संघ का अध्ययन करने वाले लेखकों की नजर में भी नहीं आ पाई और न ही डा. मुंजे एवं डा. हेडगेवार के बीच सैद्धांतिक एवं संगठनात्मक संबंधों को जानने का कार्य शोध के द्वारा किया गया। औपनिवेशिक परंपरा में ही आजादी के बाद भी डा. मुंजे को संघ के संस्थापक, सिद्धांतकार, प्रेरणास्रोत और चालक की संज्ञा दी जाती रही है। संघ के प्रति अनेक विभ्रमों का यह भी एक कारण रहा है। चेतन भट्ट की पुस्तक 'हिंदू नेशनलिज्म' (2001) में डा. मुंजे को संघ का एक संस्थापक माना गया है तो प्रलय कानूनगो ने अपनी पुस्तक 'आर.एस.एस. एंड पॉलिटिक्स' (2002) में डा. हेडगेवार एवं संघ को सिद्धांत एवं संगठन रचना के लिए डा. मुंजे पर निर्भर दिखाया है। एक विदेशी शोध छात्रा कैसोलरी मार्जिया ने अपने निबंध में मुंजे के मार्फत संघ एवं डा. हेडगेवार का संबंध फासीवाद एवं मुसोलिनी से

जोड़ने का प्रयास किया है। वह मानती हैं कि डा. मुंजे संघ के असली सिद्धांतकार थे एवं संगठन पर उनका दबदबा था। फिर वह लिखती हैं—'पहला हिंदू राष्ट्रवादी जो फासीवादी व्यवस्था के संपर्क में आया था, वह थे डा. बी.एस. मुंजे, जो एक राजनीतिज्ञ थे और जिनका संघ के साथ अंतरंग संबंध था। वास्तव में डा. मुंजे डा. हेडगेवार के गुरु थे और दोनों में घनिष्ठ मित्रता थी।'[1]

डा. मुंजे गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने 1931 में लंदन गए थे। लंदन से भारत लौटते वक्त वह 19 मार्च 1931 को इटली में मुसोलिनी से मिले थे। यह उनका व्यक्तिगत कार्यक्रम था और अधिक से अधिक महासभा को इस घटना से जोड़ा जा सकता है। परंतु यह घटना संघ संबंधी उसी गलत मान्यता पर आधारित है जो औपनिवेशिक काल से चली आ रही है कि डा. मुंजे संघ के संस्थापक एवं सिद्धांतकार थे। अतः डा. हेडगेवार एवं डा. मुंजे के बीच सिद्धांतों एवं संगठन के स्तरों पर संबंध पर प्रकाश डालना आवश्यक हो जाता है।

पहले इसका उल्लेख किया जा चुका है कि डा. मुंजे के प्रयासों के बावजूद डा. हेडगेवार महासभा के स्वयंसेवी संगठनों से न सिर्फ अलग रहे, बल्कि सांकेतिक रूप से भी नहीं जुड़े थे। महासभा के कार्यक्रमों में भी उनकी सहभागिता कितनी कम थी, इसका पता महासभा की बैठकों में उनकी अनुपस्थिति से लगता है।

डा. मुंजे की सैन्य शिक्षा में विशेष रुचि थी और वह इस दिशा में सतत प्रयत्नशील रहते थे। डा. हेडगेवार द्वारा प्रारंभ की गई शाखा गतिविधियों का मूल्यांकन भी डा. मुंजे हिंदुओं के सैनिकीकरण के संदर्भ में करते थे। वस्तुतः शाखा में शारीरिक एवं शस्त्र-प्रशिक्षण का तात्कालिक महत्व था किंतु उसका स्थायी लक्ष्य मानसिक एवं सैद्धांतिक प्रशिक्षण देना था। शस्त्र-प्रशिक्षण की इसी भ्रांति के कारण मुंजे ने डा. हेडगेवार को बिना उनकी अनुमति के, 'केंद्रीय हिंदू सैनिक शिक्षा परिषद' के शासकीय निकाय का सदस्य बना लिया था। इसमें कुल 15 सदस्य थे। मुंजे द्वारा 20 अगस्त 1935 को

---

1. कैसोलरी मार्जिया, 'हिंदुत्वाज फॉरैन टाइ अप इन थर्टीज़', इकॉनामिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 22 जनवरी 2000.

विश्वनाथराव केलकर को लिखे पत्र से यह ज्ञात होता है कि वह डा. हेडगेवार के संगठन कौशल से कितने अभिभूत थे। उन्होंने लिखा था कि 'मैंने श्री बोबड़े एवं डा. हेडगेवार को केंद्रीय हिंदू सैनिक शिक्षा परिषद के शासकीय निकाय में सम्मिलित कर लिया है। मैंने न तो इस संबंध में उनसे विचार-विमर्श किया, न ही ऐसा करने से पूर्व उनकी सहमति ली है। इसके सदस्य बनने के लिए 100 रुपये अग्रिम में देना होता है। मैं डा. हेडगेवार का शुल्क जमा कर दूंगा। मैं हर हालत में अपने साथ उनको शासकीय निकाय में रखना चाहता हूं।'

परंतु डा. हेडगेवार इसके लिए कोई उत्साह नहीं दिखाया। उनका पूरा ध्यान संघ के कार्य पर था। वह इसकी एक-दो बैठकों में जरूर शरीक हुए और निष्क्रिय सदस्य के रूप में सिर्फ कागज पर ही इसमें बने रहे।

संघ में डा. मुंजे का स्थान वही था जो भाई परमानंद, विनय दामोदर सावरकर, लोकनायक अणे, जयकर, ल.ब. भोपटकर आदि महासभाई नेताओं का था। संघ के कार्यक्रमों में अतिथि के रूप में ये सभी वक्ताओं के रूप में आमंत्रित होते थे। नीति निर्माण एवं कार्यक्रमों के निर्धारण में इन अतिथि राष्ट्रवादियों का कोई स्थान नहीं था। डा. हेडगेवार संघ के कार्यक्रमों में संघ के प्रति सहानुभूति अथवा शत्रुता का भाव रखने वाले दोनों प्रकार के लोगों को आमंत्रित किया करते थे। विचारों के स्वतंत्र आदान-प्रदान का यह अनूठा उदाहरण है। तभी तो संघ के सरकार्यवाह (महासचिव) रहे बालाजी हुद्दार जब मार्क्सवादी बनकर संघ के आलोचक बन गए तब भी उन्हें संघ के कार्यक्रमों में बुलाया गया था। जाहिर है, डा. हेडगेवार संघ के नीति निर्माण, कार्यक्रमों के निर्धारण अथवा संगठन के संबंध में बाहर के व्यक्तियों पर तनिक भी निर्भर नहीं थे।

डा. मुंजे एवं डा. हेडगेवार के बीच सैद्धांतिक मतभेद थे, परंतु दोनों में से किसी ने भी उसे सार्वजनिक तौर पर अभिव्यक्त नहीं किया था। ब्रिटिश साम्राज्यवाद एवं अल्पसंख्यक समुदाय के प्रति डा. मुंजे की नीतियों से वह कतई सहमत नहीं थे। हिंदू महासभा के नेताओं का प्रतिनिधि मंडल वाइसराय एवं अन्य औपनिवेशिक प्रशासकों से मिलता था। वे कांग्रेस के समानांतर तथा मुस्लिम लीग के समान अपना राजनीतिक ओहदा बनाना चाहते थे। महासभा के प्रतिनिधि के नाते डा. मुंजे प्रथम एवं द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने

ब्रिटेन भी गए थे। संघ एकमात्र ऐसा अखिल भारतीय संगठन था, जिसने कभी भी ब्रिटेन के औपनिवेशिक प्रशासकों एवं सरकार के पास न कोई प्रतिनिधिमंडल भेजा, न ही संवाद की इच्छा जाहिर की। इसके अलावा, जब 1934 में वैधानिक एवं राजनीतिक दमन शुरू हुआ तब भी इसने औपनिवेशिक शासकों के सामने कोई मांग अथवा अपनी सफाई नहीं रखी। डा. हेडगेवार साम्राज्यवाद से एक ही भाषा में संवाद करना चाहते थे, वह था- संघर्ष, चाहे हिंसा का मार्ग हो अथवा अहिंसा का। और संघ को साम्राज्यवाद के विरोध में इसी विशुद्ध राष्ट्रवाद की जमीन पर खड़ा करने में वह एक योगी के समान लगे हुए थे।

अत: महासभा की तरह वह मुस्लिम समस्या से न तो उत्तेजित थे, न ही परेशान। उन्होंने यह मान लिया था कि हिंदू समाज की कमजोरी के कारण ही इसकी राष्ट्रीयता पर अंदर एवं बाहर से समय-समय पर प्रश्न खड़े किए जाते रहे हैं। सबल समाज एवं राष्ट्रीयता का अनवरत संचार ही इसका सकारात्मक समाधान है। अत: जब कभी भी हिंदू-मुस्लिम प्रश्न की आड़ में साम्राज्यवाद से समझौते का प्रश्न उठता था, वह इसे अराष्ट्रीय मानते थे।

1932 की एक घटना डा. मुंजे एवं डा. हेडगेवार के बीच सैद्धांतिक प्रश्नों पर उनके अलग-अलग दृष्टिकोणों को उजागर करती है। डा. मुंजे ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद को हिंदुओं एवं मुस्लिमों के बीच तीसरी शक्ति के रूप में स्वीकार करते हुए हिंदू हित में ब्रिटिश शासन का बना रहना आवश्यक माना था। 14 फरवरी 1932 को उन्होंने हिंदू महासभा की एक सभा में भाषण करते हुए कहा :

'अगर अंग्रेज शासन की बागडोर भारतीयों के हाथों में सौंपने को तैयार हों तो वे किसे सौपेंगे- हिंदुओं के अथवा मुस्लिमों के हाथों में? अगर मुस्लिमों को सौंपी जाती है तो इस बात की क्या गारंटी है कि वे अफगानिस्तान के अमीरों को बागडोर नहीं सौंप देंगे? अगर हिंदुओं को सौंपी जाती है तो क्या वे मुस्लिम आक्रमण को रोकने में सक्षम होने का आत्मविश्वास रखते हैं? अगर नहीं, तो शासन के हस्तांतरण से उन्हें क्या मिलेगा?'[1]

यह भाषण डा. हेडगेवार को राष्ट्रवाद के प्रतिकूल लगा। मुंजे का

1. मुंजे पेपर्स, डायरी नं. 4; नेहरू स्मृति संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली

आशंकित मन एवं अंग्रेजों को तीसरी शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करने की बात उनकी प्रकृति के विपरीत थी। वह हिंदू-मुस्लिम प्रश्न पर अंग्रेजों की मध्यस्थता या तीसरी शक्ति की भूमिका मानने के लिए तैयार नहीं थे। डा. हेडगेवार उनके इस भाषण पर अपना विरोध प्रकट करने अगले ही दिन प्रात:काल डा. मुंजे के घर पहुंचे। उनके साथ संघ के दूसरे नेता मार्तंड जोग भी थे। मुंजे ने लिखा है- 'जोग ने मेरे कल के भाषण पर जोरदार विरोध जताया। मैं नहीं समझ पाया कि उन दोनों को मेरे भाषण के किस अंश पर आपत्ति थी। जोग के विरोध ने इस बात को स्पष्ट कर दिया कि वह मानकर चल रहे हैं कि मैं संघ के मंच एवं उसकी छवि का उपयोग अपने हित में कर रहा हूं। मेरी आंख खुल गई। आगे से मैं संघ के मामले में व्यक्तिगत ध्यान देना बंद कर दूंगा। मैं उनकी सभा में बोलने से भी आगे इंकार करूंगा। मैं यह नहीं चाहता कि वे समझें कि मैं उनका शोषण कर रहा हूं।"[1]

राष्ट्रीय हित एवं हिंदू संगठन की भूमिका पर डा. हेडगेवार और डा. मुंजे के बीच अंतर इस घटना से साफ उजागर होते हैं। डा. हेडगेवार मुस्लिम सांप्रदायिक राजनीति की उपेक्षा करके हिंदू ऊर्जा को साम्राज्यवाद के विरुद्ध उपयोग करने के लिए कटिबद्ध थे।

हिंदू संगठन का उद्देश्य राजनीतिक हो अथवा नहीं, यह एक विवाद का प्रश्न ही नहीं, बल्कि एक गंभीर विषय लगने लगा, उससे मुंह मोड़ना न्यायसंगत कैसे हो सकता था? डा. मुंजे हिंदू संगठन को कांग्रेस का प्रतिद्वंद्वी एवं दिन-प्रतिदिन की राजनीति से अभिन्न रूप से जुड़ा मानते थे तथा ऐसा होना मुस्लिम संप्रदाय के प्रतिकार के लिए वह आवश्यक मानते थे जबकि डा. हेडगेवार हिंदू संगठन के सामाजिक-सांस्कृतिक स्वरूप को राष्ट्रीयता की भावना का संचार करने एवं समाज एवं राष्ट्र को सबल करने का माध्यम मानते थे। वह इसका राजनीतिक पक्ष परतंत्र भारत में स्वतंत्रता आंदोलन में कांग्रेस के साथ सहयोग के रूप में तब तक देखते थे जब तक संघ स्वयं उपनिवेशवाद के विरुद्ध क्रांति करने के लिए सक्षम न हो जाए। यह एक बड़ा अंतर था।

डा. मुंजे की एक और आदत थी—सार्वजनिक बयान देने की। कभी-कभी वह संघ की तरफ से समाचार-पत्रों में इस प्रकार बयान देते थे जैसे वह

---

1. मुंजे पेपर्स, डायरी नं. 4, नेहरू स्मृति संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली

इसके आधिकारिक प्रवक्ता हों। मुंजे के विपरीत डा. हेडगेवार प्रचार माध्यमों से दूर रहते थे। और उन्होंने इस प्रकार दिए गए बयानों का कभी खंडन भी नहीं किया और इन्हें नजरअंदाज करके वह संघ को परस्पर विवाद से बचाते रहे। इससे भी तत्कालीन राजनीति में मुंजे के संघ के साथ संबंध को लेकर कुछ भ्रम उत्पन्न हुआ था। जब मध्यप्रांत की विधान परिषद में सरकार ने मुंजे के संबंध में इस तरह की बात कही, तब 'महाराष्ट्र' ने संपादकीय में लिखा था—

'गृहमंत्री श्री राघवेंद्र राव ने कहां से यह जानकारी प्राप्त की है कि डा. मुंजे संघ के संस्थापक हैं?.. सच तो यह है कि डा. मुंजे का संघ की स्थापना, संविधान अथवा संगठन से दूर-दूर का कोई वास्ता नहीं है। संघ की बागडोर आरंभ से अब तक एक व्यक्ति के हाथ में रही है- वह है डा. हेडगेवार।'[1] सरकार ने विधान परिषद में अपनी भूल स्वीकार कर ली थी।

परिषद के एक वरिष्ठ सदस्य बाबा साहब खापर्डे ने विधान परिषद में जो प्रश्न किया था वह आज भी प्रासंगिक बना हुआ है। उन्होंने पूछा कि 'मुंजे के पापों' को संघ के माथे पर क्यों मढ़ा जा रहा है?' आगे उन्होंने कहा कि 'मैं सदन के सामने यह कहना चाहता हूं कि डा. मुंजे का संघ के संगठन से कुछ भी लेना-देना नहीं है। यह हो सकता है कि उन्होंने अपने आप को इससे जोड़ रखा हो।'[2]

मुंजे और संघ के बीच संबंध पर यह एक तथ्यात्मक राय थी जिसका खुलासा मध्यप्रांत के वरिष्ठ नेताओं और समाचार-पत्रों ने किया था। परंतु इस भ्रम-निवारण को आज भी नजरअंदाज किया जाता है।

सांकेतिक प्रतिकार

डा. हेडगेवार महासभा के आक्रोश, स्पर्धा, लालसा एवं आलोचनाओं को तब तक सहते रहे जब तक संघ का संगठन अप्रभावित था परंतु जब वातावरण में भ्रम उत्पन्न होने लगा एवं कार्यकर्ताओं के मन में प्रश्न उठने लगा तब उन्होंने पहल करके स्थिति को स्पष्ट किया। पहली बार 1938 में उन्होंने वर्धा की एक शाखा में महासभा नेताओं को आमंत्रित करके महासभा के संबंध में संघ की नीति का खुलासा किया। उन्होंने कहा था :

---

1. वही, व्यक्तिगत डायरी
2. मध्यप्रांत विधानसभा का शीतकालीन बजट सत्र, मार्च 1934

''संघ ने हिंदुओं को संगठित करने का कार्य हाथ में लिया है जबकि हिंदू महासभा राजनीतिक संगठन है। यह मेरी धारणा है कि जब देश परतंत्र है तब देशभक्तों को राजनीति में अवश्य भाग लेना चाहिए। संघ हिंदुओं में देशभक्ति की भावना जगाकर उन्हें संगठित करने का काम कर रहा है, अत: स्वयंसेवकों के लिए महासभा के कार्यक्रमों में भाग लेना संभव नहीं है। अगर महासभा उन्हें प्रेरित करती है तो संघ उन्हें नहीं रोकेगा। यह सत्य है कि संघ अपने स्वयंसेवकों को महासभा में भाग लेने के लिए निर्देश नहीं देता है।''

22 अक्टूबर 1939 को गोलवलकर ने डा. हेडगेवार की उपस्थिति में महासभा द्वारा संघ की तटस्थता पर उठाए जा रहे सवाल का अप्रत्यक्ष रूप से जवाब दिया। संभवत: यह अंतिम रूप से महासभा को दिया गया एक संदेश था। गोलवलकर ने नागपुर में संघ के दशहरा उत्सव में कहा था :

''आज संघ ने चौदह वर्ष पूरे कर लिए हैं और पंद्रहवें में प्रवेश कर लिया है। हम यौवन की ओर बढ़ रहे हैं। बहुत प्रकार की गतिविधियां हैं परंतु संघ ने सभी को छोड़कर सिर्फ एक कार्य चुना है, वह है- हिंदुओं का संगठन। हमने 'राजनीति' के लेबल वाले सभी कामों से अपने को उस अर्थ में अलग रखा है कि हम किसी भी वर्तमान राजनीतिक दल / संस्था से जुड़े नहीं हैं। हमें अपनी दिशा में, अपनी नीतियों और कार्यक्रमों के आधार पर बिना दूसरों के साथ भ्रमित हुए कार्य करते रहना है।''[1]

संघ के स्थानीय नेताओं ने स्थान-स्थान पर महासभा की आलोचनाओं का मुंहतोड़ जवाब देना शुरू किया। भागानगर सत्याग्रह के बाद से महाराष्ट्र में महासभा नेता, जिनमें जोगलेकर, नाथूराम गोडसे इत्यादि प्रमुख थे, संघ को हिंदुत्व विरोधी कहकर दुष्प्रचार कर रहे थे एवं स्वयंसेवकों को शाखा जाने से निरुत्साहित कर रहे थे। गोडसे का पूना में प्रभाव था और वह संघ को हिंदू युवाओं की शक्ति को व्यर्थ में क्षय करने वाला संगठन मानता था। गोडसे ने भागानगर सत्याग्रह में सक्रिय भूमिका निभाई थी और एक जत्थे का नेतृत्व करके हैदराबाद गया था। इस मिथ्या प्रचार पर टिप्पणी करते हुए संघ के नेता भाऊराव देशमुख ने पूना में अपने भाषण में कहा था :

''सबसे पहले मैं उन दूषित मस्तिष्कों को बताना चाहता हूं कि संघ

1. मराठा, 3 नवंबर 1939

हिंदुओं का सैन्य बल अथवा हिंदू महासभा का सैन्य संगठन नहीं है। संघ का प्रयास है कि देश के हिंदुओं को सही अर्थों में राष्ट्रवादी बनाए। संघ एवं दूसरे संगठनों में जमीन-आसमान का अंतर है। इतना बड़ा संगठन दूसरों को श्रमशक्ति प्रदान करने के लिए तो नहीं ही बनाया गया है। संघ में चाहे कितना भी अच्छा सैनिक प्रशिक्षण क्यों न दिया जाए, यह संघ का असली रूप नहीं है। संघ का कार्य तो बौद्धिक रूप से देश के मस्तिष्क को ढालना है, जिससे राष्ट्रवाद का संचार हो सके।'"[1]

डा. हेडगेवार का स्वास्थ्य 1939 से गिरता जा रहा था। वह संघ के मुख्य आधारस्तंभ थे। उन्हें इस बात का जरूर भय रहा होगा कि संघ के स्वयंसेवकों पर लगी हिंदू राजनीतिज्ञों की गिद्ध दृष्टि संगठन के कार्य में रुकावट बन सकती है। अतः उन्होंने अपने जीवन के अंतिम दिनों में गोलवलकर, राम गोसांवी एवं देशमुख जैसे सैकड़ों प्रवीण प्रवक्ताओं को खड़ा कर दिया जो संघ पर होने वाले किसी भी बैद्धिक प्रहार से निपटने के लिए पूर्णतः सक्षम थे। इस प्रकार डा. हेडगेवार ने संघ को हिंदू महासभा की महत्वाकांक्षा की आग में नष्ट होने से बचा लिया। संघ की अस्तित्व की लड़ाई में साम्राज्यवादी हमले एवं दमन के बाद दूसरा प्रमुख मोर्चा समानधर्मियों की राजनीतिक महत्वाकांक्षा का सुरसा रूपी मुख था। केलकर ने ठीक ही लिखा है कि 'डा. हेडगेवार को इस बात का श्रेय जाता है कि वह वीर सावरकर को आदर की दृष्टि से देखते तो थे परंतु उन्होंने अपने संगठन को हिंदू महासभा का अधीनस्थ कभी भी नहीं बनने दिया।[2]

कांग्रेस द्वारा विरोध

मध्यप्रांत में संघ का विरोध स्थानीय स्तरों पर कांग्रेसी नेताओं एवं कार्यकर्ताओं द्वारा यदा-कदा होता था। संघ के प्रति कांग्रेस में दो कारणों से विरोधी दृष्टिकोण का विकास हुआ। प्रथमतः, ठेंगड़ी के अनुसार डा. हेडगेवार ने अनेक महासभा नेताओं को संघचालक के पदों पर नियुवत किया था। यह संघ के विकासक्रम का आरंभिक चरण था। इन नेताओं द्वारा जब-तब कांग्रेस एवं महात्मा गांधी के बारे में ' गैर जिम्मेदाराना बयान दिए जाते थे जिससे संघ का कुछ लेना-देना

---

1. काल, 8 अप्रैल 1940
2. डी.वी. केलकर, इकॉनामिक वीकली, 4 फरवरी 1950 ; पृ. 133

नहीं था, परंतु संघ के साथ उनके संबंधों के कारण कांग्रेस में गलतफहमी का निर्माण हुआ।' सार्वजनिक रूप से संघ एवं महासभा के बीच का अंतर घोषित न होने से कांग्रेस नेतृत्व संघ को महासभा का अर्द्ध सैनिक संगठन समझता रहा।

द्वितीयत:, मध्यप्रांत की राजनीति में हो रही उठा-पटक और गुटबाजी की छाया संघ पर पड़ना अस्वाभाविक नहीं था। प्रांत की राजनीति में बीस के दशक में डा. मुंजे एवं अभ्यंकर—दो गुटों में घनघोर प्रतिस्पर्द्धा थी। प्रतिस्पर्द्धा का स्तर सभा में हुड़दंगबाजी से लेकर चरित्र-हनन तक पहुंच चुका था। मुंजे की महात्मा गांधी के कार्यक्रमों से पूर्ण सहमति नहीं थी और वह गांधीवादी थे भी नहीं। अभ्यंकर-पूरन चंद रांका का गुट गांधी-नेहरू के प्रति प्रतिबद्ध था। डा. हेडगेवार का व्यक्तिगत संबंध मुंजे से था एवं मुंजे को संघ का जनक मानने की भूल से प्रांत के नेता ग्रसित थे। अत: अभ्यंकर गुट संघ के खिलाफ प्रचार-प्रसार करने को डा. मुंजे को हानि पहुंचाने के समान मानता था। और यही कारण बना संघ के प्रति कांग्रेस के विद्वेष का। अभ्यंकर, ब्रिजलाल बियानी, पूरनचंद रांका आदि संघ विरोध के प्रखर प्रवक्ता थे। इनके प्रभाव-क्षेत्र के समाचार-पत्रों द्वारा, जिनमें अकोला से प्रकाशित 'मातृभूमि' प्रमुख था, संघ पर आक्षेप लगाया जाता रहा, जिसका असर कांग्रेस के सामान्य कार्यकर्ताओं पर होना स्वाभाविक था। कई बार मनगढ़ंत समाचार प्रकाशित करके संघ एवं कांग्रेस के बीच विद्वेष बढ़ाने का काम किया जाता था। डा. हेडगेवार ने 11 अगस्त 1938 को छपे ऐसे ही समाचार पर टिप्पणी करते हुए लिखा था कि 'चांदा में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने कांग्रेस वर्किंग कमेटी का निषेध करने के लिए सभा का आयोजन किया है, ऐसा समाचार प्रकाशित हुआ है। यह समाचार पूर्णत: असत्य है। इसमें तनिक भी सत्य का अंश नहीं है। यह तो आप भली भांति जानते हैं कि इस प्रकार के झमेले में संघ कभी नहीं पड़ता है।'

संघ में कांग्रेस के आंदोलनों में शरीक होने की प्रेरणा दी जाती थी। मध्य प्रांत में संघ के सैकड़ों स्वयंसेवक कांग्रेस संगठन में सक्रिय थे। परंतु जब तीस के दशक में विवाद गहराता गया, तो यवतमाल जिले की कांग्रेस इकाई ने परिपत्र जारी करके यह निर्देश दिया कि संघ से संबंधित व्यक्ति कांग्रेस कमेटी में नहीं रह सकेंगे। डा. हेडगेवार इस घटना से आहत हुए, तभी उन्होंने यवतमाल के जिला संघचालक अण्णासाहब जतकर को 5 जुलाई 1937 को पत्र लिखकर इस घटना को यवतमाल के कांग्रेसियों द्वारा 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर अत्याचार'

की संज्ञा दी। आगे उन्होंने लिखा कि 'उपर्युक्त जानकारी यदि सत्य है तो इस संबंध में हमें विस्तृत और निश्चित समाचार से तुरंत अवगत कराने की व्यवस्था करें।' कांग्रेस का व्यवहार हिंदुत्वनिष्ठ संगठनों के प्रति कितना भेदभावपूर्ण था, इसका उदाहरण दिसंबर 1936 में फैजपुर अधिवेशन की एक घटना है। इस अधिवेशन में ध्वजारोहण के समय तिरंगा झंडा अस्सी फुट ऊंचे स्तंभ की आधी ऊंचाई पर जाकर अटक गया। अनेक लोगों के विफल प्रयास के बाद किसन सिंह परदेशी नाम का प्रतिनिधि साहसपूर्वक यह विघ्न दूर करने में सफल रहा। ध्वज लहराने लगा एवं परदेशी को बधाइयां मिलने लगीं। अधिवेशन में उसका सत्कार करने का प्रस्ताव मान लिया गया। परंतु जब उसने बताया कि वह संघ की राष्ट्रवादी प्रेरणा से ऐसा करने का साहस जुटा पाया तब प्रश्न उठा कि संघ के स्वयंसेवक का सत्कार कैसे किया जा सकता है। कांग्रेस पूरी तरह से मुस्लिम तुष्टीकरण की व्याधि से पीड़ित थी।

डा. हेडगेवार एक स्वयंसेवक के इस योगदान से फूले नहीं समाए। उन्होंने एक असाधारण कार्य के लिए संघ की परंपरा से हटकर किसन सिंह परदेशी को देवपुर शाखा में बुलाकर अपने साथ बैठाया एवं सत्कार किया। उन्होंने उसे भेंटस्वरूप चांदी का प्याला देते हुए कहा कि 'कहीं भी राष्ट्र के कार्य में विघ्न दिखाई पड़े तो संघ के स्वयंसेवकों का स्वाभाविक कर्तव्य हो जाता है कि उसे दूर करने में प्राणों की बाजी तक लगानी पड़े, तो लगा दे।' इसे राष्ट्र धर्म का पर्याय ही कहेंगे।

एक ओर डा. हेडगेवार ने साम्राज्यवाद विरोध की भावना के कारण कांग्रेस के प्रति उत्कट प्रेम का परिचय दिया तो कांग्रेस के शीर्षस्थ नेता मुस्लिम तुष्टीकरण की भावना से ग्रसित होकर संघ के प्रति नफरत प्रदर्शित कर रहे थे। मध्यप्रांत में कुछ स्थानों पर कांग्रेस द्वारा संघ के प्रति अपमानजनक एवं विद्वेषपूर्ण कार्रवाई से संघ के कार्यकर्ताओं की कांग्रेस के प्रति धारणा में भी परिवर्तन की संभावना बनती जा रही थी। संघ से सहानुभूति रखने वाले डा. काकासाहब टेंभे भी इससे व्यथित हुए और उन्होंने पत्र लिखकर डा. हेडगेवार से अनुरोध किया कि कठोर शब्दों में कांग्रेस की कार्यप्रणाली एवं वैचारिक अधिष्ठान की आलोचना की जानी चाहिए। उनका मानना था कि इससे स्वयंसेवकों को संतोष मिलेगा।

डा. हेडगेवार ने इसके उत्तर में जो बात कही, उससे उनके मन में कांग्रेस

संगठन के प्रति उनका मूल्यांकन तो झलकता ही है, उनका दार्शनिक स्वरूप भी प्रकट होता है। वह संघ के कार्यकर्ताओं के मन में कांग्रेस विरोध पनपने नहीं देना चाहते थे। उनके मन में दो ही विकल्प थे—या तो संघ समय रहते अपनी शक्ति इतनी बढ़ा ले कि अंग्रेजों को क्रांति के द्वारा हिंदुस्थान से बाहर कर सके अथवा कांग्रेस के नेतृत्व में साम्राज्यवाद विरोधी लड़ाई लड़ी जाए। वह साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन को बहुकेंद्रित नहीं बनने देना चाहते थे। तभी तो 'जंगल सत्याग्रह' में संघ के स्वयंसेवकों ने कांग्रेस संगठन, उसके निर्देशों, कांग्रेस ध्वज एवं कार्यक्रमों के अनुसार भाग लिया था। यही कारण है कि टेंभे को लिखे गए पत्र में डाक्टर हेडगेवार ने लिखा था कि 'दुनिया में प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वभाव के अनुरूप जगत में व्यवहार करता है या बोलता है। यह आवश्यक नहीं कि वह व्यक्ति किसी दल या विचारधारा का प्रतिनिधि मान लिया जाए। किसी व्यक्ति की बोलचाल के कारण, वह जिस विचार-प्रणाली या दल का माना जाता है, उस दल को या उसके मतावलंबियों को दोष देना अथवा प्रशंसा करना, मुझे लगता है, उचित नहीं होगा। शुद्ध, सात्विक और शांत वृत्ति का सज्जन किसी भी दल का होने पर भी दूसरे दल के बारे में बुरा नहीं सोचता।'

संघ की तुलना में कांग्रेस सेवा दल का कार्य काफी पीछे था। इससे व्यथित होकर कांग्रेस सेवा दल के संस्थापक अध्यक्ष डा. एन.एस. हर्डीकर ने अगस्त 1929 में नागपुर की सभा में संघ पर अप्रत्यक्ष प्रहार किया था। वह अपनी ईर्ष्या भावना नहीं छिपा पाए। उन्होंने कहा था :

''नागपुर में युवकों का आंदोलन है, ऐसा हमने सुना है। हमारे शरीर पर चिपकी हुई परकीयों की जोंक जब हमारा खून चूस रही है, ऐसे समय में यह कहना कि हमारा आंदोलन राजनीतिक नहीं, सामाजिक है, तो वह आंदोलन होकर भी न होने के समान है।''

एक साल बाद ही संघ ने कांग्रेस आंदोलन में शरीक होकर हर्डीकर की धारणा को गलत साबित कर दिया। डा. हर्डीकर को डा. हेडगेवार के संगठन कौशल का आभास हुआ और उन्होंने दिसंबर 1934 में डा. हेडगेवार को पत्र लिखकर संघ की कार्यपद्धति एवं विचार प्रणाली का प्रत्यक्ष अवलोकन करने की इच्छा प्रकट की। डा. हेडगेवार ने 12 दिसंबर को पत्रोत्तर में लिखा था कि 'आप स्वयं आकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का बारीकी से निरीक्षण करना चाहते हैं, यह हमारे लिए संतोष का विषय है। ... 22 से 27 दिसंबर तक प्रत्येक

जिलास्थान पर कैंप होंगे। इसलिए आप 22 को सुबह मेल से या दोपहर एक्सप्रेस से कृपया नागपुर पधारें। इस तरह 27 तक इस क्षेत्र में होने वाले तीन-चार कैंपों को देखना आपके लिए संभव होगा और संघ के बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त करने में सुविधा होगी।'

प्रशंसा और आलोचना—दोनों ही स्थितियों में डा. हेडगेवार अपने लक्ष्य, प्रकृति और तौर-तरीकों से तनिक भी नहीं डगमगाए। संघ की प्रशंसा को उत्तरदायित्व बढ़ाने वाली प्रेरणा तथा आलोचना को आलोचक की अज्ञानता का प्रतीक मानकर वह अपनी दृढ़ता का परिचय देते रहे।

इस खुलेपन, निश्चितता एवं आत्मविश्वास के बाद भी कांग्रेस के अनेक नेता संघ के प्रति आशंकाओं से पीड़ित थे। डा. हेडगेवार को आश्चर्य तब हुआ जब जमनालाल बजाज ने भी दुष्प्रचार की धारा में बहकर डाक्टर हेडगेवार के पास एक प्रश्नावली भेजकर खादी, अस्पृश्यता निवारण, कांग्रेस एवं महात्मा गांधी के प्रति संघ का दृष्टिकोण जानना चाहा। यह घटना 1934 के प्रारंभ की है। तब डा. हेडगेवार ने लिखा कि 'संघ क्या करना चाहता है, इस संबंध में पत्र से समाधान करने की अपेक्षा यदि आप समय दें तो मैं प्रत्यक्ष आपसे मिलकर प्रश्नों का उत्तर दूंगा।' डा. हेडगेवार जमनालाल बजाज के साथ वर्धा स्वयंसेवक परिषद में, जिसकी स्थापना 1916 में की गई थी, कार्य कर चुके थे और वर्धा में संघ कार्य नागपुर के समान ही मजबूत था तथा प्रमुख कांग्रेसी नेता आप्पा जी (हरेकृष्ण) जोशी संघचालक थे। अत: संघ के संबंध में उनका अनभिज्ञ रहना एक असामान्य-सी बात थी।

जमनालाल बजाज गणपतराव टिकेकर के साथ 31 जनवरी 1934 को नागपुर आकर डा. हेडगेवार से मिले। जब डा. हेडगेवार ने उनके समक्ष खादी, अस्पृश्यता आदि विषयों पर संघ के व्यावहारिक दृष्टिकोण को रखा तब जमनालाल बजाज लंबी वार्ता के बाद वापस गए।

हिंदू महासभा एवं कांग्रेस के दो पाटों के बीच संघ प्रगति कर रहा था। महासभा इसके कांग्रेस-प्रेम से नाराजगी प्रकट करती रहती थी, तो कांग्रेस संघ को महासभा की पूंछ समझकर उससे दूरी बनाए रखना चाहती थी। इन विरोधों, उपहासों, अपमानों एवं आक्रमणों के बीच डा. हेडगेवार संघ को संयमी, धैर्यशील एवं लक्ष्योन्मुखी बने रहने की दार्शनिक प्रेरणा देने का कार्य करते रहे। संघ की यह चारित्रिक पूंजी उसका सुरक्षा कवच थी।

दमनचक्र के बीच संघ का विकास

सविनय अवज्ञा आंदोलन ने संघ के साम्राज्यवाद विरोधी चरित्र को पूरी तरह से जगजाहिर कर दिया था। अब तक सरकार इस भ्रम में थी कि यह अन्य व्यायामशालाओं की तरह ही है और इसका राजकीय विषयों से कोई संबंध नहीं है। यद्यपि सरकार डा. हेडगेवार से सीधे संबंधित होने एवं स्वयंसेवकों को सैन्य विधि से प्रशिक्षण देने के कारण संघ के प्रति सशंकित तो पहले से ही थी, परंतु आंदोलन में इसकी भागीदारी से साम्राज्यवादी प्रशासन के मन में कोई भी शंका नहीं रह गई थी। अब सिर्फ इसके प्रति नीतियों के निर्धारण एवं दमन के तरीकों पर सरकार ने अमल करना शुरू कर दिया।

संघ पर संदेहात्मक दृष्टि

1929 से ही संघ पर पुलिस एवं प्रशासन ने नजर रखनी शुरू कर दी थी। सरकार को इसकी मंशा पर शक होने लगा था। गुप्तचर विभाग की पाक्षिक रिपोर्ट में मई (पूर्वार्द्ध) 1929 में कहा गया था कि 'वर्धा में एक ही बात ध्यान देने योग्य है, वह है राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना, जो नागपुर के आर. एस. एस. की ही शाखा प्रतीत होती है। मुख्य वक्ता डा. मुंजे, चोलकर और परांजपे थे। वक्ताओं ने यह बताया कि इसका तात्कालिक उद्देश्य तो हिंदुओं को अपनी सुरक्षा के लिए संगठित करना है परंतु अंतिम लक्ष्य स्वराज्य की प्राप्ति है।'

बंबई सरकार ने भी मध्यप्रांत सरकार से संघ के बारे में इसी वर्ष जानकारी मांगी थी और 1931 में केंद्र सरकार ने सैन्य आधार पर संघ में दिए जा रहे प्रशिक्षण की पहली बार खोज-खबर ली। इसके लिए इसके सूचना विभाग के एक अधिकारी ने नागपुर एवं प्रांत के अन्य भागों में जाकर वरिष्ठ एवं 'विश्वसनीय' लोगों से पूछताछ की। उसकी रिपोर्ट में यह कहा गया था कि 'संघ में आतंकवादी संगठन बनने की पूरी क्षमता विद्यमान है।' सरकार के सैन्य विभाग ने इस पर अपनी चिंता जताई।

अंततः जुलाई 1932 में साम्राज्यवादी प्रशासन ने इसके संबंध में अपनी राय इस प्रकार व्यक्त की थी- 'नागपुर की एकमात्र चिंताजनक बात राष्ट्रीय

स्वयंसेवक संघ की उपस्थिति है। इसके नेता निश्चित तौर पर सरकार विरोधी आंदोलनों से जुड़े रहे हैं। अत: इस आंदोलन पर सतर्कता से ध्यान रखने की आवश्यकता है।'[1] किसी संगठन द्वारा प्रशिक्षित एवं अनुशासित युवाओं को सरकार विरोधी आंदोलन का हिस्सा बनाना साम्राज्यवादी प्रशासन के लिए निश्चित तौर पर एक चुनौती थी और अपनी प्रकृति के अनुकूल सरकार उसका दमन करने के लिए पूरी तैयारी से जुटी हुई थी।

प्रतिबंध

दिसंबर 1932 में मध्यप्रांत की सरकार ने एक परिपत्र जारी करके प्रांतीय सरकार के कर्मचारियों के संघ से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ने पर प्रतिबंध लगा दिया। परिपत्र में जारी आदेश में कहा गया कि-

'सरकारी कर्मचारियों की राजनीतिक आंदोलनों के प्रति भूमिका का विवरण सरकारी कर्मचारी के आचार संहिता के नियम-23 में किया गया है। तदनुसार उन्हें इस प्रकार के सभी कामों से अलग रहना चाहिए। सरकार का सुनिश्चित मत है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ नाम के संगठन के स्पष्टत: सांप्रदायिक स्वरूप तथा राजनीतिक आंदोलनों में उसके अधिकाधिक भाग लेने के कारण सरकारी कर्मचारियों का उस संगठन के साथ संबंध उनके निष्पक्ष कर्त्तव्य-पालन के साथ असंगत है या हो सकता है।

'अत: सरकार ने यह निर्णय लिया है कि किसी भी सरकारी कर्मचारी को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का सदस्य बनने अथवा उसके कार्यक्रमों में भाग लेने की अनुमति नहीं रहेगी।'[2]

सरकार ने प्रतिबंध सोच-समझकर लगाया था। मध्यप्रांत में मरणासन्न सविनय आंदोलन में डा. हेडगेवार की भागीदारी ने जान फूंकने का काम किया था। अत: 1932 में आंदोलन की दूसरी किस्त—वैयक्तिक सविनय अवज्ञा आंदोलन—में संघ की भागीदारी को रोकने के लिए दमन की कार्रवाई शुरू की गई थी। डा. हेडगेवार को इसकी पहले ही आशंका थी और उन्हें सरकार में

---

1. मध्यप्रांत एवं बरार की राजनीतिक स्थिति पर रिपोर्ट, जुलाई (उत्तरार्द्ध) 1932 F L/P & J / 12 /40; नेहरू स्मृति संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली
2. फाइल 88/33, गृह (राजनीतिक) राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली

संघ के संबंध में चल रहे विचार-विनिमय की भी जानकारी समय-समय पर मिलती रहती थी। वह अपने भाषणों में संघ को शांतिपूर्ण कार्यों में लिप्त अराजनीतिक संस्था तो घोषित करते थे, परंतु सरकार इसे डा. हेडगेवार की एक सोची-समझी योजना मानती थी। सन 1932 में लगे प्रतिबंध से कुछ दिनों पूर्व डा. हेडगेवार ने अपने भाषण में कहा था :

''1930 के आंदोलन की 1932 में दूसरी किस्त थी। अत: सरकार का यह भय स्वाभाविक है कि संघ आंदोलन की सहायता करेगा। अत: उसने इन संस्थाओं को गैर कानूनी घोषित करने का निश्चय कर लिया है। नागपुर में संघ एक शक्तिशाली संस्था है और सरकार द्वारा इस पर प्रतिबंध लगाने के विश्वस्त समाचार मिलने लगे हैं। मुझे कौंसिल के अच्छे-अच्छे सदस्यों ने बताया है कि यह समाचार सरकार के अंत:स्थ सूत्रों से आया है। परंतु मुझे पूरा विश्वास था कि मध्यप्रांत की सरकार इतनी मूर्खता नहीं करेगी, क्योंकि संघ में अत्यंत शांति एवं अनुशासन के साथ शिक्षा दी जाती है। उसे प्रतिबंधित करके व्यर्थ में सरकार अपने सिर झंझट क्यों मोल लेगी? मैं उन दिनों सदैव कहता था कि सरकार संघ को बंद नहीं कर सकती क्योंकि यह तो अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारना ही होगा। जिस दिन सरकार इसे गैर कानूनी बताकर बंद करेगी, उसी दिन नागपुर में संघ की दो सौ शाखाएं हो जाएंगी। संघ में जितने स्वयंसेवक हैं, प्रतिबंध के बाद उतनी ही शाखाएं हो जाएंगी।''

डा. हेडगेवार की इस चुनौती और संघ के कार्य में विस्तार से स्वयंसेवकों का आत्मविश्वास बढ़ा हुआ था। अक्टूबर 1932 में विजयादशमी के अवसर पर संघ के 1200 स्वयंसेवकों ने गणवेश में मार्च पास्ट किया था। सरकारी कर्मचारी बड़ी संख्या में संघ के कार्य से जुड़े थे। अत: सरकार का उक्त परिपत्र इसी वर्ग को संघ की गतिविधियों से अलग रखने एवं संघ के कार्य में रुकावट डालने की योजना का अंग था। दिसंबर 1932 की गुप्तचर विभाग की पाक्षिक रिपोर्ट ने स्पष्ट शब्दों में लिखा था कि 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ नामक हिंदू संगठन में सरकारी कर्मचारियों की भागीदारी पर इसलिए प्रतिबंध लगाया गया है कि यह संगठन उत्तरोत्तर राजनीतिक आंदोलनों में भाग ले रहा है।'

इस प्रतिबंध की सीमित प्रतिक्रिया हुई। न तो संघ ने इसे गंभीरता से लिया, न ही संघ के शुभचिंतकों ने। परंतु सरकार की इस कार्रवाई पर मध्यप्रांत की

विधान परिषद में प्रश्न उठाया गया। एम. पी. कोलते ने 21 जनवरी 1933 को इस परिपत्र को वापस लेने की मांग करते हुए निम्नलिखित प्रश्न पूछा :

'(क) क्या यह सत्य नहीं है कि संघ राजनीति में भाग नहीं लेता है और धार्मिक एवं सामाजिक गतिविधियों से जुड़ा हुआ है?

(ख) अगर ऐसा है तो क्या आप कृपा करके संघ में भाग लेने से सरकारी कर्मचारियों पर लगाए गए प्रतिबंध को वापस लेंगे?'

सरकार ने इसके उत्तर में कहा कि 'यह हमारी जानकारी में नहीं है कि संघ राजनीतिक गतिविधियों में भाग नहीं लेता है।'[1]

सरकार ने इस प्रतिबंध की व्याख्या व्यापक रूप से करके सरकारी कर्मचारियों के सगे-संबंधियों, संतानों को भी संघ में भागीदारी पर रोक लगाने की बात आरंभ कर दी। डा.मुंजे ने इस प्रतिबंध के संबंध में जब तत्कालीन गृहमंत्री राघवेंद्र राव से बात की तो उन्होंने अपने ऊपर जिम्मेवारी लेने की जगह प्रांत के मुख्य सचिव ई. गोर्डन के ऊपर बात टाल दी। मुंजे ने मुख्य सचिव के सम्मुख इस प्रश्न को उठाया तो गोर्डन का प्रतिप्रश्न था—'आप सरकारी कर्मचारियों को संघ का सदस्य कैसे बनने दे सकते हैं?' जब मुंजे ने आदेश के व्यावहारिक पक्ष पर ध्यान दिलाया कि सरकारी कर्मचारियों के परिवार के सदस्यों को क्यों रोका जा रहा है तब गोर्डन ने टालमटोल वाला उत्तर दिया- 'हमारा परिपत्र सिर्फ सरकारी कर्मचारियों के संबंध में है। दूसरों के बारे में कोई जिक्र नहीं है। मुझे इस बात की कोई जानकारी नहीं है कि उनके पुत्रों एवं संबंधियों को भी रोका जा रहा है।'[2]

प्रांत के सभी समाचार-पत्रों ने सरकारी आदेश की निंदा की। अपवाद के रूप में सिर्फ 'हितवाद' था। 'केसरी' ने सरकार के निर्णय को विवेकहीन और दमनकारी बताया।[3] संघ इस प्रतिबंध से कितना अप्रभावित रहा, यह डा. हेडगेवार द्वारा संघ के एक वरिष्ठ कार्यकर्ता को लिखे गए पत्र से पता चलता है—

---

1. हितवाद, 26 जनवरी 1933
2. मुंजे पेपर्स, डायरी नं. 5, 14 मार्च 1933
3. केसरी, 30 दिसंबर 1932

'आप जैसे कार्यकर्ताओं के संघ में रहने के कारण आज की प्रतिकूल परिस्थिति में भी संघ कार्य निरंतर प्रगति पथ पर अग्रसर है... सरकारी आदेश में कहा गया कि संघ का स्वरूप सांप्रदायिक एवं राजनीतिक है परंतु अपना संघ सांप्रदायिक नहीं है।... इस सरकारी आदेश का नागपुर के संघ पर भी विपरीत परिणाम नहीं हुआ है, न ही वह आगे चलकर होगा।'[1]

संघ कार्य में प्रगति

प्रतिबंध के बाद संघ के कार्य में और भी प्रगति हुई। डा. हेडगेवार यथावत अपने उद्देश्य में जुटे रहे और परिपत्र को लेकर वह एकदम ही नहीं उलझे। उनके सामाजिक एवं वैयक्तिक संबंधों के कारण प्रांत की अनेक महत्वपूर्ण सामाजिक एवं राजनीतिक हस्तियों ने संघ के कैंप (प्रशिक्षण शिविरों) में आकर संघ के प्रति अपना समर्थन व्यक्त किया। इनमें गोविंद राव प्रधान, एस. बी. तांबे, एन. सी. केलकर, और एम. एस. अणे शामिल थे। संघ का विस्तार नागपुर एवं वर्धा के अतिरिक्त प्रांत के अन्य दूसरे भागों में तेजी से होने लगा एवं गोंदिया, सिंदी, तलेगांव जैसे छोटे-छोटे स्थानों पर भी शाखाएं लगने लगीं। वर्धा में 26 से 28 सितंबर तक संघ का कैंप लगाया गया। 28 तारीख की सभा में डा. हेडगेवार को सुनने के लिए पांच हजार लोग उपस्थित थे। संघ का प्रशिक्षण शिविर गोंदिया, फूलगांव, अलीपुर, आर्वी, नाचणगांव, सिंदी, तलेगांव इत्यादि स्थानों पर भी सितंबर में लगाया गया। सरकार को यह बताने के लिए यथेष्ट था कि संघ सरकारी आदेश से न सिर्फ अप्रभावित है, बल्कि अविचलित भी। संघ की शाखाओं की संख्या 1929 में 37 थी। यह 1933 में बढ़कर 125 हो गई। डा. हेडगेवार ने यह घोषणा 28 सितंबर 1933 को नागपुर में संघ के कार्यक्रम में की। संघ के स्वयंसेवकों की संख्या 12 हजार तक पहुंच गई थी। अकेले नागपुर में 16 बड़ी शाखाएं थीं और 2000 स्वयंसेवक थे जबकि वर्धा में शाखाओं की संख्या 23 और स्वयंसेवकों की संख्या 3000 थी।[2] संघ सिर्फ मध्यप्रांत एवं महाराष्ट्र तक ही सीमित नहीं था, अपितु संयुक्त प्रांत, बिहार, अजमेर-मारवाड़ में इसकी शाखाएं चल रही थीं। डा. हेडगेवार ने एक पत्र में संघ की महत्वाकांक्षा को सामने रखते हुए लिखा था—

---

1. हेडगेवार का गोपालराव चितले के नाम पत्र, दिनांक 3 जनवरी 1933
2. केसरी, 10 अक्टूबर 1933

'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का कार्य हमने किसी एक नगर या प्रांत के लिए आरंभ नहीं किया है। अपने अखिल हिंदुस्थान देश को यथाशीघ्र सुसंगठित करके संपूर्ण हिंदू समाज को स्वसंरक्षणक्षम एवं बलसंपन्न बनाने के उद्देश्य से इसे प्रारंभ किया गया है।'

नागपुर में 1933 के विजयादशमी उत्सव में करीब 1000 स्वयंसेवकों ने मार्च पास्ट किया था तथा रैली में भोंसले राजा, बाबाराव (गणेश दामोदर) सावरकर और मुंजे भी विद्यमान थे। संघ के कार्य से बाबाराव सावरकर 1931 में जुड़ गए थे। उन्होंने इसी वर्ष अपनी स्वयंसेवी संस्था 'तरुण हिंदू सभा' का संघ में विलय करा दिया था। मध्यप्रांत में इसकी कई शाखाएं थीं। स्वेच्छा एवं स्वप्रेरणा से उठाए कदम के बाद सावरकर ने घोषणा की—'डाक्टर, आज मैं अपनी तरुण हिंदू सभा का विसर्जन कर रहा हूं। आप इसे संघ में समाविष्ट कर लीजिए। इसके आगे मेरी जो कुछ शक्ति होगी, उसे मैं संघ के लिए ही खर्च करूंगा।' सावरकर ने संघ में बिना कोई पद लिए अंतिम सांस तक काम किया।

संघ का विस्तार सरकार के लिए सिरदर्द बनता जा रहा था। भारत सरकार के सचिव एम.जी. हालैट ने 27 जनवरी 1933 को संघ के संबंध में विस्तृत जानकारी एकत्रित करने के लिए आदेश जारी किया। 23 जनवरी को हालैट ने मध्यप्रांत की सरकार द्वारा संघ को रोकने के लिए उठाए गए कदम के प्रति असंतोष प्रकट किया। उसने लिखा था कि 'प्रांतीय सरकार आखिर इस प्रकार के अर्द्ध-सैनिक संगठन को शुरू करने की अनुमति कैसे देती है!' ब्रिटिश सरकार ने डा. हेडगेवार का मूल्यांकन करते हुए कहा: 'डा. हेडगेवार में संगठनकर्ता के रूप में अत्यधिक क्षमता है और उनका स्वयंसेवी संगठन अनुशासित एवं कुशल है।' साम्राज्यवादी सरकार ने उन्हें 'संघ का हिटलर'[1] की संज्ञा दी थी।

सरकार की भेदभावपूर्ण नीति एवं संघ के प्रति कुदृष्टि का सबसे बड़ा प्रमाण मध्यप्रांत के अन्य स्वयंसेवी संगठनों के प्रति उसकी नीतियां थीं। इन स्वयंसेवी संस्थाओं में हनुमान व्यायामशाला, हनुमान व्यायाम प्रसारक मंडल, प्रताप व्यायामशाला प्रमुख थीं। संघ की तरह ही इन संस्थाओं में भी सैन्य प्रशिक्षण दिया जाता था। इसी प्रकार गुप्तचर विभाग की एक रिपोर्ट में अप्रैल 1933 में कहा गया था कि हनुमान व्यायाम मंडल की मध्यप्रांत, संयुक्त प्रांत,

1. फाइल 88/33, परिशिष्ट, पृ. 3-4

कर्नाटक एवं पंजाब में 150 शाखाएं हैं और इसके कई कार्यक्रमों को सरकारी सहायता भी दी गई है एवं सरकारी अधिकारी इसके सैन्य प्रशिक्षण को देखने के लिए इसकी सभाओं में उपस्थित रहे हैं। इन संस्थाओं की 'अच्छे काम' करने के लिए प्रशंसा की गई थी। इस संस्था के प्रशिक्षक लक्ष्मण कोकर्डेकर को प्रशिक्षण लेने के लिए जर्मनी भेजा गया था। परंतु सरकार को इसके नाजी जर्मनी से संबंधों पर कोई आपत्ति नहीं थी।

दूसरी तरफ संघ को, जिसका बाहर की दुनिया से कोई संबंध नहीं था, निशाना बनाया जा रहा था। संघ ने कभी भी किसी वाह्य संस्था से न तो प्रेरणा ली, न ही उसके अनुरूप ढलने का प्रयास किया। डा. हेडगेवार ने कहा था:

'इतर (दूसरे) राष्ट्रों के आंदोलनों से हिंदुस्थान के आंदोलन की तुलना करना उचित नहीं होगा। हम परतंत्र हैं और वे राष्ट्र स्वतंत्र हैं। फिर विदेशों में दौड़-धूप करने का प्रयोजन क्या है? अपने इतिहास की तरफ दृष्टि डालने से दिखाई देगा कि हमारे इतिहास में अनेक स्फूर्तिप्रद प्रसंग भी हैं। हमें अपने इतिहास पर अधिष्ठित रहने की आदत डालनी चाहिए।'

साम्राज्यवादी शासन न्याय एवं भारतीय हितों के लिए तो था नहीं। अत: जब भी राष्ट्रवादी शक्तियों का अभ्युदय हुआ, तो उन्हें कुचलने के लिए वह सदा तत्पर रहता था। साम्राज्यवादी दमन के अनेक हथकंडे थे,जिन्हें सरकार ने एक-एक करके संघ पर प्रयोग करना शुरू किया।

संघस्थान पर कब्जा

संघ की शाखा नागपुर के मोहितेवाड़ा में लगती थी। सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान जब डा. हेडगेवार एवं संघ के स्वयंसेवक जेलों में बंद थे तब न्यायालय में मोहितेवाड़ा के स्वामी स्व. सरदार मोहिते के बच्चों की तरफ से सरकार ने शिकायत पाकर उस स्थान से संघ को बेदखल कर दिया। यह अर्जी प्रशासन के दबाव में डाली गई थी। तब राजा लक्ष्मणराव भोंसले ने अपने हत्तीखाना में संघ शाखा के लिए स्थान दिया। लेकिन उनकी मृत्यु के बाद उनके नाबालिग पुत्र की तरफ से आपत्ति प्रकट करके संघ की शाखा बंद करने के लिए 19 जुलाई 1933 को आदेश जारी कर दिया। संघ ने अपने आप को मुकदमेबाजी के झंझट में डालने की जगह इस घटना की पूरी तरह उपेक्षा की। डा. हेडगेवार ने इसे संघ की स्थापना के बाद आए एक 'असामान्य संकट' की संज्ञा देते हुए

लिखा— 'अगर सरकार सोचती है कि इन चीजों से संघ का कार्य रुक जाएगा, तो यह उसका भ्रम है।'

संघ ने मोहितेवाड़ा में लगाए गए प्रतिबंध की अवहेलना करते हुए उस स्थान का उपयोग जारी रखा। 20 जुलाई 1933 को 200 स्वयंसेवकों ने शाखा लगाकर प्रशासन को अपने आक्रामक तेवर का परिचय दिया।

दूसरा आघात

औपनिवेशिक शासन ने संघ से और भी सख्ती के साथ निबटने का निर्णय लिया। और 20 दिसंबर 1933 को मध्यप्रांत सरकार के स्थानीय स्वशासन विभाग ने संघ के विरुद्ध एक नया परिपत्र जारी किया। उसमें कहा गया था—

'सरकार को ज्ञात हुआ है कि जिला परिषदों के कतिपय शिक्षक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सदस्य बन गए हैं। इस संगठन के सांप्रदायिक स्वरूप के कारण सरकारी नौकरों पर उसके सदस्य बनने अथवा उसके कार्यक्रमों में भाग लेने पर रोक लगा दी गई है। मध्यप्रांत (स्थानीय स्वशासन मंत्रालय) का मत है कि स्थानीय निकायों के कर्मचारियों का भी इस संगठन के साथ किसी भी तरह का संबंध रखना अवांछनीय है। वे समाज के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्थाओं द्वारा नियुक्त कर्मचारी हैं। सामान्य मतदाता के आधार पर शासन को स्थानीय संस्थाओं के कराधान का अधिकार प्राप्त है। इस परिस्थिति में स्थानीय निकायों के लिए अनुचित होगा कि वे अपने कर्मचारियों को किसी भी सांप्रदायिक संगठन में भाग लेने दें। मेरा निवेदन है कि आप अपने विभाग की स्थानीय संस्थाओं को यह दृष्टिकोण भली भांति समझा दें तथा उन्हें अपने कर्मचारियों को इस विषय में स्पष्ट आदेश देने के लिए प्रेरित करें।'

यह परिपत्र प्रांत के सभी प्रमंडलों को सख्ती से लागू करने के आदेश के साथ भेज दिया गया और विभिन्न स्थानीय निकायों ने इसे क्रियान्वित करना भी शुरू कर दिया। उदाहरणार्थ, वर्धा में संघ की अलीपुर इकाई को स्कूल के मैदान में दशहरा उत्सव मनाने की अनुमति नहीं दी गई। 'हितवाद' ने लिखा था— 'जिला परिषद के अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष ने यह प्रण कर लिया था कि संघ का सम्मेलन वे स्कूल के मैदान में नहीं होने देंगे। उन्होंने इसके लिए उप पुलिस अधीक्षक से शिकायत करके पुलिस की सहायता भी ली थी।'[1] डा. हेडगेवार

1. हितवाद, 8 अक्टूबर 1933, पृ. 5

ने सरकारी दमन के सामने न तो घुटने टेके, न ही उनके आत्मविश्वास में कमी आई। संघ की गतिविधियों को और भी तेज कर दिया गया एवं प्रांत के लोकप्रिय राजनीतिज्ञों, समाजसेवियों एवं साहित्यकारों को संघ की शाखाओं एवं कैंपों में निमंत्रित किया जाने लगा। अखिल महाराष्ट्र साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष काका साहब खाडिलकर सम्मेलन के प्रतिनिधियों के साथ संघ शिविर में आए। खाडिलकर ने स्वयंसेवकों को संबोधित भी किया। उन्होंने कहा—'हम साहित्यकार तो वाग्वीर हैं पर संघ तो शक्ति की प्रत्यक्ष उपासना कर रहा है। यह शक्ति का मूर्त स्वरूप है। सहस्त्रों व्याख्यान देकर और लेख लिखकर हम जो काम सिद्ध नहीं कर सकते हैं, जो विचार लोगों के मन में अंकित नहीं कर सकते हैं, वह संघ के इस कार्य से संभव हो गया। प्रत्यक्ष दृश्य स्वरूप से ही महान तत्वों का बोध हो सकता है, संघ इसका अत्यंत प्रभावी उदाहरण है।"[1] भाऊ साहब कालीकर, माधवराव चिटनवीस, टी. जे केदार, एम.एस. अणे, हरिभाऊ मुंजे, सरदार यशवंत राव गुजर, बलवंत राव देशमुख जैसे राजनीतिज्ञों ने इसके उत्सवों में आकर सरकारी परिपत्र की भर्त्सना की।

सरकार द्वारा जारी किए गए दोनों परिपत्रों में एक बुनियादी अंतर था। 1932 का परिपत्र संघ पर 'सांप्रदायिक' होने एवं 'राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने'- इन दो बातों के आधार पर जारी किया गया था जबकि 1933 के परिपत्र में सिर्फ 'सांप्रदायिक संगठन' होने का आरोप लगाया गया।

अग्नि परीक्षा

डा. हेडगेवार को प्रतीत हुआ कि सरकार संघ के धैर्य, शक्ति एवं लोकप्रियता को जांचने के लिए धीरे-धीरे दमनात्मक कार्रवाई को आगे बढ़ा रही है। पहले परिपत्र को उन्होंने पूरी तरह से अनदेखा किया था, परंतु इस बार उन्होंने औपनिवेशिक शासन को अपनी शक्ति का आभास करा देने के लिए कमर कस ली थी।

जनवरी 1934 में विधान परिषद का अधिवेशन समाप्त हो चुका था। डा. हेडगेवार का पूरा समय परिषद के सदस्यों से मिलने में व्यतीत हो रहा था। वह पत्रों के द्वारा संघ के नेताओं को निर्देश देते रहे। उन्होंने संघ नेता उमाकांत

---

1. ज्ञानप्रकाश, 29 दिसंबर 1933, पृ. 4

आपटे को लिखे पत्र में कहा : 'इस सर्कुलर से डरने का बिल्कुल कारण नहीं है। इस सर्कुलर का विरोध करते हुए प्रस्ताव जिला परिषदों एवं नगर पालिकाओं से पारित करवाना चाहिए तथा निषेध प्रस्तावों को सरकार के पास भेजा जाना चाहिए।' सरकार द्वारा लगाए गए आरोप के संबंध में उन्होंने एक और पत्र में लिखा था—'संघ के विरोधी लोगों की दशा ऐसी है कि दोषारोपण तो करते नहीं बनता, न ही संघ की कार्यवृद्धि वे सह पाते हैं। संघ किसी भी अवसर पर सांप्रदायिक नहीं रहा है, न ही किसी भी सांप्रदायिक आंदोलन में संघ कभी भी सहभागी था। साथ ही अन्य किसी जाति या परधर्मियों से द्वेष या तिरस्कार संघ ने कभी नहीं किया। अत: संघ को सांप्रदायिक नहीं कहा जा सकता। इस पृष्ठभूमि पर नया सर्कुलर अनावश्यक एवं अन्यायकारी है।'

डा. हेडगेवार की योजना का क्रियान्वयन होना शुरू हो गया। प्रांत के स्थानीय निकायों ने परिपत्र के विरुद्ध प्रस्ताव पारित करके सरकार के पास भेजा। अकोला जिला परिषद ने संघ को 'सांप्रदायिक' साबित करने के सरकारी प्रयास की भर्त्सना की एवं प्रस्ताव में डा. हेडगेवार की 'जातिभेद से ऊपर उठकर युवाओं को संगठित करने के लिए' प्रशंसा की गई।

नागपुर नगरपालिका ने 10 मार्च 1933 को संघ के समर्थन में प्रस्ताव पारित किया। इसने डा. हेडगेवार द्वारा नागपुर में दंगा रोकने और शांति स्थापित करने के प्रयासों की सराहना की। सावनेर नगरपालिका ने 21 मार्च को यह प्रस्ताव पारित किया—'नगरपालिका कमेटी यह मानती है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ नाम की जो संस्था है वह सांप्रदायिक नहीं है और इसकी गतिविधियां आपत्तिजनक नहीं हैं। कमेटी यह भी मानती है कि संघ की गतिविधियों में नगरपालिका कर्मचारियों की भागीदारी से इसके काम में न तो अड़चन आई है और न ही आगे अड़चन आने की कोई संभावना है। यह संस्था युवकों को शारीरिक एवं नैतिक शिक्षा देने के कारण बहुत ही उपयोगी है। अत: कमेटी परिपत्र के खिलाफ अपना विरोध प्रकट करते हुए उसे वापस लेने का अनुरोध करती है।'[1]

वर्धा, भंडारा, काटोल एवं उमरेड की नगरपालिकाओं ने इसी तरह का प्रस्ताव पारित किया था। वर्धा जिला परिषद यह बात तो मानती थी कि संघ

1. हितवाद, 25 मार्च 1934

सांप्रदायिक संगठन नहीं है परंतु परिषद में सरकार समर्थकों का बहुमत था। सरकार के दबाव में वर्धा जिला परिषद ने 7 अगस्त 1933 को अपने कर्मचारियों द्वारा संघ की गतिविधियों में भाग लेने पर प्रतिबंध लगा दिया था। इस प्रतिबंध का कारण संघ की 'क्रांतिकारी गतिविधियां' बताया गया था। संघ के पास वर्धा में 3000 से अधिक स्वयंसेवक थे। इसमें बड़ी संख्या में स्थानीय निकायों के कर्मचारी एवं शिक्षक भी शामिल थे। 1933 के विजयादशमी उत्सव के बाद बड़ी संख्या में वर्धा जिला परिषद से जुड़े स्कूल के शिक्षकों एवं कर्मचारियों को उनके द्वारा संघ कार्यक्रमों में भाग लेने को आधार बनाकर निलंबित कर दिया गया।[1] इस प्रकार सविनय अवज्ञा आंदोलन के बाद जहां संघ का विस्तार तेजी से हुआ वहीं सरकार इसे पंगु बनाने के लिए हर प्रकार की कोशिश करती रही। 1932 से 1934 तक दो वर्षों का समय वस्तुतः सरकार एवं संघ के बीच प्रत्यक्ष टकराव का काल था। इन दो वर्षों में डा. हेडगेवार की प्रेरणा से संघ चट्टान की तरह साम्राज्यवादी दमन का सामना करता रहा। सरकारी परिपत्र के खिलाफ इसने सामाजिक एवं राजनीतिक स्तर पर जनमत तो तैयार किया ही, प्रांत की विधान परिषद में भी सरकार को मुंह की खानी पड़ी। यह संघ की प्रांत में स्वीकृति एवं डा. हेडगेवार की लोकप्रियता का सबसे बड़ा प्रमाण था।

---

1. हितवाद, 26 नवंबर 1933

ऐतिहासिक बहस

मध्यप्रांत की सरकार ने दिसंबर 1933 में जब सर्कुलर जारी करके स्थानीय निकायों के कर्मचारियों एवं शिक्षकों को संघ की गतिविधियों में भाग लेने पर प्रतिबंध लगा दिया था तब उसे तनिक भी अनुमान नहीं था कि उसे विधान परिषद के अगले (बजट) सत्र में भारी मुश्किलों का सामना करना पड़ेगा। इस दंभ का कारण उसका अपना अनुभव था। जब 1932 में पहला सर्कुलर जारी करके प्रांतीय सरकार के कर्मचारियों पर संघ में भाग लेने पर प्रतिबंध लगाया गया था तो प्रांत की राजनीति में तनिक भी हलचल नहीं हुई थी। जिला परिषदों एवं नगरपालिकाओं द्वारा दूसरा सर्कुलर जारी होने के बाद संघ के समर्थन में प्रस्ताव पारित होने की सूचना को सरकार ने गंभीरता से नहीं लिया था। प्रांत के राजभक्त गृहमंत्री राघवेंद्र राव को अपनी जोड़-तोड़ की राजनीति पर भरोसा था। वह सरकार को कई अवसरों पर राजनीतिक झंझावातों से बचा चुके थे। उन्हें यह पद उनके इसी कौशल के इनाम के रूप में दिया गया था।

बजट सत्र से पहले दो महीने तक डा. हेडगेवार ने जमकर जनसंपर्क किया था। प्रांत के राजनीतिज्ञों के लिए संघ कोई अनजान संस्था नहीं थी। वे इससे भली भांति परिचित थे। परंतु पहली बार उन्हें इसके संस्थापक के मुंह से इसके बारे में सीधे और बातचीत के द्वारा जानने एवं समझने का अवसर मिला था। डा. हेडगेवार ने सरकार के भरोसे और राघवेंद्र राव के घमंड को चकनाचूर कर दिया।

1934 का बजट सत्र असाधारण सिद्ध हुआ। कौंसिल में सरकार को अनपेक्षित विरोध का सामना करना पड़ा। मध्यप्रांत की राजनीति गुटबाजी के लिए विख्यात थी। कहा जाता था कि जितने राजनीतिज्ञ थे, उससे अधिक गुट थे। वे ब्राह्मण, ब्राह्मणेतर, मराठी, हिंदी, तिलकवादी, गांधीवादी, मुस्लिम जैसे संकीर्ण आधारों पर अलग-अलग गुटों में बंटे हुए थे। परंतु संघ के प्रश्न पर उन्होंने आपसी विरोधों को भुलाकर अभूतपूर्व एकता का प्रदर्शन किया था। संघ का समर्थन एवं सर्कुलर का विरोध स्पष्ट एवं बेबाक तरीके से कौंसिल में हर

वर्ग एवं हर क्षेत्र के प्रतिनिधियों ने किया। विश्वविद्यालय, औद्योगिक मजदूर, मुस्लिम, महिलाओं, पिछड़े वर्ग, ब्राह्मण, ब्राह्मणेतर सभी के बीच तालमेल देखकर सरकार सकते में थी। साम्राज्यवादी ताकतों का प्रतिनिधित्व करने वाले राघवेंद्र राव को कौंसिल के भीतर डा. हेडगेवार के राष्ट्रवादी विराट स्वरूप का साक्षात सामना करना पड़ा। संघ को लघु, नवजात एवं राजनीति में अनाथ समझने की सरकार की भूल पर कौंसिल के सदस्यों ने उसे पश्चात्ताप करने का भी अवसर नहीं दिया। विरोध इतना तीव्र, तथ्यों पर आधारित एवं तर्कयुक्त था कि सरकार सिर्फ पराजित ही नहीं हुई, बल्कि लज्जित एवं अपमानित भी हुई। सदस्यों ने बहस एवं प्रश्नोत्तर काल के दौरान उसे निरुत्तर किया एवं राजभक्तों के बौद्धिक खोखलेपन को उजागर किया।

किसी संगठन का राष्ट्रवादी चरित्र उसकी विशेषता है। परंतु यदि इसके पीछे इसके संस्थापक का नैतिक एवं निष्कलंक चरित्र एवं राष्ट्र के प्रति समर्पण की विश्वसनीयता हो तो उस संगठन की शक्ति, प्रभाव एवं लोकप्रियता अपने सदस्यों की सीमा से कई गुना अधिक हो जाती है। डा. हेडगेवार का जीवन इसका जीता-जागता उदाहरण था।

औपनिवेशिक भारत के संसदीय इतिहास में शायद पहली और अंतिम बार ऐसा हुआ कि किसी एक संस्था की स्थापना, संस्थापक, स्वरूप, सिद्धांत और सदस्यता पर तीन दिनों तक लगातार बहस चली। अत: 1934 के बजट सत्र में दिनांक 3, 7 एवं 8 मार्च को प्रांतीय कौंसिल में संघ पर जो बहस हुई थी, वह साम्राज्यवादी ताकत के खिलाफ इसकी प्रतिबद्धता को दर्शाने वाला एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक दस्तावेज है। परंतु आजादी के बाद स्वतंत्रता संग्राम में संघ की भूमिका को लेकर हुई बहस में आश्चर्यजनक ढंग से यह घटना प्राय: अवर्णित रही है।

प्रश्नोत्तर काल

सर्कुलर में संघ पर सांप्रदायिक होने का आरोप लगाया गया। बजट सत्र के आरंभ में ही 3 मार्च को सदस्यों ने प्रश्नोत्तर काल के दौरान इस विषय को उठाया था। सदस्यों ने सरकार से 'सांप्रदायिकता' की परिभाषा जाननी चाही। सरकार इसे टालती रही। जब सदस्यों ने जानना चाहा कि संघ को सांप्रदायिक संगठन किस आधार पर कहा गया, तब राघवेंद्र राव का उत्तर था—'संघ के सूत्रधारों के भाषण

से ऐसा दिखता है कि उन्होंने अपने सम्मुख जर्मनी के नाजीवाद अर्थात हिटलरशाही को ध्येय एवं कार्यपद्धति के आदर्श के रूप में स्वीकार किया है?' जब सदस्यों ने उनके भाषण को उद्घृत करने की मांग की तब राव असहाय हो गए और सभा के अध्यक्ष को हस्तक्षेप करके कहना पड़ा कि इस विषय पर आगे कभी बहस हो सकती है। 'क्या सरकार को कोई मुस्लिम संगठन सांप्रदायिक लगता है?' इस प्रश्न को भी वह टाल गए। राव बार-बार 'नाजीवाद' के नाम पर संघ पर प्रहार करते रहे।

प्रश्नोत्तर काल से सरकार को पूर्वाभास हो गया कि संघ की लोकप्रियता एवं डा. हेडगेवार के बारे में उसका मूल्यांकन गलत है, परंतु उसे अभी भी आगे की घटनाओं की कल्पना नहीं थी।

कटौती प्रस्ताव

बजट सत्र के दौरान 7 मार्च को 'सामान्य प्रशासन' पर सदन में जैसे ही चर्चा आरंभ हुई, एक सदस्य वी.डी. कोलते ने 'मांग संख्या 8' के विरुद्ध संघ पर जारी परिपत्रों के विरोध में एक रुपये का कटौती प्रस्ताव रखा। उन्होंने कटौती प्रस्ताव रखते हुए कहा—'मैं मांग संख्या-8 के अंतर्गत एक रुपये का कटौती प्रस्ताव इसलिए रख रहा हूं कि सरकार द्वारा 1932 में सरकारी कर्मचारियों को संघ में भाग लेने पर जो परिपत्र जारी करके प्रतिबंध लगाया गया है उस पर बहस हो। सरकार ने जो परिपत्र जारी करने का कारण बताया है, उसके अनुसार, संघ की गतिविधियां 'कम्यूनल' हैं इसलिए सरकारी कर्मचारियों को इसकी गतिविधियों में भाग नहीं लेना चाहिए। प्रश्नोत्तर काल के दौरान हम लोगों ने 'कम्यूनलिज्म' शब्द का अर्थ सम्माननीय गृहमंत्री से जानना चाहा लेकिन दुर्भाग्य से हमें इसका अर्थ अथवा परिभाषा नहीं मिली। अगर हम शब्दकोषों में दी गई परिभाषा को देखें तो 'कम्यूनल' अथवा 'कम्यूनलिज्म' शब्द की उत्पत्ति 'कम्यून' से हुई है। 'कम्यून' का तात्पर्य एक विशिष्ट प्रकार की सरकार/व्यवस्था होती है। ... ऐसा प्रतीत होता है कि 'कम्यूनल' शब्द का भिन्न अर्थ सरकार के पास है जिसे वह हमें बताने से बचना चाहती है। अगर इसके पास सामान्य शब्दकोष में दिया गया अर्थ है तब मुझे कोई कारण नहीं लगता है कि सरकारी कर्मचारियों को क्यों किसी ऐसे आंदोलन से जुड़ने पर रोक लगाई जा रही है जिससे उनके कर्तव्य निर्वाह करने में कोई बाधा नहीं पहुंचती है।... आजकल 'कम्यूनल' शब्द

की व्याख्या इस रूप में की जाती है—'किसी समुदाय के हित का संवर्द्धन करते हुए दूसरे समुदाय के विरुद्ध घृणा पैदा करना।' अगर 'कम्यूनल' शब्द का यह अर्थ स्वीकार किया जाता है तो हमें देखना पड़ेगा कि क्या संघ, जिस पर यह परिपत्र लागू होता है, इस परिभाषा के अंतर्गत आता है या नहीं। संघ की गतिविधियों की जांच-पड़ताल से पता चलता है कि इसके तीन उद्देश्य हैं—प्रथमतः, हिंदू समाज की स्थिति में सुधार करना; द्वितीयतः, हिंदू युवकों को शारीरिक प्रशिक्षण देना; एवं तीसरा, हिंदुओं में अनुशासन का भाव पैदा करना। अगर इन तीनों बिंदुओं पर विचार किया जाए तो पता चलेगा कि प्रांतीय सरकार एवं स्थानीय निकायों के कर्मचारियों को संघ की गतिविधियों में भाग लेने से रोकने के लिए कोई भी आधार नहीं है।

'जिस प्रकार हिंदू समुदाय के पास स्वंससेवी संस्था है उसी प्रकार मुस्लिम समुदाय के पास भी है, दलितों के पास भी है। ... अगर इन संस्थाओं में भाग लेने पर रोक नहीं है तो मुझे समझ में नहीं आ रहा है कि सरकार सरकारी कर्मचारियों को सिर्फ संघ में भाग लेने के लिए क्यों रोकना चाहती है।'

उन्होंने आरोप लगाया कि सरकार विभिन्न स्वयंसेवी संस्थाओं के बीच सिर्फ भेदभाव ही नहीं कर रही है, बल्कि सरकारी कर्मचारियों को अपना दास बनाना चाहती है।

अब सरकार की बारी थी कि वह परिपत्र के समर्थन में तथ्यों को रखकर बहस आगे बढ़ाए। मुख्य सचिव राउटन ने कटौती प्रस्ताव का विरोध करते हुए सरकारी कर्मचारी व्यवहार संहिता नियम-21 को उद्धृत करके बताना चाहा कि सरकारी कर्मचारियों को अपने कार्य के निष्पादन में निष्पक्ष एवं स्वतंत्र रहना चाहिए और उन्हें किसी राजनीतिक आंदोलन से नहीं जुड़ना चाहिए। उसने आगे कहा—'ठीक यही बात सांप्रदायिक संगठनों के संबंध में भी लागू होती है।' तब राउटन ने संघ का मनगढ़ंत सरकारी इतिहास बताया—'मुझे उन लोगों के बारे में बताना होगा, जिन्होंने संघ की स्थापना की है। सांप्रदायिक तनावों के समय 1918 में इसकी स्थापना डा. मुंजे ने की थी। इसका उद्देश्य सांप्रदायिक हितों की रक्षा करना था। जब इसकी स्थापना हुई तब इसका उद्देश्य निश्चित तौर पर सांप्रदायिक था। और उन्होंने एकदम हाल में डा. हेडगेवार की उपस्थिति में एक सभा में कहा है कि 'हिंदुस्थान हिंदुओं के लिए है और हिंदुओं का

भविष्य की सरकार पर आधिपत्य रहेगा और यह उन पर निर्भर है कि गैर हिंदुओं को राजनीतिक अधिकार एवं सुविधाएं दी जाएं या नहीं।' वर्तमान समय में विभिन्न समुदायों के अधिकारों के बारे में खासी चर्चा एवं विचार चल रहा है। ऐसी परिस्थिति में तो सरकारी कर्मचारियों को पूर्णतः तटस्थता बनाए रखनी चाहिए।'

राउटन ने 'कम्यूनल' शब्द की परिभाषा देते हुए आगे कहा कि 'भंडारा के मेरे दोस्त ने 'कम्यूनल' शब्द को परिभाषित करने में सरकार की भारी विफलता पर प्रकाश डाला है। उन्होंने जो परिभाषा बताई है, सरकार उसी का प्रयोग यहां कर रही है। कम्यूनल संस्थाओं का तात्पर्य उनसे है जो दूसरे समुदायों के बीच में द्वेष फैलाती हों। इस संदर्भ में वे संस्थाएं इसके अंतर्गत नहीं मानी जाएंगी जो किसी समुदाय के हितों के लिए बनी हुई हैं। उदाहरण के लिए अंजुमन एवं उसके जैसी शैक्षणिक संस्थाएं।'

राउटन के भाषण ने गृहमंत्री के आत्मविश्वास को बढ़ाया और उन्होंने कहा कि 'परिपत्र संघ की गतिविधियों के ऊपर आधारित है।' जब सदस्यों ने जानना चाहा कि क्या किसी अल्पसंख्यक समुदाय ने संघ के विरुद्ध शिकायत की है तब राव ने भंडारा जिले के अल्पसंख्यक समुदाय की संघ के प्रति आशंका की ओर ध्यान दिलाया। परंतु राव का 'अल्पसंख्यकवाद' तब धाराशायी हो गया जब सदन एवं प्रांत के लोकप्रिय मुस्लिम नेता एम.एस. रहमान, जो बरार नगरपालिका शहरी मुस्लिम क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते थे, बोलने उठे। एक मुस्लिम के नाते और एक राष्ट्रवादी के नाते उन्होंने जो कहा वह उपनिवेशवादी 'फूट डालो, राज करो' की नीति को ध्वस्त करने वाली बात थी। पहले उन्होंने गृहमंत्री से जानना चाहा कि क्या किसी मुस्लिम संगठन ने संघ के विरुद्ध कोई प्रतिवेदन भेजा है जिसमें इस पर प्रतिबंध लगाने की मांग की गई हो? सरकार का उत्तर नकारात्मक था। संघ के राष्ट्रवादी एवं सकारात्मक हिंदुत्व की प्रशंसा करते हुए रहमान ने कहा :

'मैं यह अनुभव करता हूं कि ऐसे विषयों पर बोलना अच्छा होता है परंतु चुप रहना उससे भी अच्छा होता है। मैं इस पर नहीं बोलता, परंतु कुछ सदस्यों के आग्रह पर मैं बोल रहा हूं। एंग्लो इंडियन, मुसलमानों एवं हिंदुओं तथा व्यावसायिक समुदायों के संगठन हैं—क्या हम उन सबको सांप्रदायिक कह सकते हैं? 'द एंग्लो इंडियन परिषद' को सांप्रदायिक संस्था कहा जा सकता है,

आल इंडिया मुस्लिम कांफ्रेंस, मारवाड़ी सुधार लीग इन सबको सांप्रदायिक संगठन कहा जा सकता है क्योंकि ये सभी समाज के विशिष्ट समुदायों का प्रतिनिधित्व करते हैं। ... मुझे नहीं लगता है कि कोई भी विवेकशील व्यक्ति उस मुस्लिम संगठन को गलत समझेगा, जिसका उद्देश्य समुदाय के हितों का संवर्द्धन है। ठीक उसी प्रकार जिस हिंदू संगठन का उद्देश्य आक्रामक और विद्वेषपूर्ण नहीं है, उसे कोई ईमानदार मुसलमान गलत समझेगा। मैं कटौती प्रस्ताव का समर्थन करता हूं।'

इसके बाद टी.एच. केदार ने अपने आक्रामक तेवर से सरकार को कठघरे में खड़ा किया। उन्होंने सरकार से पूछा—'जब से संघ की स्थापना हुई है, जैसा हमें बताया गया है—1918 में, क्या सरकार के पास 1932 तक संघ को सांप्रदायिक घोषित करने का एक भी अवसर नहीं आया?' उन्होंने कहा कि सरकार पुलिस की गलत रिपोर्टिंग के आधार पर निर्णय कर रही है। उन्होंने सरकार को चुनौती दी कि संघ का कोई भी ऐसा साहित्य, जो सांप्रदायिक हो, सदन के सामने रखे। उन्होंने साम्राज्यवादी कार्यपद्धति को निशाना बनाते हुए कहा कि 'सरकार ने न्याय के साधारण सिद्धांत का भी पालन नहीं किया है। इसने संघ के संस्थापकों को अपनी बात कहने का कोई अवसर नहीं दिया है। क्या सचिवालय में बैठकर संघ को सांप्रदायिक घोषित करके निर्णय जारी करना उचित है?'

शहरी औद्योगिक मजदूरों के प्रतिनिधि आर. डब्ल्यू. फुले ने संघ के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए अपने भाषण में कहा कि उनकी संघ के लोगों से बातचीत हुई है और संघ ने किसी भी दूसरे समुदाय के व्यक्ति को प्रवेश देने में निषेध आज तक नहीं किया है। इसका सिद्धांत 'हिंदुस्थान हिंदुओं का है' का व्यापक अर्थ है। इसका वास्तविक अर्थ है—भारत भारतीयों का है। उन्होंने पूछा कि 'क्या सरकार के पास ऐसा कोई उदाहरण है जिससे कहा जाए कि कोई मुस्लिम या ईसाई, जो इसमें प्रवेश करना चाहते थे, उन्हें रोका गया?'

इसके बाद महिला गैर सरकारी (मनोनीत) सदस्य रमाबाई तांबे ने संघ का समर्थन किया। उन्होंने कहा कि 'मैं इस कटौती प्रस्ताव का समर्थन करके हिंदू युवकों को सरकार की दमनकारी नीति से बचाना चाहती हूं।' संघ एक उपयोगी संस्था है। यह मध्यप्रांत में शुरू हुई है परंतु पूरे हिंदुस्थान में फैल जाएगी और सभी समुदायों को संगठित करने का कार्य करेगी। क्या समुदायों को संगठित

करने में कोई नुकसान है? अगर आप हां कहेंगे तो मैं यही कहूंगी कि सरकार हमें संगठित होने देना नहीं चाहती है।'

सरकार की मंशा तब और भी उजागर हुई जब सरकार परिपत्र जारी करने के वर्ष 1932 तक संघ के बारे में कोई भी आपत्तिजनक तथ्य सदन के सामने रखने में विफल रही। अंततः परिपत्र के आधार को साबित करने के लिए इसने जनवरी 1933 में संघ के मकर संक्रांति उत्सव में दिए गए भाषणों को उद्घृत किया। ये भाषण उत्सव में आमंत्रित दो अतिथियों—डा. मुंजे एवं मोरोपंत जोशी—के थे। इन दोनों के भाषणों को सांप्रदायिक कहा गया। जोशी के भाषण के अंश को राउटन ने उद्घृत किया- 'इस बात को छिपाने में कोई लाभ नहीं है कि संघ एक सांप्रदायिक संगठन है, इसे मानने में कोई अवमानना नहीं है। मूल बात यह है कि क्या संघ किसी समुदाय के प्रति आक्रामक है। लेकिन वे तो अपने समुदाय की बुराइयों को समाप्त करने के लिए कृतसंकल्प हैं—दूसरे किसी समुदाय को नुकसान पहुंचाए बिना।' डा. मुंजे ने इस बात का समर्थन अपने भाषण में किया था।

रमाबाई तांबे ने जब पूछा कि जोशी संघ के कार्यक्रम के आयोजक थे अथवा सभा के अध्यक्ष, तब सरकार ने माना कि वह सिर्फ अध्यक्ष थे। सदस्यों ने सरकार का मखौल उड़ाया कि सभा के मेहमानों के भाषणों को आधार बनाकर संघ की भर्त्सना की जा रही है, और वह भी पुलिस रिपोर्ट को सच मानकर। सरकार पूरी तरह से लज्जित तब हुई जब सदस्यों ने व्यंग्यात्मक रूप से कहा कि सरकार ने 1933 के भाषणों की भविष्यवाणी करके 1932 में संघ के विरुद्ध परिपत्र निकाला था।

फिर कोलते ने कुछ बुनियादी प्रश्नों पर सरकार को कठघरे में खड़ा किया। उनका समर्थन बी.जी. खापर्डे, आर.ए. कनितकर, सी.बी. पारेख, यू.एन. ठाकुर, ठाकुर मनमोहन सिंह, एम.डी. मंगलमूर्त्ति, एस.जी. सपकल, डब्ल्यू.वाई. देशमुख ने अपने भाषणों में किया। कोलते ने कहा—'यह कहा गया कि संघ की स्थापना 1918 में हुई है। यह सरासर गलत है। यह भी कहा गया कि डा. मुंजे इसके संस्थापक हैं। जहां तक मुझे पता है, डा. मुंजे न तो इसके संस्थापक हैं और न ही इसके पीछे प्रेरणास्रोत। मैं नहीं समझता कि संघ के प्रति सहानुभूति रखने अथवा सहयोग करने का मतलब है कि वे उसके संस्थापक हैं। जिन भाषणों को उद्घृत किया जा रहा है वे उन महानुभावों द्वारा दिए गए

हैं जो संघ के कार्यों से जुड़े हुए नहीं हैं और उनके भाषण संघ की नीतियों को प्रतिबिंबित नहीं करते हैं।'

डा. हेडगेवार के भाषण पर सरकार की आपत्ति पर बी.जी. खापर्डे ने प्रश्न खड़ा किया—'अगर यह कहा गया कि भारत हिंदुओं का देश है तो इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि यह सिर्फ हिंदुओं के लिए है। यह दूसरे लोगों को राजनीति में भाग लेने से नहीं रोकता है।'

डा. हेडगेवार पर हिटलर का समर्थन करने के आरोप पर खापर्डे ने कहा— 'यह आरोप लगाया गया कि डा. हेडगेवार हिटलर की तरह व्यवहार करते हैं और उन सिद्धांतों का प्रतिपादन करते हैं जिनका प्रतिपादन हिटलर ने किया था। मैंने उनके उस तथाकथित भाषण, जिसमें कथित रूप से उन्होंने हिटलर का जिक्र किया था, का पता लगाया तो मुझे जानकारी मिली है कि डा. हेडगेवार ने अपने किसी भी भाषण में हिटलर का नाम तक नहीं लिया है। मैं सदन को इसलिए भी आश्वस्त करना चाहता हूं क्योंकि डा. हेडगेवार ने स्वयं यह बात मुझसे कही है। मुझसे कहा गया कि डा. हेडगेवार ने पहली बार इस प्रकार की स्वयंसेवी संस्था बनाई है अत: वह हिटलर की तरह खतरनाक हैं। अगर हम इसे तर्कशास्त्र के फार्मूले में ढालते हैं। ... मैं तर्कशास्त्र को नहीं भूला हूं। अगर एक आदमी दूसरे से कहता है कि तुम्हारे पिता के पास बड़ी मूछें हैं। इसलिए वह ... । (हंसी) उसी प्रकार यह कहना कि डा. हेडगेवार के पास स्वयंसेवी संस्था है और हिटलर के पास भी, इसलिए डा. हेडगेवार हिटलर हैं— यह एक गलत तर्क है। डा. हेडगेवार के पास स्वयंसेवी संस्था है, खिलाफत के समर्थकों के पास स्वयंसेवी संस्था है तो क्यों नहीं खिलाफत के समर्थकों को हेडगेवारों एवं हिटलरों के नाम से बुलाया जाता है? यह तो ऐसा ही है जैसे किसी को बदनाम करके उसे फांसी पर चढ़ा दो।'

परिपत्र जारी करने के पीछे सरकार की सांप्रदायिक मंशा को बहस में उजागर किया गया। यू.एन. ठाकुर ने अपने भाषण में कहा कि 1932 के परिपत्र को 1933 में विस्तार करके स्थानीय निकायों के कर्मचारियों पर जिस व्यक्ति— शरीफ ने मंत्री बनते ही लागू किया, वह खुद घोर सांप्रदायिक संस्था 'तंजीम' से जुड़े हुए हैं।

नागपुर विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि डा. एम.डी. मंगलमूर्ति ने अपने भाषण में सरकार से प्रश्न किया कि 'जब गुप्तचर विभाग के लोग दिन-रात संघ

के लोगों के पीछे शुरू से ही पड़े हैं तब सरकार चौदह वर्षों से चुप क्यों थी? उसने संघ को 1932 में अचानक सांप्रदायिक क्यों घोषित कर दिया?' उन्होंने विश्वासपूर्वक कहा कि संघ के संविधान, संगठन एवं उद्देश्यों में लेशमात्र भी सांप्रदायिकता नहीं है। उन्होंने 1927 में नागपुर दंगे की घटना का उदाहरण देते हुए कहा कि सरकार के द्वारा संघ पर लगाए गए आरोप के एकदम विपरीत व्यवहार संघ के स्वयंसेवकों ने किया था। उन्होंने ईमानदारी से दंगे को रोकने का काम किया। मंगलमूर्ति ने अंत में सरकार की मंशा पर चोट करते हुए कहा कि 'सरकार स्वयं अपने कदम से पूरी तरह संतुष्ट नहीं है। सरकारी पक्ष के भाषणों को सुनकर लगता है कि उनके मन में कुछ और है और कार्रवाई का आधार कुछ और है। ऐसा लगता है कि सर्कुलर लाने के पीछे सरकार का घोषित उद्देश्य से भिन्न कोई और उद्देश्य रहा है।'

बहस में कुल चौदह गैर सरकारी सदस्यों ने हिस्सा लिया और किसी ने भी सरकार का साथ नहीं दिया। सरकार के पास राव-राउटन के अतिरिक्त सर्कुलर के समर्थन में बोलने वाला एक भी सदस्य नहीं था।

बहस के अंत में कटौती प्रस्ताव पर नियमत: मतदान होना था। पराजय की औपचारिकता बाकी थी। परंतु सरकार के पास एक विकल्प था कि बिना मतदान कराए सदस्यों की मांग को मान ले और यही हुआ। दोनों ही सर्कुलर वापस ले लिए गए। यह संघ की भारी सफलता थी। सांप्रदायिकता के नाम पर संघ को अलग-थलग करने का साम्राज्यवादी प्रयास पूरी तरह से विफल हो गया। बहस के दौरान दोनों दिन डा. हेडगेवार कौंसिल की दर्शक दीर्घा में विद्यमान थे। समाचार-पत्रों में भी संघ को व्यापक समर्थन मिला था।

परंतु बात यहीं खत्म नहीं हुई। शरीफ के विरुद्ध तीन अविश्वास प्रस्ताव सदन में रखे गए। पहला के.पी. पांडे, दूसरा खापर्डे और तीसरा के.एस. नायडू द्वारा था। पांडे के प्रस्ताव को 30 और बाकी दोनों प्रस्तावों को 29 सदस्यों ने समर्थन दिया। जबकि अपेक्षित संख्या 22 थी। अत: तीनों प्रस्तावों को सदन की कार्यसूची में जोड़ दिया गया। 9 मार्च को उन पर बहस हुई। रमाबाई तांबे ने शरीफ से कहा कि अगर वह संघ के विरुद्ध निकाले गए सर्कुलर पर अपना बयान देकर उन्हें संतुष्ट कर देते हैं तो वह मतदान, बिना पूर्वाग्रह के, करेंगी। पूरी बहस के दौरान चुप्पी लगाए शरीफ ने अपना मुंह अपनी कुर्सी बचाए रखने के लिए आखिर खोला तो कहा कि सर्कुलर सिर्फ सलाह के रूप में था और

संघ सहित दूसरे संगठनों पर भी लागू था। मत विभाजन में अविश्वास मत के समर्थन में एवं विपक्ष में बराबर-बराबर (34) मत पड़े। तब अध्यक्ष ने अपना निर्णायक मत देकर सरकार को बचा लिया।[1]

18 मार्च 1934 को गुरु पूर्णिमा का त्यौहार संघ ने 'विजय दिवस' के रूप में मनाया। पूरे प्रकरण पर इसी दिन नागपुर में संघ की रैली में डा. हेडगेवार ने अपने विचार प्रकट किए थे। इस आकर्षक रैली में 800 स्वयंसेवक गणवेश में और हजारों लोग उपस्थित थे। उन्होंने कहा कि 'सबको पता है कि आजकल मध्यप्रांत की सरकार का दमनचक्र तेजी से घूम रहा है और इसका उदाहरण है संघ के विरुद्ध यह सर्कुलर। यह अलग बात है कि वे संघ को नुकसान पहुंचाने में विफल रहे हैं। जब कौंसिल में बहस हो रही थी तब मैं बहस सुनने के लिए उपस्थित था। बहस के दौरान गृहमंत्री राव ने आरोप लगाया कि संघ हिटलर एवं नाजीवाद का समर्थक है। परंतु पूरी बहस के दौरान गृहमंत्री और मुख्य सचिव यह साबित नहीं कर पाए कि मैंने अथवा संघ के किसी उत्तरदायी कार्यकर्त्ता ने हिटलर अथवा नाजीवाद के संबंध में कोई भी बात कही है। मुझे लगता था कि सरकार के पास अपने आरोपों को सत्य साबित करने के लिए झूठा साक्ष्य होगा। ... प्रश्नोत्तर काल के दौरान भी मुझे शंका थी कि सरकार मुझे नाजीवाद का समर्थक साबित करने हेतु झूठे साक्ष्यों का उपयोग कर सकती है। लेकिन सरकार के पास ऐसा कोई साक्ष्य नहीं था और संघ बिना किसी दाग के निष्कलंक बनकर उभरा है।'

फिर डा. हेडगेवार ने अपने उस भाषण की चर्चा की जिसको सरकार ने उनके नाजीवाद के समर्थक होने के साक्ष्य के रूप में तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत किया था। उन्होंने कहा :

'श्री राव ने मेरे एक भाषण के एक वाक्य 'हिंदुस्थान हिंदुओं का देश है' को उद्धृत करके उसे 'आपत्तिजनक' एवं 'हिटलरवादी मानसिकता' की संज्ञा दी। हिंदुस्थान हमेशा हिंदुओं का देश रहेगा जैसे ब्रिटेन ब्रिटिशों, फ्रांस फ्रेंच, जर्मनी जर्मनवासियों और अफगानिस्तान अफगानों का है। उसी तरह हिंदुओं का राष्ट्र हिंदुस्थान है। संघ कोई गुप्त संगठन नहीं है। संघ के सभी कार्यक्रम खुले आसमान के नीचे होते हैं। लेकिन सरकार की नीति तो यह है कि किसी को

1. द इंडियन एनुअल रजिस्टर, खंड-1, जनवरी-जून 1934, पृष्ठ 240

दोषी घोषित करके उसे फांसी पर लटका दो। और इसी सिद्धांत का अनुसरण करते हुए उसने संघ को 'सांप्रदायिक' एवं 'आपत्तिजनक' संगठन घोषित किया था। वास्तव में सरकार का उद्देश्य तो संघ को कुचलना था। कोलते के कटौती प्रस्ताव के जवाब में सरकार ने 1932 में अपने द्वारा उठाए गए कदम के लिए 1933 में मोरोपंत जोशी एवं डा. मुंजे द्वारा दिए गए भाषणों को आधार बनाया। ऐसा प्रतीत होता है कि सरकार को एक साल पूर्व ही यह भान हो गया था कि जोशी और मुंजे इस प्रकार के भाषण देने वाले हैं। सरकारी रिकार्ड संघ की स्थापना 1925 के स्थान पर 1918 में बताता है। सरकार यह दावा करती है कि उस समय नागपुर में सांप्रदायिक संघर्ष हुआ था। उस वक्त न तो संघ अस्तित्व में था, न ही हिंदुओं एवं मुस्लिमों के बीच कोई सांप्रदायिक झगड़े हुए थे। यह सब सरकार के बौद्धिक दिवालियेपन का परिचायक है।'[1]

इस सभा में नागपुर एवं प्रांत के अनेक वरिष्ठ लोग उपस्थित थे। इनमें एस.बी. तांबे, रमाबाई तांबे, टी.एच. केदार, ना.भा. खरे, एम.एस. अणे एवं विश्वनाथराव केलकर प्रमुख थे। अणे ने इस अवसर पर सरकार पर व्यंग्य करते हुए कहा कि 'ऐसा लगता है कि सरकार की भविष्य-पुराण में महारत है।'

डा. हेडगेवार ने इस घटना के नागपुर में हुए असर के बारे में एक पत्र में 16 मार्च 1934 को लिखा था कि 'गत 15 दिन नागपुर शहर को हिला देने वाले एवं खलबली भरे सिद्ध हुए। लोग हर जगह संघ के बारे में ही बातचीत करते हुए सुनाई पड़ते थे। प्रत्यक्ष सरकारी अधिकारियों को छोड़कर सभी लोगों ने, जिनमें सरकार द्वारा मनोनीत मुसलमान, पारसी, गैर ब्राह्मण आदि सभी सदस्य शामिल थे, संघ विषयक कटौती प्रस्ताव के समर्थन में मत प्रकट किए। इतना ही नहीं, मुसलमान एवं पारसी सदस्यों ने संघ की प्रशंसा में भाषण किए। इस प्रकार मध्यप्रांत की कौंसिल में संघ ने अभूतपूर्व विजय प्राप्त की। ... बाबा साहब खापर्डे ने ठीक ही कहा है कि—'सरकार ने सर्कुलर जारी करके संघ को अपरिमित लाभ पहुंचाया है, संघकार्य की वृद्धि में सहयोग किया है।'[2]

सरकार को इस बात का आभास हो गया कि संघ की नींव मजबूत है एवं इसके संस्थापक भले ही दिन-प्रतिदिन की राजनीति से निर्लिप्त हैं परंतु

---

1. महाराष्ट्र, 21 मार्च 1934, पृ. 4
2. हेडगेवार पेपर्स, डा. हेडगेवार द्वारा काशीनाथ लिमये को लिखा पत्र, 16 मार्च 1934

उनका महत्वाकांक्षा रहित सार्वजनिक जीवन भिन्न-भिन्न धड़ों में बंटे राष्ट्रवादियों को संगठित करने में पूर्णतः सक्षम है। इस सर्कुलर से सरकार द्वारा मुस्लिमों को प्रसन्न करने की नीति भी धराशायी हो गई क्योंकि प्रांत के सबसे लोकप्रिय मुस्लिम नेता ने ही संघ के प्रति अपनी सद्भावना प्रकट की एवं इसके संप्रदाय-निरपेक्ष चरित्र का प्रमाणपत्र दिया।

व.ण. शेंडे ने लिखा है कि 'हमारा यह संघ सब प्रकार की अग्निपरीक्षाओं से बाहर निकलकर अधिकाधिक दीप्तिमान ही मालूम पड़ने लगा। ... संघ के सारे शत्रु एवं प्रच्छन्न टीकाकार हतबल हो गए। संघ की विचारधारा एवं कार्यपद्धति सारे संकटों का मुकाबला कर सकने के लिए पूर्णरूपेण समर्थ सिद्ध हुई। तदनंतर संघ का विस्तार अन्य प्रांतों में भी सपाटे से होने लगा।'[1] डा. हेडगेवार के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए उन पर प्रकाशित पहली पुस्तक में शेंडे ने उनकी सैद्धांतिक दृढ़ता और दूरदृष्टि के संबंध में आगे लिखा है —

'तत्वविषयक यत्किंचित् भी समझौता नहीं करना था। सामने कार्यक्षेत्र रूपी विशाल समुद्र में नाना प्रकार के झंझटों, जटिल समस्याओं, विकट प्रसंगों एवं आंदोलन के भयंकर तूफान उठ रहे थे। ऐसी विकट एवं प्रतिकूल स्थिति में भी संघ रूपी नाव को रास्ते में मिलने वाले टीलों तथा भंवरों से बचाते हुए सुरक्षित रीति से खे ले जा सकने वाले डा. साहब सदृश कुशल कर्णधार के होते हुए, फिर भला कौन उसके प्रगति पथ को अवरुद्ध कर सकता था?'[2]

---

1. व.ण. शेंडे, परमपूजनीय डा. हेडगेवार, तृतीय आवृत्ति 1943, पृ. 21
2. वही

संघ बनाम साम्राज्यवाद

सन 1933-34 के बाद संघ के प्रति दृष्टिकोण में सर्वत्र परिवर्तन होने लगा था। इसकी क्षमता के बारे में सरकार एवं संघ के शुभचिंतकों के अलग-अलग दृष्टिकोण सामने आने लगे थे। मध्यप्रांत सरकार की संघ विरोधी योजना की विफलता के बाद के वर्षों में संघ का विस्तार तेजी से प्रांत एवं प्रांत के बाहर हुआ था। अत: केंद्र सरकार संघ को 'ठोस खतरा' मानकर प्रांतों को इसके संबंध में निर्देश जारी करने एवं इसकी वृद्धि रोकने के लिए योजना बनाने के काम में जुट गई थी। 1934 से 1940 का काल संघ एवं साम्राज्यवाद के बीच संघर्ष का काल था। इसी समय संघ का विस्तार भी राष्ट्रीय स्तर पर हुआ था।

सविनय अवज्ञा आंदोलन के बाद राष्ट्रीय राजनीति में ठहराव आ गया था। डा. हेडगेवार ने इस काल का उपयोग संघ की संगठन शक्ति पर्याप्त मात्रा में बढ़ाने के लिए किया था। वह इसे अखिल भारतीय संस्था बनाकर आगे के साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन में इसकी भागीदारी एवं नेतृत्व को सुनिश्चित करना चाहते थे। अपने प्रयास में वह बहुत कुछ सफल रहे परंतु असामयिक मृत्यु ने उनकी महत्वपूर्ण भूमिका से समकालीन राष्ट्रीय राजनीति को वंचित कर दिया। 1940 में उनकी मृत्यु के वर्ष संघ की स्थिति पर सरकार की रिपोर्ट में कहा गया था : 'कांग्रेस एवं इससे संबद्ध स्वयंसेवी संस्थाओं के बाद संघ भारत का सबसे बड़ा एवं कुशल स्वयंसेवी संगठन है; संख्या एवं महत्व के आधार पर कांग्रेस के बाद रा.स्व.संघ का स्थान है।'[1]

1930 के बाद धीरे-धीरे संघ के बारे में भ्रांतियों का भी अंत होने लगा था। शेंडे ने लिखा है कि 'आरंभ में कई दिनों (वर्षों) तक तो अनेक सच्चे हितचिंतकों के मन में भी संघ के विषय में भिन्न-भिन्न कल्पनाएं थीं। बहुत-से लोगों को संघ केवल एक अखाड़ा मालूम पड़ता था, दूसरों को सेवा समिति तथा स्काउट का पथक। अनेक सज्जनों ने अपनत्व के अधिकार तथा आग्रह द्वारा सभा, सम्मेलन, विवाहोत्सव एवं जुलूसों की शोभा बढ़ाने के लिए

---

1. फाइल नं. 4/1/40 गृह राजनीतिक (I) पृ. 1, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली

स्वयंसेवक तथा संघ के बैंड तक को मांगने में कमी नहीं की। कितने बुद्धिमान लोग तो संघ को गोला-बारूद तथा शस्त्रास्त्रों को एकत्रित करने वाले क्रांतिकारियों का एक दल ही समझ बैठे थे। डाक्टर साहब को संघ के यथार्थ स्वरूप के विषय में यह भयंकर अज्ञान देखकर अत्यधिक दुख हुआ करता था। अनेक बार ऐसे लोगों पर उन्हें दया आती थी, कभी-कभी उनके इस अज्ञान पर वह हंसा करते थे।' शेंडे ने हिंदू राष्ट्रवादियों, विशेषकर महासभा, एवं साम्राज्यवादियों की संघ के उद्देश्यों की समझ के प्रति इशारा करते हुए लिखा है: 'परंतु दुर्दैव से संघ क्या है, वह कौन से कार्य को करने के लिए पैदा हुआ है—यह ठीक रीति से समझने के लिए संघ के अनिष्ट चिंतकों की अपेक्षा इष्ट चिंतकों को ही अधिक समय लगा। इसे हिंदुस्थान का दुर्दैव ही कहना चहिए।'[1]

संघ के विस्तार में सबसे बड़ी अड़चन इस काल में सबसे पहले मध्य प्रांत की व्यायामशालाओं से हुई। वे संघ को प्रतिद्वंद्वी संस्था मानकर इसकी वृद्धि से प्रसन्न नहीं थे। कभी-कभी वे संघ शाखाओं को रोकने के लिए हिंसक रास्ते भी अपनाते थे। इन व्यायामशालाओं की एक समान शिकायत यह थी कि संघ के कारण उनके यहां उपस्थिति कम होती जा रही है।[2] डा. मुंजे ने समकालीन स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा था कि 'वे संघ से ईर्ष्या करते थे तथा डा. हेडगेवार के संबंध में अच्छी धारणा नहीं रखते थे।' 1930-31 तक व्यायामशालाओं के कर्ता-धर्ताओं को पता चल गया था कि संघ व्यायामशाला या अखाड़ा नहीं है। 1929 में कांग्रेसी नेता तेजराम ने प्रताप व्यायामशाला के वार्षिक समारोह के उद्घाटन भाषण में कहा था कि 'व्यायामशालाओं की स्थापना सिर्फ शारीरिक प्रशिक्षण देने के लिए हुई है। इसके पीछे कोई नैतिक अथवा सैद्धांतिक पृष्ठभूमि नहीं है और इसी आधार पर संघ व्यायामशालाओं से भिन्न है।'

चार साल बाद दूसरे प्रमुख कांग्रेसी नेता जमनालाल बजाज ने भी इस मत का समर्थन करते हुए कहा था कि 'बिना नैतिक एवं सैद्धांतिक पृष्ठभूमि के, शक्ति का समाज के हित में उपयोग नहीं किया जा सकता है।' संघ का विस्तार मध्यप्रांत में तेजी से हो रहा था और दूसरे प्रांतों में भी संघ धीरे-धीरे फैल रहा था। 1935 में संघ के नागपुर शीतकालीन कैंप में 1500 स्वयंसेवक आए थे।

---

1. फाइल नं. 4/1/40 गृह राजनीतिक (I) पृ. 20, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली
2. जी. वी. देशमुख, कालसमुद्रांतील रत्नें, वीना प्रकाशन, नागपुर, पृ. 159

स्वयंसेवक तथा संघ के बैंड तक को मांगने में कमी नहीं की। कितने बुद्धिमान लोग तो संघ को गोला-बारूद तथा शस्त्रास्त्रों को एकत्रित करने वाले क्रांतिकारियों का एक दल ही समझ बैठे थे। डाक्टर साहब को संघ के यथार्थ स्वरूप के विषय में यह भयंकर अज्ञान देखकर अत्यधिक दुख हुआ करता था। अनेक बार ऐसे लोगों पर उन्हें दया आती थी, कभी-कभी उनके इस अज्ञान पर वह हंसा करते थे।' शेंडे ने हिंदू राष्ट्रवादियों, विशेषकर महासभा, एवं साम्राज्यवादियों की संघ के उद्देश्यों की समझ के प्रति इशारा करते हुए लिखा है: 'परंतु दुर्दैव से संघ क्या है, वह कौन से कार्य को करने के लिए पैदा हुआ है—यह ठीक रीति से समझने के लिए संघ के अनिष्ट चिंतकों की अपेक्षा इष्ट चिंतकों को ही अधिक समय लगा। इसे हिंदुस्थान का दुर्दैव ही कहना चहिए।'[1]

संघ के विस्तार में सबसे बड़ी अड़चन इस काल में सबसे पहले मध्य प्रांत की व्यायामशालाओं से हुई। वे संघ को प्रतिद्वंद्वी संस्था मानकर इसकी वृद्धि से प्रसन्न नहीं थे। कभी-कभी वे संघ शाखाओं को रोकने के लिए हिंसक रास्ते भी अपनाते थे। इन व्यायामशालाओं की एक समान शिकायत यह थी कि संघ के कारण उनके यहां उपस्थिति कम होती जा रही है।[2] डा. मुंजे ने समकालीन स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा था कि 'वे संघ से ईर्ष्या करते थे तथा डा. हेडगेवार के संबंध में अच्छी धारणा नहीं रखते थे।' 1930-31 तक व्यायामशालाओं के कर्ता-धर्ताओं को पता चल गया था कि संघ व्यायामशाला या अखाड़ा नहीं है। 1929 में कांग्रेसी नेता तेजराम ने प्रताप व्यायामशाला के वार्षिक समारोह के उद्घाटन भाषण में कहा था कि 'व्यायामशालाओं की स्थापना सिर्फ शारीरिक प्रशिक्षण देने के लिए हुई है। इसके पीछे कोई नैतिक अथवा सैद्धांतिक पृष्ठभूमि नहीं है और इसी आधार पर संघ व्यायामशालाओं से भिन्न है।'

चार साल बाद दूसरे प्रमुख कांग्रेसी नेता जमनालाल बजाज ने भी इस मत का समर्थन करते हुए कहा था कि 'बिना नैतिक एवं सैद्धांतिक पृष्ठभूमि के, शक्ति का समाज के हित में उपयोग नहीं किया जा सकता है।' संघ का विस्तार मध्यप्रांत में तेजी से हो रहा था और दूसरे प्रांतों में भी संघ धीरे-धीरे फैल रहा था। 1935 में संघ के नागपुर शीतकालीन कैंप में 1500 स्वयंसेवक आए थे।

1. फाइल नं. 4/1/40 गृह राजनीतिक (I) पृ. 20, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली
2. जी. वी. देशमुख, कालसमुद्रांतील रत्नें, वीना प्रकाशन, नागपुर, पृ. 159

'मेरा आपका कुछ भी परिचय न होते हुए भी ऐसी कौन-सी बात है, जिसके कारण मेरा ह्रदय आपकी तरफ और आपका मेरी ओर दौड़ पड़ता है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की विचारधारा ही ऐसी प्रभावशालिनी है कि जिन स्वयंसेवकों का आपस में परिचय तक नहीं है, वे भी एक-दूसरे की ओर देख स्मित हास्य करते ही एक-दूसरे को पहचान लेते हैं।... भाषा भिन्नता अथवा आचार भिन्नता होते हुए भी पंजाब, बंगाल मद्रास, बंबई, सिंध आदि प्रांतों के स्वयंसेवक एक-दूसरे से क्यों इतना प्रेम करते हैं? केवल इसलिए कि वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के घटक हैं।... वह सुवर्ण दिन जरूर आने वाला है जबकि समस्त भारतवर्ष संघमय दृष्टिगोचर होगा। फिर सारे संसार में ऐसी कोई भी शक्ति नहीं होगी जो हिंदू जाति की ओर तिरछी नजर से देखने का साहस करे। हम किसी पर आक्रमण करने नहीं चले हैं। परंतु हमें दक्ष (सावधान) रहना ही होगा जिससे हम पर किसी प्रकार का आक्रमण न हो।

'तन-मन-धन के साथ संघ का कार्य करने के लिए अपने दृढ़ निश्चय को अंखंडित रूप से जाग्रत रखिए। रोज सोते समय यह सोचते जाइए कि आज मैंने क्या काम किया है। यह ध्यान में रखिए कि केवल संघ का कार्यक्रम ठीक रूप से करने या प्रतिदिन नियमित रूप से संघ स्थान पर उपस्थित रहने से ही संघ कार्य पूरा नहीं हो सकता। हमें तो आसेतु हिमालय पर्यंत फैले हुए इस विराट हिंदू समाज को संगठित करना है। सच्चा महत्वपूर्ण कार्यक्षेत्र तो संघ से बाहर बसने वाला हिंदू जगत ही है। संघ केवल स्वयंसेवकों के लिए नहीं; संघ के बाहर जो लोग हैं, उनके लिए भी है। हमारा यह कर्तव्य हो जाता है कि इन लोगों को राष्ट्र की उन्नति का सच्चा मार्ग बताएं और यह मार्ग केवल संगठन का है। हिंदू जाति का अंतिम कल्याण संगठन के ही द्वारा हो सकता है।'

डा. हेडगेवार ने अपने अंतिम भाषण में हिंदू संगठन के सकारात्मक राष्ट्रीय उद्देश्य का प्रतिपादन करके पूरे हिंदू समाज को संगठित करने का लक्ष्य सामने रखा था। संघ की लोकप्रियता इन वर्षों में तेजी से बढ़ रही थी। इसका प्रमाण इसके कार्यक्रमों में प्रशिक्षित स्वयंसेवकों के अतिरिक्त उपस्थित जनसमुदाय से लगाया जा सकता है। नागपुर में 30 दिसंबर 1938 को इसके समारोह के समापन में 10 से 15 हजार लोग उपस्थित थे।[1]

---

1. केसरी, 5 जनवरी 1939

संघ कार्य के विस्तार में डा. हेडगेवार ने योजनाबद्ध तरीके से कार्य किया था। संगठन को वाह्य हस्तक्षेप से मुक्त रखते हुए उन्होंने समकालीन हिंदूवादी नेताओं की भरपूर सहायता ली थी। वह इस बात से परिचित थे कि बड़े लोगों के मन में आकांक्षाएं तो हैं परंतु उनकी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा एवं जीवन की सीमाएं उन्हें सर्वसाधारण के बीच निरंतर परिश्रमपूर्वक संगठन के लिए कार्य करने में बाधक हैं। अत: इन बड़े नामों का उपयोग संघ अपने विस्तार और सभा की अध्यक्षता के लिए करता रहा। उन्होंने संघ के प्रचारक दादाराव परमार्थ को 27 अगस्त 1934 को पत्र लिखकर उनसे आग्रह किया था—

'बंबई जाने के बाद तुम्हें चाहिए कि डा. सावरकर जी (नारायण राव) और गोपालराव जी को साथ लेकर बैरिस्टर जयकर से मिलने के लिए जाएं और बैरिस्टर साहब को नागपुर के दशहरा महोत्सव में अध्यक्ष पद विभूषित करने का आग्रहपूर्वक अनुरोध करें।'

1933-34 के बाद से बड़ी संख्या में राष्ट्रवादियों का संघ शाखाओं एवं कैंपों में आने का सिलसिला शुरू हो गया था। संघ को सरकार द्वारा अलग-थलग करने एवं हिंदूवादी संगठनों द्वारा तटस्थ भाव से इसकी आलोचना एवं दुष्प्रचार का कार्य करने—इन दोनों बातों का प्रतिकार इस प्रकार के लोकसंपर्क से तो होता ही था, संघ के प्रति मिथ्या प्रचार से बनी गलत धारणाओं को भी खत्म करने में सहायक होता था।

23 अगस्त 1934 को नागपुर की संघ शाखा में 'केसरी' के संपादक एन. सी. केलकर आए थे। उनका भाषण हुआ। डा. हेडगेवार ने लिखा था कि 'केलकर का नागपुर की शाखा में पदार्पण पहली बार हुआ था। उनका आगमन एकदम अनपेक्षित था। शाखा के कार्यक्रम से वह अत्यंत प्रभावित हुए दिखाई दिए और बातचीत में उन्होंने इस बात को स्वीकार भी किया।'

अकोला से प्रकाशित 'प्रजापक्ष' के संपादक गोपालराव चितले तो डा. हेडगेवार के अनन्य अनुयायी बनकर संघ कार्य से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ गए थे। संघ के कार्यक्रमों एवं सिद्धांतों का प्रतिपादन अनेक प्रमुख समाचार-पत्रों के संपादकों ने करना शुरू कर दिया था। 'केसरी', 'महाराष्ट्र, 'मराठा', 'ज्ञानप्रकाश', 'सावधान, 'दीनमित्र', 'प्रजापक्ष', 'काल' आदि प्रमुख हैं। 'दीनमित्र' के संपादक राव साहब मुकुंद भी केलकर एवं ओगले की तरह संघ

के कार्यक्रमों में उपस्थित रहने लगे थे। परंतु कुछ ऐसे भी पत्र थे जिनका उद्देश्य संघ का मनगढ़ंत विरोध करना था। इनमें 'नवयुग' एवं 'मातृभूमि' प्रमुख थे। केलकर एवं हिंदू महासभा के नेता ल.ब. भोपटकर संघ के कार्यक्रमों में अनेक स्थानों पर बुलाए जाने लगे थे।

1934 में संघ के कार्य को राष्ट्रीय स्तर पर मजबूत करने का डा. साहब का संकल्प इस पत्र से प्रकट होता है। उन्होंने 15 अगस्त 1934 को लिखा था कि 'नागपुर में संपन्न हुए ग्रीष्मकालीन वर्ग के अंतिम दिनों में वर्ग को देखने आए संघचालकों की बैठक हुई। इस बैठक में प्रत्येक जिले की हर तहसील में कम से कम दस शाखाएं प्रस्थापित होनी चाहिए, ऐसा तय हुआ। और तदनुसार लोग काम में जुट गए हैं। ... संघ कार्य ऐसा नहीं है कि जो विलंब से, यथावकाश किया जाए। अपना पूर्ण महाराष्ट्र यथाशीघ्र सुसंगठित करके और कार्य का यही मॉडल अन्य प्रांतों के सम्मुख रखकर आगामी पांच-दस वर्ष की कालावधि में हमें संपूर्ण हिंदुस्थान सुसंगठित करना है।'

डा. हेडगेवार स्वयं अन्य प्रांतों का दौरा करने लगे। संघ के प्रचारकों को मध्यप्रांत से देश के दूसरे भागों में—जिनमें संयुक्त प्रांत, दिल्ली, अजमेर मारवाड़, पंजाब, मद्रास प्रमुख थे—भेजा जाने लगा था। उन्होंने इस संबंध में संघ के एक शुभचिंतक को पत्र में लिखा था—

'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का कार्य हमने किसी एक नगर या प्रांत के लिए आरंभ नहीं किया है। अपना अखिल हिंदुस्थान देश यथाशीघ्र सुसंगठित कर संपूर्ण हिंदू समाज को स्वसंरक्षणक्षम एवं बलसंपन्न करने के उद्देश्य से इसे प्रारंभ किया गया है।... एकाध नगर में पांच-दस बच्चों के एकत्र होकर खेलने मात्र से यह काम होने वाला नहीं है। इसके लिए आप जैसे ख्यातिप्राप्त समाज के प्रमुख लोगों द्वारा कार्यक्षेत्र में पदार्पण करके कार्यवृद्धि की जोरदार लहर निर्माण करने की आवश्यकता है।'

संघ का राजनीतिक स्तर पर भी विरोध हो रहा था। कांग्रेस, सोशलिस्ट एवं महासभा के अनेक नेता संघ से प्रसन्न नहीं थे। डा. हेडगेवार इन विरोधों को गंभीरतापूर्वक नहीं लेते थे। बनारस में सोशलिस्टों द्वारा उनके विरुद्ध किए गए दुष्प्रचार पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने 30 अक्टूबर 1930 को लिखा था—'मेरे बनारस जाने के एक दिन पूर्व ही वहां के हिंदू विश्वविद्यालय के कुछ छात्रों

ने पत्रक प्रकाशित कर वितरित किया था। पत्रक से हम क्रोधित होंगे और हमारे कार्य में बाधा होगी—ऐसा वे सोचते थे। मेरे वहां पहुंचते ही वहां के संघ के लोगों ने उन सोशलिस्ट लोगों द्वारा प्रस्तुत किया गया पत्रक दिखाया। अपनी हमेशा की नीति के अनुसार उस पत्रक को अनदेखा और उपेक्षित करने के लिए मैंने अपने सब लोगों से कहा।'

डा. हेडगेवार ने सार्वजनिक जीवन से जुड़े किसी भी व्यक्ति के प्रति बिना पूर्वाग्रह के, उन्हें संघ के कार्यक्रमों में आमंत्रित किया था। ठेंगड़ी की पुस्तक 'कृतज्ञ स्मरण' में ऐसे लोगों की सूची दी गई है जो संघ के सहयोगी थे। ये सभी जातियों, वर्गों एवं विचारधाराओं से जुड़े हुए थे। जब कांग्रेस के लोग संघ का विरोध कर रहे थे तब डा. हेडगेवार ने महाराष्ट्र के प्रमुख कांग्रेसी नेता प्रो. एम.बी. जोगलेकर को अक्टूबर 1935 में मध्यप्रांत के गोंदिया में कैंप के उद्‌घाटन के लिए आमंत्रित किया था। जोगेलकर ने अपने भाषण में कहा था कि 'मैं एक कांग्रेसी हूं। संघ के साथ मेरे मतभेदों के बावजूद मुझे इसकी राष्ट्र के प्रति भक्ति एवं प्रतिबद्धता पर लेश मात्र भी संदेह नहीं है। संघ युवकों को राष्ट्र के उत्थान एवं कल्याण के लिए प्रशिक्षित एवं प्रेरित करता है।'[1] न.व. गुणाजी, दादासाहब मावलंकर, नानासाहब सरदेसाई, गोवर्धनदास गोकुलदास, आर.एन. कनितकर, नानासाहब दाते, हालाजी पंत हिरदा, दादासाहब नवरे, बालवेकर, कमलाबाई आदि मध्यप्रांत एवं महाराष्ट्र के कांग्रेसी नेताओं ने संघ के कार्यक्रमों में आकर इसके राष्ट्रवादी चरित्र की प्रशंसा की थी।[2] जिन-जिन प्रांतों में संघ के विस्तार की योजना बनती थी, उन-उन प्रांतों के प्रमुख व्यक्तियों को नागपुर के वर्धा, पूना इत्यादि संघ के मजबूत केंद्रों पर उत्सवों तथा कार्यक्रमों की अध्यक्षता के लिए निमंत्रित किया जाता था। फिर उनके संबंधों का उपयोग संघ के प्रचारक आरंभिक तौर पर कार्य के विस्तार में करते थे। जयकर, जमुनादास मेहता, सार्जेंट संजीव कामथ, सार्जेंट बी.सी. चटर्जी, गोकुलचंद नारंग, डा.पी. वरदराजलु नायडू और मदन मोहन मालवीय संघ के कार्यक्रमों में अध्यक्ष पद पर आसीन हुए एवं संघ के कार्यों में अप्रत्यक्ष मदद की।

डा. हेडगेवार के संगठन कौशल का यह जीवंत उदाहरण है। वह संघ कार्य में सबका सहयोग तो लेते थे, परंतु किसी स्तर पर इसके सिद्धांतों की

---

1. केसरी, 11 अक्टूबर 1938
2. सभी 'महाराष्ट्र' एवं 'केसरी' में प्रकाशित समाचारों पर आधारित

पवित्रता अथवा संगठन की स्वायत्तता पर किसी भी प्रकार का समझौता नहीं करते थे। उनका मत था कि राष्ट्र का कार्य एक पवित्र मार्ग है और उसका पथिक ही राष्ट्र का असली पुजारी है। उन्होंने कहा था : 'विशिष्ट व्यक्ति के भरोसे संघ चलता है, यह घमंड कोई न करे। संघ किसी एक व्यक्ति का काम न होकर, समुदाय-विशेष का काम है। इस कार्य को करने के लिए तरुण एवं वृद्ध लोगों को अपनी इच्छा से आगे बढ़ना चाहिए। संघ ने क्या किया—ऐसा प्रश्न करने वालों से मैं उल्टा प्रश्न करूंगा कि आप संघ के लिए क्या करने को तैयार हैं।'

डा. हेडगेवार एवं द्वितीय विश्वयुद्ध

द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व डा. हेडगेवार अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के घटनाचक्र का सूक्ष्म रूप से अध्ययन कर रहे थे। प्रथम विश्वयुद्ध के समय उन्होंने क्रांति की योजना को मूर्त्त रूप देने का प्रयास किया था परंतु व्यापक सहयोग न मिलने के कारण इसे वह क्रियान्वित नहीं कर पाए थे। साम्राज्यवाद के विरुद्ध सफल क्रांति के लिए वह दो बातों का होना आवश्यक मानते थे—प्रथमत:, समर्पित नौजवानों का संगठन और दूसरा वाह्य घटनाचक्र (अंतर्राष्ट्रीय राजनीति) में साम्राज्यवादी ताकत का ध्यान केंद्रित रहना। यही कारण है कि संगठन को राष्ट्रीय स्वरूप देने एवं मजबूत बनाने में उन्होंने दिन-रात एक कर दिए। परतंत्रता उन्हें चुभती थी। अत: वह कहा करते थे कि 'याचि देही याचि डोका' (इसी शरीर से एवं इन्हीं आंखों के सामने) भारत को स्वतंत्र करना चाहते हैं।

जैसे-जैसे विश्व युद्ध की ओर बढ़ रहा था, वैसे-वैसे डा. हेडगेवार की चिंता बढ़ रही थी। वह इस अवसर को हाथ से निकलने नहीं देना चाहते थे। उनकी बेचैनी संगठन को अधिक से अधिक सशक्त बनाने की थी। उनका मत था कि 'हिंदू राष्ट्र' का भविष्य वर्तमान पर आधारित है। 1939 में उन्होंने अपने भाषण में निम्न उद्‌गार व्यक्त किए थे :

'संघ की आयु चौदह साल की हो चुकी है। इस समय के अंदर हमने जो कुछ भी कार्य किया है, उसको हम सब लोग अच्छी तरह से जानते हैं। हमारे सामने जो बड़ी-बड़ी बाधाएं हैं, उनका विचार करने पर यह दिखाई देता है कि संपन्न किया गया हमारा कार्य भी उनके परिमाण में अवश्य बड़ा है। प्रारंभ में हम लोग इस निश्चय पर पहुंच चुके थे कि यदि हिंदुस्थान हिंदुओं का देश

है तो उसके उद्धार की पूरी ज़िम्मेवारी हम हिंदुओं के सिर पर है। घर हमारा है अत: उसके प्रति अपनी जिम्मेवारी को हम किसी भी अवस्था में टाल नहीं सकते। यह आशा व्यर्थ है और अनुचित भी है कि बाहरी लोग, जिन्हें इस देश के विषय में न भक्ति है न प्रेम, हमारी कुछ मदद करेंगे। फिर जब केवल हमें ही अपना उद्धार करना है तब संगठन के सिवा दूसरा कोई चारा ही नहीं रहता।'

उन्होंने आत्मालोचन करते हुए कहा : 'चौदह साल से हम लोग काम कर रहे हैं। यह अवधि कम नहीं कही जा सकती। हमें यह सोचना चाहिए कि क्या हम अपने उद्देश्य के कहीं आसपास में भी पहुंचे हैं। यह तो ठीक है कि इन चौदह सालों में हमारे कार्य का विस्तार भारतवर्ष के पंजाब, बंगाल, बिहार आदि कई प्रांतों में किया गया है और मध्यप्रांत एवं बंबई इलाके के हर एक जिले और तहसील में हमारी शाखाएं सुचारु रूप से चल रही हैं। ... मैं बार-बार दोहराता हूं कि आप अपने आदर्श को सामने रखते हुए आज की हमारी गति एवं प्रगति का विचार कीजिए। हमने कितनी प्रगति की है? हमारी जितनी प्रगति होनी चाहिए, उसकी तुलना में हम कहां हैं? हम कितने पिछड़े हुए हैं?'

उन्होंने तत्कालीन राजनीति एवं साम्राज्यवाद के खिलाफ क्रांति की महत्वाकांक्षा को सामने रखकर खुलकर संघ की योजना के प्रति इशारा किया था: 'अपने कार्य की पूर्ति अपनी आंखों से देखने का प्रण संघ ने कर लिया है। .... कई लोग कहते हैं कि कार्य बड़ा कठिन है, उसमें भारी से भारी कठिनाइयां हैं। मैं कहता हूं, कठिनाइयां भले ही हों, हमें तो पहले से ही पता होना चाहिए कि हमारा मार्ग कंटकाकीर्ण है, वहां गुलाब के फूलों की आशा हमने कब की थी? देश को उसका पूर्व गौरव प्राप्त करा देना न तो कोरी गप्पें हैं और न बाजार में मिलने वाली सस्ती चीज। वह एक अत्यंत अमोल रत्न, है जिसे खरीदने के लिए उसकी पूरी-पूरी कीमत देनी पड़ती है, एक पाई भी कम नहीं होती। उसे मोल लेने के लिए सर्वस्व त्याग और परिश्रम तुम्हारे सिवाय और कौन करेगा या कर सकता है? भारत के भाग्यविधाता तुम्हारे सिवाय और कौन हो सकते हैं? यह तो तुम्हें और तुम्हें ही करना होगा।'

उन्होंने स्पष्ट रूप से स्वराज्य प्राप्ति के पथ को संघ का लक्ष्य घोषित किया। स्वराज्य के प्रश्न पर जो लोग धैर्य धारण की बात करते थे उनसे अपनी असहमति व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा था : 'इस कार्य को यदि हम आज न करें, तो भविष्य में हमें सफलता प्राप्त होना असंभव है। हमने तो यह कभी भी

नहीं कहा था कि हम दो दिन या दो महीने में स्वराज्य प्राप्त कर लेंगे। परंतु साथ-साथ हम यह भी नहीं चाहते कि हम पीढ़ियों और सदियों तक काम ही करते रहें और उसका फल कुछ भी न हो। हमारी तो कोशिश है कि हमारे जीते-जी हम अपने उद्देश्य की पूर्ति देख सकें, और यह बिल्कुल उपयुक्त भी है।'

अंत में उन्होंने द्वितीय विश्वयुद्ध के परिणामस्वरूप उत्पन्न स्थिति में संघ की भूमिका पर प्रकाश डाला। ब्रिटेन के युद्ध में शामिल होने से भारत में उसकी कमजोर हुई स्थिति को वह ईश्वर प्रदत्त स्वर्णिम अवसर मानते थे। साम्राज्यवादी संकट भारतीय राष्ट्रवाद के लिए सुअवसर था। उन्होंने कहा—'लोग कहते हैं, आज का समयं भीषण और संकटमय है। किंतु मैं कहूंगा, आज की जैसी सर्वथा अनुकूल परिस्थिति इसके पहले कभी नहीं आई थी। बस यही समय है हम लोगों के लिए जी-जान से काम करने का। इससे बढ़कर अनुकूल समय न कभी इसके पूर्व था न कभी भविष्य में आएगा। जो कुछ ठोस काम करना है, इसी समय पूरी शक्ति लगाकर कर लो। फिर कुछ नहीं बनेगा। चौदह साल से आज तक कभी हमारी हार नहीं हुई, कदम कभी पीछे नहीं हटा, फिर भला इस सुअवसर पर हम कैसे पीछे हट सकते हैं?'

नियति कहें या डा. हेडगेवार का अपने स्वास्थ्य के प्रति घोर उपेक्षा का भाव, वह 1939 में अस्वस्थ रहने लगे। उनकी अस्वस्थता ने उन्हें शारीरिक रूप से पूरी तरह दुर्बल कर दिया था। जो व्यक्ति राष्ट्र को स्वतंत्र करने के लिए संगठन को पूरी तरह से तैयार करने का एक महायज्ञ करता है वह स्वयं असहाय हो जाए, तो उसकी मानसिक पीड़ा का अनुभव संवेदनशील मानव ही कर सकता है। द्वितीय विश्वयुद्ध जब सितंबर 1939 में शुरू हुआ और इसकी लपटों से ब्रिटेन प्रभावित होने लगा तब डा. हेडगेवार का मन भी छटपटा रहा था। संघ के पूर्व सरकार्यवाह एच. वी. कुलकर्णी ने लिखा है—

'द्वितीय विश्वयुद्ध के शुरू होने के बाद डाक्टर जी ने एक दिन रात को मुझे बुलवाया था। वह अर्द्धनिद्रा में लेटे हुए थे, परंतु उनके चेहरे पर गहरी चिंता झलक रही थी। उन्होंने मुझसे यह आशंका प्रकट की थी कि स्वतंत्रता प्राप्त करने का दूसरा स्वर्णिम अवसर भी हम शायद खो देंगे। उन्होंने कहा : 'यह हम सबकी जिम्मेवारी थी कि युद्ध से पहले अपनी यथेष्ट शक्ति का संचय कर लेते। मैंने युद्ध की भविष्यवाणी की थी। परंतु ईश्वर कुछ और ही चाहता है।'

क्रांति का आह्वान

संघ की शाखाओं एवं प्रशिक्षण शिविरों में स्वयंसेवकों को जिस प्रकार की सैद्धांतिक, मानसिक एवं शारीरिक शिक्षा दी जाती थी, उसका एक ही अभिप्राय था- देश को स्वतंत्र करना। क्रांति के सपने को शब्दों एवं भावों से व्यक्त किए बिना उसे और संघ के नेतृत्व को वह मन में संजोकर रखे हुए थे। संघ के नेताओं की क्रांतिकारी पृष्ठभूमि थी। स्वयं डा. हेडगेवार बंगाल के क्रांतिकारी आंदोलन में तो थे ही, संघ के अन्य वरिष्ठ नेताओं का भी इतिहास ऐसा ही था। दादाराव परमार्थ क्रांतिकारी आंदोलन के समर्थक थे। पुलिस ने 1924 में उनके घर की तलाशी ली थी और अनेक 'आपत्तिजनक' सामग्री एवं प्रतिबंधित साहित्य उनके घर से मिला था। 1925 में वह भगतसिंह, राजगुरु एवं सुखदेव से मिले थे और 1927 में वह राजगुरु के साथ क्रांतिकारियों की गुप्त बैठकों में शामिल होते रहते थे। संघ के दूसरे नेता उमाकांत आपटे स्कूल के शिक्षक थे। क्रांतिकारी विचारों का प्रचार करने के कारण उन्हें 1924 से नौकरी से हटा दिया गया था। क्रांतिकारियों के प्रति संघ में सर्वाधिक सहानुभूति रहती थी। जब 1929 में सांडर्स की हत्या के बाद राजगुरु भूमिगत हुए तब नागपुर में डा. हेडगेवार ने अत्यंत सावधानी के साथ उनके छिपकर रहने की व्यवस्था की थी। अगर वह हेडगेवार की सलाह मान लेते और पूना नहीं गए होते तो संभवतः पुलिस के हाथों में पड़ने से बच सकते थे। घोडके ने लिखा है—'भारतीय क्रांतिकारियों एवं संघ के बीच कई बातों में समानता थी। राजगुरु संघ पर क्रांतिकारी प्रभाव के एक उदाहरण के रूप में हैं। डा. हेडगेवार के लिए यह स्वाभाविक बात थी कि उन्होंने राजगुरु को सभी प्रकार की सहायता प्रदान की थी।"[1]

23 मार्च 1931 को जब भगतसिंह और राजगुरु एवं सुखदेव को फांसी की सजा हुई थी तब डा. हेडगेवार का मन विक्षुब्ध था। संघ की शाखाओं में 24 मार्च को विशेष कार्यक्रमों का आयोजन करके उनकी शूरवीरता पर उन्हें श्रद्धांजलि दी गई।

संघ की शाखाओं एवं शिविरों में शिवाजी, समर्थ रामदास, झांसी की रानी, तिलक इत्यादि देशभक्तों एवं देशभक्ति की कहानियां सुनाया जाना एक सामान्य दिनचर्या का अंग बन गया। लेनिन, मैजिनी, गैरीबाल्डी, जोन आफ आर्क, च्यांग

---

1. एच. एम. घोडके, रिवोल्यूशनरी नेशनलिज्म इन वेस्टर्न इंडिया, पृ. 173-74

काई शेक, शिवाजी, तिलक आदि की जीवनियों को पढ़ा जाता था और उन पर चर्चा की जाती थी। देवेंद्र स्वरूप ने लिखा है कि 'डा. हेडगेवार ने क्रांतिकारी तौर-तरीकों को सामाजिक आंदोलन की आड़ में विकसित किया था जिससे इसे ब्रिटेन की नजरों से बचाया जा सके।' यह बात सरकार के गुप्तचर विभाग की रिपोर्ट में भी कही गई थी—

'रा. स्व. संघ दिखने में एक खुला संगठन लगता है परंतु इसमें काफी गोपनीयता बरती जाती है। प्रशिक्षण के दौरान सिर्फ सदस्यों को ही उपस्थित रहने दिया जाता है। यहां तक कि पुलिस अधिकारियों को भी प्रशिक्षण स्थल पर आने की अनुमति नहीं दी जाती है।

'इसके स्वयंसेवक सैन्य तरीकों से प्लाटूनों, कंपनियों और बटालियनों में संगठित किए जाते हैं और कठोर अनुशासन का पालन किया जाता है। उनके गणवेश भी सैनिकों के गणवेशों की तरह हैं।... उन्हें निशानेबाजी का भी अभ्यास कराया जाता है।'[1]

गुप्तचर विभाग इस बात से भी चिंतित था कि प्रशिक्षण का दायित्व भारतीय सेना के एक पूर्व अधिकारी मार्तंड बी. जोग को दिया गया है। 'वंदे मातरम्' गीत एवं अन्य प्रेरक गीतों को शाखा में प्रतिदिन गाया जाता था। इनमें से एक था—'रण बिन स्वतंत्रता कहां मिले?' जिन क्रांतिकारियों की तस्वीरों को प्रशिक्षण शिविरों में लगाया जाता था, उनमें एक राजा महेंद्र प्रताप भी थे। इन बातों का प्रभाव युवा मन पर कैसे नहीं होता? और स्वयंसेवकों का उद्वेग और उत्साह कभी-कभी इतना बढ़ जाता था कि वे डा. हेडगेवार से बिना अनुमति के क्रांतिकारी गतिविधियों में संलग्न हो जाते थे। 1931 में संघ के संगठन में नंबर दो स्थान पर कार्यरत बालाजी हुद्दार को बालाघाट राजनीतिक डकैती षडयंत्र में शामिल होने के कारण ही सजा मिली थी। बालासाहब देवरस सहित अनेक स्वयंसेवकों ने गुप्त संगठन के लिए कार्य करने के लिए कदम बढ़ाया था। नागपुर के एक स्वयंसेवक गोपालराव येरकुंटवार ने बम बनाने का काम शुरू कर दिया और वह इस काम में बुरी तरह घायल भी हो गए थे।[2]

डा. हेडगेवार की 'संगठन के लिए संगठन' की घोषणा के पीछे

---

1. फाइल संख्या 28/8/42 पर गृह राजनीतिक (I), राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली
2. भाऊराव देवरस, केशव स्मरामि सदा (खंड I) पृ. 11-12, सुरुचि साहित्य

साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष की तैयारी ही थी। अक्टूबर 1942 में ग्वालियर के एक कालेज विद्यार्थी स्वयंसेवक की अपने मित्र के नाम लिखी चिट्ठी पुलिस ने गोपनीय तरीके से पढ़ी थी। इसमें उसने लिखा—

'तुम यह सोच रहे होगे कि संघ भारत अथवा विश्व के सभी हिंदुओं को संगठित करेगा... हमारे स्वर्गीय नेता डा. हेडगेवार ने अपनी मृत्यु से पूर्व सभी संगठनकर्ताओं से कहा था कि संघ की सदस्यता का लक्ष्य शहरों एवं ग्रामीण क्षेत्रों में कुल जनसंख्या का क्रमश: 3 प्रतिशत एवं 1 प्रतिशत होना चाहिए। वे सभी सुप्रशिक्षित किए जाने चाहिए। उन्होंने इस बात की भी घोषणा की थी कि 1942 में भारत में एक क्रांति होगी और हमें उसके लिए अवश्य तैयार रहना चाहिए। हम अपनी सदस्यता के लक्ष्य को पूरा करने के बाद स्वराज्य के लिए अपना कदम बढ़ाएंगे। हम लोग 'अहिंसक' बनकर नहीं, बल्कि शस्त्रों के साथ आंदोलन में भाग लेंगे।'[1]

क्रांति की अंतिम आशा

डा. हेडगेवार की मृत्यु 21 जून 1940 को हुई थी। 1939 के अंत से उनके स्वास्थ्य में लगातार गिरावट आ रही थी। वह स्थानीय चिकित्सा एवं प्राकृतिक चिकित्सा पर विशेष रूप से निर्भर थे। उनके तन एवं मन दोनों को विश्राम नहीं था। बल्कि बीमार शरीर में मन की राष्ट्रवादी व्याकुलता और भी बढ़ गई थी। इसी भावना को उनकी मृत्यु के बाद एक कविता के छंदों में व्यक्त किया गया था :

हे मृत्युदेव! जाओ, तुम आज दूर जाओ!
मेरे न पास आओ, मत फांस में फंसाओ!
डर मौत का तनिक भी दिल को नहीं छुएगा,
सूरज टरे भले ही, धीरज नहीं टरेगा।
परदास्य-शृंखला में, हा! बद्ध आज माता!
रोती, पुकारती है, उसका न कोई त्राता॥
मैं रक्त बिंदु अपना प्रतिदिन बहा रहा हूं,
भारत को मुक्त करने संग्राम कर रहा हूं।
अंतिम भी सांस मेरी, हो देश के लिए ही,

1. फाइल संख्या 28/8/42, गृह राजनीतिक (I), राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली

जीते-जी देख लूंगा निज दिव्य ध्येय विजयी॥
फिर तुम खुशी से आओ! हे मृत्युदेव, आओ!
आकर मुझे उठा लो, मेरा शिकार कर लो॥

जिस संघ को बाद में मुस्लिम विरोधी और फासीवादी कहकर इसके विरोधियों ने दुष्प्रचार किया था, उसी संघ की लोकप्रियता, राष्ट्रवादी चरित्र और त्याग करने की क्षमता सूर्य की तरह देदीप्यमान हो रही थी। संघ की क्षमता एवं डा. हेडगेवार का कृतित्व राष्ट्रवादियों में उसी तरह फैल रहा था, जैसे अंधकार के बाद सूर्योदय होता है। नागपुर भारत के पूर्व क्रांतिकारियों, साम्राज्यवाद के खिलाफ मोर्चा बनाने के समर्थक राष्ट्रवादियों की काशी बन चुका था। डा. हेडगेवार के पूज्य एवं पितृतुल्य व्यक्तित्व को सब स्वीकार कर रहे थे। उनका व्यक्तित्व उनकी पैंतीस वर्षों की साधना का परिणाम था तो संघ की तत्कालीन स्थिति उनके द्वारा पिछले पंद्रह वर्षों से अपने शरीर को संगठन यज्ञ में होम कर देने का प्रतिफल थी। देश में चारों तरफ से राष्ट्रवादियों का नागपुर आना शुरू हो गया था। डा. हेडगेवार अस्वस्थ थे, परंतु यह समाचार संघ से बाहर बहुत कम लोगों को मालूम था। अत: आने वाले उनके स्वास्थ्य की स्थिति से बेखबर होकर आशा के साथ आते तो थे, परंतु नियति को कोसते हुए निराशा लेकर वापस लौट जाते थे क्योंकि नागपुर समकालीन राजनीतिक-सामाजिक परिस्थिति में क्रांति का उन्माद रखने वालों के लिए पहला और अंतिम पड़ाव था। सरकारी गुप्तचर विभाग की रिपोर्ट में कहा गया था कि विश्वयुद्ध छिड़ने के बाद सन 1940 के आरंभिक महीनों में देश के भीतर अब तक की सबसे तेज और अद्वितीय गतिविधियां शुरू हो गई थीं।

नागपुर में डा. हेडगेवार के पास सबसे पहले अनुशीलन समिति से जुड़े क्रांतिकारी पहुंचे। त्रैलोक्यनाथ चक्रवर्ती ने लिखा है : 'जब 1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध अवश्यभांवी लगने लगा तब अनुशीलन समिति के सदस्यों ने क्रांति का विचार शुरू कर दिया। वह सुभाष चंद्र बोस से प्रस्तावित सशस्त्र क्रांति के सिलसिले में मिले थे और अंत में निर्णय लिया गया कि श्री बोस के नेतृत्व में क्रांति होगी।'

अनुशीलन नेता देश के विभिन्न भागों में पूर्व क्रांतिकारियों से मिलने गए थे। परंतु स्वयं त्रैलोक्यनाथ चक्रवर्ती नागपुर आए और डा. हेडगेवार से मिलने गए। ढाई दशकों के बाद जब अचानक वह डा. हेडगेवार के सामने 1940 में

आए तब उनको डा. हेडगेवार पहचान नहीं पाए। जब उन्होंने डा. हेडगेवार से कहा कि क्या उन्हें कालीचरण दा की याद है, तब उन्होंने यह सुनते ही चक्रवर्ती को गले लगा लिया।[1] चक्रवर्ती से डा. हेडगेवार की संघ के स्वयंसेवकों की भूमिका को लेकर लंबी वार्ता हुई। वार्ता के उपरांत वह बनारस चले गए।

दूसरे क्रांतिकारी सच्चिदानंद सान्याल भी संघ के साथ 1940 में जुड़ गए और क्रांति के उद्देश्य से वह भी नागपुर विचार-विमर्श के लिए आए थे।

सुभाष चंद्र बोस डा. हेडगेवार से 1927 से ही परिचित थे। 1928 में भी कलकत्ता में दोनों की भेंट हुई थी। बोस संघ से बहुत प्रभावित थे और 21 अक्टूबर 1938 को दूसरे कांग्रेसी नेता शंकर राव देव को पत्र लिखकर युवकों पर संघ के प्रशिक्षण के सकारात्मक प्रभाव की चर्चा की थी। कांग्रेस के अध्यक्ष पद से इस्तीफा देने के बाद उन्होंने डा. हेडगेवार से संपर्क स्थापित करने का कार्य शुरू कर दिया था। बोस के दूत के रूप में संघ के पूर्व सरकार्यवाह (महासचिव) हुद्दार (बालाजी) एवं एक अन्य व्यक्ति—शाह के साथ जुलाई 1939 में डा. हेडगेवार से मिलने नागपुर आए। उस समय वह न्यूमोनिया की बीमारी से उबरने की प्रक्रिया में थे। डा. हेडगेवार ने स्वास्थ्य सुधरने पर भविष्य में सुभाष चंद्र बोस से मिलने के प्रस्ताव को स्वीकार किया। परंतु उनके स्वास्थ्य में गिरावट की प्रक्रिया चलती ही रही। इसी बीच जब वह मृत्युशैया पर अंतिम सांस ले रहे थे तब सुभाष चंद्र बोस उनसे मिलने 20 जून 1940 को नागपुर आए। डा. हेडगेवार के पास कुछ देर बैठने के बाद उन्हें प्रणाम करके वह चले गए।[2] एक महान राष्ट्रवादी का दूसरे राष्ट्रवादी एवं त्याग की साक्षात मूर्ति को यह अंतिम प्रणाम सिद्ध हुआ। अगले ही दिन डा. हेडगेवार ने अपने पार्थिव शरीर का त्याग किया।

साम्राज्यवादी दमन

अलग-अलग प्रांतों एवं स्थानों पर संघ की गतिविधियों में सरकार द्वारा रुकावट पहुंचाई जाने लगी। उदाहरण के तौर पर 8 जनवरी 1934 को राजनीतिक एजेंट ने भोपाल राज्य के राजनीतिक सचिव को जानकारी दी कि संघ गोपनीय ढंग

---

1. त्रैलोक्यनाथ चक्रवर्ती, जेल में तीस साल, पृ. 272-79; अल्फा बीटा प्रकाशन, कलकत्ता
2. हितवाद, 23 जून 1940

से राइफल क्लब चला रहा है। उसने भोपाल राज्य को चेतावनी दी कि किसी भी तरह उसे संघ की गतिविधियों को रोकना चाहिए। मध्यप्रांत में संघ के एक प्रमुख कार्यकर्ता घाटे पर मई 1934 में आपराधिक कानून संहिता की धारा 107 के अंतर्गत अभियोग चलाया गया।

महाराष्ट्र के नासिक जिले के जिलाधिकारी ने 1938 में अपने कर्मचारियों को संघ की गतिविधियों से अलग रखने का आदेश जारी किया। संघ के खिलाफ सूचना देने वाले राजभक्तों को प्रोत्साहित किया जाता था तथा उन्हें सरकारी संरक्षण भी मिलता था। अतः अनेक स्थानों पर लोग सरकार से सुविधाएं लेने के लिए संघ के कार्यक्रमों, सैन्य प्रशिक्षणों की सूचना पुलिस को दिया करते थे। ऐसी ही एक घटना मानवाली गांव में दिसंबर 1940 में घटी जब संघ के प्रशिक्षण शिविर की सूचना गांव प्रधान ने पुलिस को दी। पुलिस इंस्पेक्टर दातार ने पुलिस पार्टी के साथ गांव आकर लोगों को चेतावनी दी कि वे संघ को किसी भी प्रकार से प्रश्रय न दें।

ऐसी घटनाओं का सिलसिला जारी था। परंतु ब्रिटिश सरकार विश्वयुद्ध के समय संघ के संभावित खतरे से डरी हुई थी। अतः जून 1939 में विश्वयुद्ध से ठीक पहले सरकार मध्यप्रांत में आपराधिक कानून संशोधन एक्ट (XIV) की धारा 16 के तहत संघ पर प्रतिबंध लगाने का विचार करने लगी। लेकिन मध्यप्रांत सरकार प्रांत में संघ की ताकत को देखते हुए ऐसा करने से रुक गई। सरकार ने स्थिति का मूल्यांकन किया और पाया कि इस तरह के किसी भी कदम से प्रांत में कानून और व्यवस्था का महा संकट पैदा हो जाएगा। इसलिए प्रांत की सरकार ने अपने सिर से बला टालने के लिए केंद्र सरकार से अनुरोध किया कि वही अखिल भारतीय स्तर पर प्रतिबंध लगाए। तब गृह विभाग ने इस सुझाव को इस आधार पर अस्वीकार कर दिया कि इस प्रकार के प्रतिबंध से मुस्लिम संगठनों पर भी उसका असर होगा।

प्रांतों के साथ लंबे विचार-विमर्श के बाद केंद्र सरकार ने अंततः 5 अगस्त 1940 को भारतीय सुरक्षा अधिनियम के नियम 58 व 59 के अंतर्गत स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा शारीरिक प्रशिक्षण, सैन्य प्रकार की परेड या ऐसी ही अन्य गतिविधियों पर प्रतिबंध लगा दिया। मध्यप्रांत की सरकार ने 7 अगस्त 1940 को केंद्र सरकार को पत्र लिखकर इस आदेश को लागू करने में असमर्थता व्यक्त

की। उसके अनुसार इसका प्रभाव मुख्य रूप से संघ एवं हनुमान व्यायाम प्रसारक मंडल पर होगा एवं इसके परिणामस्वरूप जो भी हिंदू युद्ध की तैयारियों में ब्रिटेन की मदद कर रहे हैं वे संघ के साथ सरकार के टकराव में इस युद्ध तैयारी की प्रक्रिया से पूरी तरह से अलग हो जाएंगे। लेकिन भारत सरकार ने प्रांतीय सरकार के इस व्यवहार से अपनी असंतुष्टि व्यक्त करते हुए आदेश को सख्ती से लागू करने का आग्रह किया।

डा. हेडगेवार की मृत्यु से स्वतंत्रता संग्राम की विभिन्न धाराओं से जुड़े हुए एक राष्ट्रवादी का अंत तो हो गया, परंतु सरकार संघ के संगठित स्वरूप से अंत तक सशंकित एवं आतंकित थी।

डा. हेडगेवार और महात्मा गांधी

आजादी के बाद महात्मा गांधी के प्रति राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के दृष्टिकोण को लेकर राजनीतिक एवं शैक्षणिक—दोनों स्तरों पर लगातार चर्चा होती रही है। महात्मा गांधी एवं उनके दर्शन को भारतीय सामाजिक-राजनीतिक जीवन में 1920 के बाद से केंद्रीय स्थान प्राप्त हुआ। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान वह सर्वाधिक प्रभावशाली एवं लोकप्रिय नेता रहे हैं। स्वतंत्रता आंदोलन पर उनकी जीवन-दृष्टि की अमिट छाप थी। औपनिवेशिक भारत में सिद्धांतों के आधार पर कांग्रेस एवं कांग्रेस के बाहर अनेक छोटे-बड़े आंदोलनों का जन्म हुआ। इन आंदोलनों की अपनी-अपनी दृष्टि थी और इसके संस्थापकों के जीवन-दर्शन, सैद्धांतिक पहचान और कार्यक्रमों ने तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक वातावरण को कमोबेश प्रभावित किया था।

महात्मा गांधी की इन आंदोलनों एवं संगठनों तथा उनके प्रवर्तकों के प्रति क्या राय थी और गांधीजी के प्रति उन आंदोलनों एवं संगठनों का क्या दृष्टिकोण था—यह एक महत्वपूर्ण विषय है। उदाहरण के तौर पर, डा. भीमराव अंबेडकर एवं गांधीजी के बीच सामाजिक-राजनीतिक प्रश्नों पर सैद्धांतिक विवाद, कम्युनिस्ट पार्टी का गांधीजी के आर्थिक चिंतन एवं सामाजिक आधार पर सैद्धांतिक प्रहार, क्रांतिकारियों से गांधीजी की सहानुभूति न होना एवं सुभाष चंद्र बोस के राजनीतिक कार्यक्रमों पर उनकी आपत्ति—इन विषयों पर अनेक शोध हो चुके हैं एवं तथ्यों को सामने लाया जा चुका है। परंतु संघ एवं महात्मा गांधी के बीच सहमति-असहमति, सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक स्तरों पर मतभेद जैसे प्रश्न अनुत्तरित रहे हैं। इसका एक कारण स्वतंत्रता के बाद भारतीय राजनीति में सैद्धांतिक एवं सत्ता का संघर्ष रहा है।

कांग्रेस के अंदर पंडित जवाहरलाल नेहरू समाजवादी एवं पाश्चात्य विचारों से प्रभावित थे तो वल्लभ भाई पटेल एवं अन्य नेता भारतीयता से ओतप्रोत थे। सिद्धांतों की लड़ाई में भारत के कम्युनिस्ट चिंतकों की निकटता नेहरू से थी। पटेल के कठोर राष्ट्रवाद एवं स्वतंत्रता से पूर्व की घटनाओं, देश-विभाजन, पाकिस्तान, रियासतों की समस्या इत्यादि के उनके व्यावहारिक

मूल्यांकन के कारण कांग्रेस से बाहर की अनेक शक्तियां, जिनमें संघ भी एक था, पटेल की प्रशंसक थीं। अत: दोनों ही राष्ट्रीय नेताओं के दल के भीतर एवं बाहर समर्थन-आधारों के ध्रुवीकरण की प्रक्रिया चल रही थी। पं. नेहरू की गांधीजी से उतनी ही निकटता थी, जितनी पटेल की। फिर भी प्रधानमंत्री के नाते एवं पाश्चात्य वैचारिक मूल्यों को प्रतिष्ठित करने के कारण उन्हें पाश्चात्य जगत, अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं और साम्यवादी लेखकों का प्रत्यक्ष समर्थन प्राप्त था।

इसी बीच देश के बंटवारे की एक और काली छाया खंडित हिंदुस्थान पर वज्र की तरह गिरी। हिंदू महासभा से संबंधित कुछ हिंदू युवकों ने महात्मा गांधी को देश-विभाजन का जिम्मेवार एवं पाकिस्तानी हितों का शुभचिंतक मानकर उनकी हत्या का षडयंत्र रचा और उनमें से नाथूराम गोडसे ने 30 जनवरी 1948 को उनकी प्रार्थना सभा में ही उन्हें गोली मारकर उनकी हत्या कर दी। राजनीति में जिस व्यक्ति को पूरे देश ने आजादी से पूर्व (जिन्ना एवं मुस्लिम लीग के समर्थकों को छोड़कर) 'महात्मा' के रूप में प्रतिष्ठित किया और उनके विवेक को अपना विवेक मानकर उनके द्वारा घोषित कार्यक्रमों एवं आंदोलनों में आंख मूंदकर हिस्सा लिया, उनकी हत्या पूरे राष्ट्र के लिए एक गहरा सदमा थी। निस्संदेह गोडसे के पागलपन से हिंदू मानस लज्जित महसूस कर रहा था।

अपनी हत्या से चार महीने पूर्व महात्मा गांधी संघ के कैंप में दिल्ली की भंगी बस्ती में आए थे, जहां उनका भाषण हुआ था। स्वयंसेवकों के साथ खुलकर प्रश्नोत्तर हुआ। गांधीजी इस खुलेपन से खुश थे तो स्वयंसेवकों को उस भ्रम की स्थिति में गांधीजी को प्रत्यक्ष रूप से जानने एवं समझने का अवसर मिला था। परंतु केंद्र सरकार ने राष्ट्रीय स्वयंसवेक संघ को इस नृशंस हत्या के लिए सीधे दोषी ठहराते हुए इस पर प्रतिबंध लगा दिया। इस प्रश्न पर भी तत्कालीन गृहमंत्री सरदार पटेल एवं प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू के बीच सहमति नहीं थी। पटेल ने नेहरू को पत्र लिखकर कहा था : 'रा. स्व. संघ का इस कार्य से कुछ लेना-देना नहीं है। निस्संदेह संघ को दूसरे कृत्यों एवं गलतियों के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है, परंतु इसके लिए नहीं।' जब 4 फरवरी 1948 को प्रतिबंध लगा तब आम लोगों में इसके गांधी-विरोधी होने की धारणा बनना अस्वाभाविक नहीं था। यद्यपि इस हत्या के षडयंत्र की जांच करने वाले दोनों आयोगों ने संघ को किसी भी षडयंत्र का हिस्सा नहीं माना और 12 जुलाई

1948 को केंद्र सरकार ने इस पर से प्रतिबंध उठा लिया, परंतु एक लोकप्रिय नेता की हत्या का आरोप राज्य द्वारा लगाए जाने एवं मार्क्सवादी लेखकों एवं चिंतकों द्वारा उसे बौद्धिक जगत में स्थापित किए रखने के कारण लोगों में संघ की छवि गांधीजी के विरोधी और हिंसक प्रवृत्ति के प्रतिपादकों की बन गई। फलस्वरूप संघ के हेडगेवार प्रणीत विचार एवं गांधीवाद को दो विरोधी विचारधाराओं के रूप में देखने का भ्रम बना रहा।

स्वतंत्रता आंदोलन में डा. हेडगेवार के योगदान के बारे में उल्लेख पिछले अध्यायों में किया जा चुका है। आरंभिक जीवन में तिलक के अनुयाइयों के बीच राजनीतिक प्रशिक्षण के बावजूद उन्होंने महात्मा गांधी का मूल्यांकन अपने विवेक से किया। गांधीजी की जीवन दृष्टि और आदर्श को आत्मसात करने की उनकी सबल क्षमता एवं संकल्प से डा. हेडगेवार प्रभावित तो थे ही। उन्होंने गांधीजी को साम्राज्यवाद के खिलाफ जनांदोलन का नेतृत्व करने वाला सबसे अधिक सक्षम व्यक्ति माना। अत: गांधीजी की साम्राज्यवाद विरोधी दृढ़ता एवं स्वतंत्रता आंदोलन में भारतीय मूल्यों से जनित भाषा, तौर-तरीकों और सिद्धांतों के प्रयोग ने डा. हेडगेवार को गांधीजी के निकट ला खड़ा किया।

संघ स्थापना से पूर्व एवं बाद में उन्होंने महात्मा गांधी के नेतृत्व वाले आंदोलनों में पूरी प्रतिबद्धता के साथ भाग लिया था। असहयोग आंदोलन में उनकी भागीदारी मध्यप्रांत के तिलकवादियों की राय के प्रतिकूल थी। उन्होंने 'राष्ट्रीय मंडल' से अलग होकर 'नागपुर नेशनल यूनियन' नामक संस्था की स्थापना की थी। इसके अन्य कारणों में एक कारण मंडल का गांधीजी के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण भी था।

डा. हेडगेवार एवं गांधीजी के दृष्टिकोणों में एक बड़ी भिन्नता थी। गांधीजी का दृढ़ विश्वास था कि स्वतंत्रता की लड़ाई में अहिंसा का मार्ग ही सर्वोत्तम है और वह अन्य मार्गों के प्रतिपादकों को पसंद नहीं करते थे। क्रांतिकारी आंदोलन के प्रति उनकी थोड़ी भी सहानुभूति नहीं थी। डा. हेडगेवार स्वतंत्रता के प्रश्न पर गांधीजी के मार्ग को उत्तम मानते थे। असहयोग आंदोलन एवं सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान उन्होंने एवं संघ के अर्द्ध सैनिक प्रशिक्षण प्राप्त स्वयंसेवकों ने गांधीजी द्वारा दी गई अहिंसा की शपथ एवं आंदोलन की मर्यादा को दोनों बार अंत तक बनाए रखा। परंतु डा. हेडगेवार इस बात से तनिक

भी सहमत नहीं थे कि अन्य मार्गों का अनुसरण करने वालों की देशभक्ति अथवा उनके द्वारा अपनाए गए साधनों की पवित्रता पर प्रश्नचिन्ह लगाया जाए। उन्होंने कहा था कि 'स्वतंत्रता के लिए अंग्रेजों की बूट पालिश करने से लेकर उनके बूट को पैर से बाहर निकालकर उससे उनके ही सिर को लहूलुहान करते हुए मरम्मत करने तक के सब मार्ग मेरे लिए स्वतंत्रता- प्राप्ति के साधन हो सकते हैं। किसी भी मार्ग के लिए मेरे मन में तिरस्कार का भाव नहीं है। मैं तो इतना जानता हूं कि अंग्रेजों को निकालकर देश को स्वतंत्र करना है।'

डा. हेडगेवार का मानना था कि बुद्धि, विद्या एवं उच्च आदर्शों के साथ-साथ राष्ट्र को शक्तिशाली भी होना चाहिए। अहिंसा तभी कामयाब हो सकती है जब उसके पीछे 'बल' हो। 'बल' से उनका तात्पर्य राष्ट्रीय चेतना एवं लोगों की संगठन शक्ति था। उन्होंने कहा था : 'बल के बिना संरक्षण नहीं हो सकता। बल केवल संगठन में है किंतु यह संगठन विघटन से अलिप्त एवं वाह्य आक्रमण से टक्कर लेने में समर्थ होना चाहिए।'

मुस्लिम समस्या

कांग्रेस स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान अपने आधार को विस्तृत करने के लिए प्रयत्नशील थी और किसी भी राष्ट्रीय संस्था को ऐसा करना भी चाहिए। मुसलमानों का राष्ट्रीय आंदोलन से अलग-थलग रहना एवं कांग्रेस को हिंदूवादी पार्टी कहकर इससे दूरी बनाए रखना कांग्रेस नेतृत्व के समक्ष एक बड़ा प्रश्न था। कांग्रेस ने इस देश की राष्ट्रीयता एवं संस्कृति परिभाषित की होती और उसके अनुसार साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन का नेतृत्व किया होता तो मुसलमानों की तटस्थता पृथकतावाद में परिवर्तित नहीं हुई होती। कांग्रेस जितना ही अधिक उन्हें अपने निकट लाने का प्रयास करती रही, मुस्लिम लीग की मोल-तोल की शक्ति उतनी ही बढ़ती गई। मुस्लिम समाज को राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़ने के लिए उनकी मांगों, इच्छाओं और शर्तों पर समझौता करना ही तुष्टीकरण की नीति थी। 1906 में लीग की स्थापना ने देश की राजनीति में पृथकतावाद की नींव डाल दी थी। पूरे आंदोलन के दौरान यही चित्र उभरा कि भारत की स्वतंत्रता का सवाल एवं मुसलमानों का अस्तित्व—दो अलग-अलग प्रश्न हैं। प्रतिक्रियास्वरूप हिंदुओं के सामाजिक एवं सांस्कृतिक उत्थान के लिए संगठित हिंदू महासभा का भी चरित्र बदलने लगा और मुस्लिम दंगों एवं मुस्लिम महत्वाकांक्षाओं के सामने कांग्रेस की चुप्पी ने महासभा को आक्रामक हिंदू संगठन में परिवर्तित कर दिया।

डा. हेडगेवार कांग्रेस की हिंदू-मुस्लिम एकता की घोषणा की पुनरावृत्ति एवं उसके पीछे की मानसिकता को दोषपूर्ण मानते थे। उन्होंने पूछा था : 'क्या इस देश में और धर्मावलंबी नहीं है? फिर हिंदू-मुस्लिम एकता ही क्यों, सभी की एकता की बात क्यों नहीं की जाती है?' उनका मत था कि धार्मिक स्तर पर अलग-अलग मतों को मानने वाले लोगों की राष्ट्रीयता के प्रश्न पर अलग-अलग राय नहीं हो सकती। किसी राष्ट्र की राष्ट्रीयता एक ही होती है, मिश्रित नहीं होती। दिसंबर 1935 में मध्यप्रांत में वर्धा जिले के अंतर्गत आर्वी में संघ के शीतकालीन प्रशिक्षण शिविर में डा. हेडगेवार का भाषण हुआ था। उन्होंने अपने भाषण में इस बिंदु पर प्रकाश डालते हुए कहा था : 'गांधीजी हिंदू-मुस्लिम एकता की बात करते हैं। मैं भी यही चाहता हूं। लेकिन हमारा दृष्टिकोण उनसे थोड़ा भिन्न है। गांधीजी कहते हैं: 'An average Muslim is a bully and an average Hindu is a coward.' (औसत मुसलमान धींग है और औसत हिंदू दब्बू है)। वह मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति के द्वारा एकता स्थापित करना चाहते हैं। मैं महाभारत का यह श्लोक बताना चाहता हूं :

ययोरेव समं वित्तं ययोरेव समं बलम्
तयोर्विवाहो मैत्री च न तु पुष्टविपुष्टयोः॥'

(इसका तात्पर्य है कि समान शक्ति वालों एवं समान धन वाले लोगों के बीच मैत्री व विवाह सार्थक होते हैं, पुष्ट व अपुष्टों के बीच नहीं।)

आगे उन्होंने कहा कि 'मेरे अनुसार, मुस्लिमों को महसूस होता है कि वे हिंदुओं की तुलना में अधिक संगठित हैं और जब तक यह भावना उनके मन में है, तब तक शुद्ध एकता का संचार नहीं हो सकता। जिस दिन उन्हें यह आभास हो जाएगा कि हिंदू भी संगठित हो गए और वे आजादी प्राप्त करने में सक्षम हैं, उस दिन वे स्वतः राष्ट्रीय धारा में शामिल हो जाएंगे।"[1]

16 अप्रैल 1932 को जब ब्रिटेन के प्रधानमंत्री ने 'कम्युनल एवार्ड' की घोषणा की तब डा. हेडगेवार ने उसका विरोध किया था। वह अपने भाषणों में लोगों को आगाह करते थे कि 'कम्युनल एवार्ड के रूप में अलगाववाद का यह विषैला बीज देर-सवेर देश के विभाजन का कारण बनेगा।'[2] डा. हेडगेवार

1. दत्तोपंत ठेंगड़ी से साक्षात्कार पर आधारित, 6 फरवरी 2002
2. एच. वी. शेषाद्रि, द ट्रेजिक स्टोरी ऑफ पार्टीशन, 1982, पृ. 104

हिंदू-मुस्लिम संबंधों के प्रश्न का राजनीतिकरण करने के औपनिवेशिक प्रयास के सख्त विरोधी थे।

'स्वातंत्र्य' के संपादक के रूप में उन्होंने लिखा था : 'भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद को उचित ठहराने के लिए जो बात कही जाती है, उसमें एक हिंदू-मुस्लिम मतभेद भी है। उनका कहना है कि वे भारत छोड़कर चले जाएंगे तो हिंदू-मुस्लिम आपस में उलझ जाएंगे और भयंकर झगड़ा होगा। यह सब गलत है। ब्रिटिश साम्राज्यवाद का भारत में आने का कारण इन दोनों समुदायों का झगड़ा नहीं था। उल्टे उनके आने के बाद झगड़ा और बढ़ गया। अगर हिंदू-मुस्लिमों के बीच झगड़ा होता भी है तो ब्रिटेन को उसमें हस्तक्षेप का अधिकार किसने दिया है? क्या वे यूरोपीय देशों में दो वर्गों के बीच के झगड़े में हस्तक्षेप करने जाएंगे? हिंदू और मुसलमान अपनी समस्याओं को स्वयं सुलझा लेंगे। हिंदू मातृभूमि के पुत्रों के बीच कोई भेदभाव नहीं करता है और उसके दायरे में सभी अच्छे मुस्लिम भी आ जाते हैं।'[1]

भारतीय मुस्लिम भी उसी ऐतिहासिक प्रजाति (Race), सभ्यता एवं संस्कृति के अंग हैं जिसके हिंदू एवं अन्य मतावलंबी। अत: डा. हेडगेवार सभी भारतीयों को समान सभ्यता, संस्कृति, एक प्रजाति (Race) और इतिहास के कारण एक ही राष्ट्रीयता का अंग मानते थे, जिसे उन्होंने 'हिंदू राष्ट्र' के रूप में परिभाषित किया था।

स्वराज्य का प्रश्न सभी पंथों एवं जातियों के लोगों के लिए एक जैसा है। अत: किसी धर्म अथवा जाति के लोगों को इसकी प्राप्ति के लिए विशेष सुविधाएं देने की बातों का परिणाम राष्ट्र के लिए हितकर नहीं होता है। क्षणिक तौर पर प्राप्त की गई एकता भावनात्मक एकता नहीं बन सकती है। डा. हेडगेवार ने कहा था :

'जब से स्वराज्य के प्रश्न पर संघर्ष शुरू हुआ है, हिंदुओं एवं मुसलमानों के बीच की दूरी बढ़ गई है। नेताओं ने एकता हासिल करने के लिए अनेक तरीकों का उपयोग किया, परंतु सभी व्यर्थ सिद्ध हुए। तब उन्होंने सोचा कि समझौते के द्वारा एकता स्थापित की जा सकती है। 'बंगाल पैक्ट' उसी का परिणाम है। यह समझौता स्वराज पार्टी के लिए बंगाल विधानमंडल में

---

1. स्वातंत्र्य, 13 मार्च 1924

नौकरशाही से लड़ने में काफी मददगार सिद्ध हुआ। परंतु इस पैक्ट का अर्थ क्या है? इसका मतलब है—मुसलमानों को अंग्रेज सरकार के खिलाफ लड़ने के लिए तैयार करने के लिए हिंदुओं द्वारा मुसलमानों को कुछ विशेष सुविधाएं देने की शर्तों को मान लेना। परंतु इस बात पर थोड़ी गहराई में विचार करें कि क्या स्वराज सिर्फ हिंदुओं का ही प्रश्न है? नहीं, यह प्रश्न वास्तव में इस देश के सभी लोगों का है, चाहे वे किसी भी जाति अथवा पंथ के क्यों न हों। फिर मुस्लिम स्वतंत्रता आंदोलन में शामिल होने के लिए शर्तें क्यों रखते हैं? ... स्वराज की अवधारणा अपने आप में किसी भी समुदाय के द्वारा विशेष सुविधाओं की मांग को नकारती है।"[1]

डा. हेडगेवार साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष के सामने मुस्लिम समस्या को महत्व देने की उपेक्षा करना चाहते थे। तात्कालिक दंगे, महिलाओं के साथ अत्याचार इत्यादि प्रश्नों पर वह कोई हिंदू सैन्य सुरक्षा दल बनाने की जगह हिंदुओं द्वारा स्वयं संगठित होकर उसे रोकने के पक्षपाती थे। हिंदुओं के संगठित होने से उन पर आक्रमण की प्रवृत्ति स्वत: ही समाप्त हो जाएगी। हिंदू-मुस्लिम समस्या के प्रति गांधीजी, डा. हेडगेवार एवं डा. मुंजे के दृष्टिकोणों को इस प्रकार रखा जा सकता है—

गांधीजी मुस्लिम अलगाववाद एवं आजादी के प्रति उनकी तटस्थता को उनके प्रति अति उदार एवं समझौतावादी आचरण के द्वारा उनका हृदय परिवर्तन करना चाहते थे तो डा. मुंजे एवं हिंदू महासभा नेता बहुमतवाद एवं हिंदू उग्रता को उसका समाधान मानते थे। इन दोनों से हटकर डा. हेडगेवार ने इस बुनियादी प्रश्न पर मौलिक समाधान प्रस्तुत किया। उनका मत था कि हिंदुओं का सकारात्मक संगठन, उनके बीच सामाजिक विरोधाभासों का अंत और राष्ट्रीयता के प्रति समर्पण की भावना ही मुस्लिम मानसिकता को स्थायी रूप से बदलने का एकमात्र रास्ता है।

गांधीवाद का मर्म

डा. हेडगेवार गांधीवाद को सिर्फ एक विचारधारा न मानकर सार्वजनिक जीवन जीने वालों के लिए एक पवित्र दृष्टिकोण मानते थे। यह विडंबना ही है कि किसी व्यक्ति को 'वाद' के दायरे में समेटकर उसके समर्थक 'कर्मकांडी' हो जाते हैं।

---

1. स्वातंत्र्य, 30 जून 1924

डा. हेडगेवार का मत था कि गांधीजी के मूल आदर्शों को अपनाने की जगह लोग सिर्फ वाह्य आचरण में गांधीवादी कहलाना चाहते हैं। असहयोग आंदोलन के बाद पूरे देश की तरह ही मध्यप्रांत में कांग्रेस के भीतर हताशा का वातावरण था। मध्यप्रांत में तिलकवादी लोग असहयोग आंदोलन के पक्ष में भी नहीं थे। जब डा. हेडगेवार एक साल की सजा पूरी करके जेल से बाहर आए तब नागपुर में आंदोलन समाप्त होने के बाद 2 अक्टूबर 1922 को गांधीजी का जन्मदिन मनाया जा रहा था। डा. हेडगेवार कार्यक्रम की अध्यक्षता के लिए बुलाए गए थे। इससे मध्यप्रांत के गांधीवादियों में उनकी छवि एवं लोकप्रियता का अनुमान लगाया जा सकता है। उन्होंने अपने भाषण में कहा था :

''यह एक पवित्र दिन है। आज के दिन महात्मा गांधी के गुणों को सुनने एवं उन पर विचार-विमर्श करने का दिन है। गांधी जयंती विशेषकर उन लोगों के लिए, जो अपने आप को गांधीजी का समर्थक कहते हैं, विशेष महत्व की है।''

उन्होंने आगे सरल किंतु कठोर सत्य का उद्घाटन किया :

''महात्मा गांधी का सबसे बड़ा गुण उनके द्वारा अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए महान त्याग करने की क्षमता है। गांधीजी उन लोगों को पसंद नहीं करते हैं जिनके पास दोहरा व्यक्तित्व होता है; जो लोग लक्ष्य के प्रति प्रतिबद्धता की बात तो करते हैं, परंतु कार्य उसके अनुसार नहीं करते। महात्मा गांधी की लक्ष्य रूपी नाव तब तक सफलतापूर्वक मंजिल तक नहीं पहुंच सकती जब तक लोग 'महात्मा गांधी की जय' बोलते हुए उनके कार्यक्रमों के समर्थन में अपने हाथों को तो उठाते हैं परंतु व्यावहारिक जीवन में उनके आदर्शों की खिल्ली उड़ाते हैं और ऐशो-आराम का जीवन जीते हैं।''[1]

उनका आगे का भाषण महात्मा गांधी के 'अहिंसा' एवं 'शांति' के संदेशों की व्याख्या थी। उन्होंने इस पर प्रकाश डालते हुए कहा कि गांधीजी के अनुसार 'शांति' एवं 'अहिंसा' का तात्पर्य 'असहाय' होना नहीं है। उन्होंने कहा—''शांति की अवधारणा उन लोगों के लिए महत्वहीन एवं निष्प्रभावी रहती है, जो कमजोर होते हैं। यह सार्थक तभी होती है जब आप अपने विरोधियों के समान मजबूत हो जाएंगे। अगर आप सही अर्थों में महात्मा गांधी के समर्थक हैं तो आपको

---

1. महाराष्ट्र, 3 नवंबर 1922

अपने घर-परिवार को छोड़कर राष्ट्र के लिए त्याग करने के लिए तैयार रहना चाहिए।''

व्यवहार एवं सिद्धांतों में एकरूपता एक राजनीतिक कार्यकर्ता का आवश्यक गुण होता है। डा. हेडगेवार दोहरे चरित्र के नेताओं को पसंद नहीं करते थे और सार्वजनिक रूप से उन्हें कभी-कभी लज्जित भी कर देते थे। ऐसी ही एक घटना 15 जनवरी 1927 की है। नागपुर के टाउनहॉल में मध्यप्रांत कांग्रेस विधानमंडल पार्टी द्वारा एक जनसभा आयोजित की गई थी। मोरोपंत अभ्यंकर सभा की अध्यक्षता कर रहे थे। प्रांतीय कांग्रेस के एक प्रमुख नेता और प्रांतीय सरकार में मंत्री नारायण राव केलकर भी मंच पर थे। वह जैसे ही भाषण देने खड़े हुए, डा. हेडगेवार ने उनसे पूछा-''क्या आप कांग्रेस के कार्यकर्ता हैं? यदि हैं, तो आपके सिर पर गांधी टोपी की जगह विदेशी टोपी क्यों है?'[1]

गांधी टोपी तत्कालीन राजनीतिक परिवेश में भारतीय राष्ट्रीयता को प्रतिबिंबित करने वाला एक संकेत बन गई थी। सरकारी कर्मचारियों के लिए इसका प्रयोग प्रतिबंधित था। 'महाराष्ट्र' ने इस पर लिखा था: '1906-7 में 'वंदे मातरम्' की घोषणा से साम्राज्यवादी चिढ़ते थे तो अब गांधी टोपी के प्रयोग से। न्यायाधीश गांधी टोपी के प्रयोग को अवमानना की दृष्टि से देखते थे।' डा. हेडगेवार ने उस राजनीतिक चरित्र पर आक्रमण किया था, जो दोहरे मापदंड के अनुसार जीवन जीता था।

खादी का प्रयोग

खादी का प्रयोग गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम का अभिन्न अंग था। डा. हेडगेवार असहयोग आंदोलन के दौरान खादी के वस्त्रों का ही प्रयोग करते थे। जब वह जेल से छूटकर बाहर आए तब उनके लिए आयोजित स्वागत समारोहों में उन्हें खादी के वस्त्र एवं चरखा सम्मान के रूप में दिया गया। काटोल, वाणी, चांदा एवं अन्य सभाओं में उन्होंने खादी के वस्त्रों के प्रयोग पर जोर दिया।[2] उन्होंने अपने भाषण में कहा था: 'खादी राष्ट्रीय पहचान का प्रतीक तो है ही, यह हजारों लोगों को रोजगार भी देती है।'

---

1. हितवाद, 16 जनवरी 1927
2. महाराष्ट्र, 19 जुलाई 1922, पृ. 11

उनके दबाव में ही नागपुर कांग्रेस समिति ने खादी प्रचार के लिए अलग से धन दिया था। 'यंग पैट्रियट' ने इस घटना पर टिप्पणी करते हुए लिखा था कि 'गांधीजी ने अपना पूरा जोर खादी एवं चरखे के प्रचार में लगाया है।.... कांग्रेस के बहुत-से लोग खादी एवं चरखे का प्रयोग तो नहीं ही करते हैं, नागपुर कांग्रेस समिति ने अपने एक मंत्री द्वारा इस्तीफे की धमकी के बाद ही इसके प्रचार के लिए कुछ धन का आबंटन किया है।'

फरवरी 1934 में डा. हेडगेवार ने स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग के प्रश्न पर नागपुर में प्रमुख स्वयंसेवकों की तीन दिनों की बैठक आयोजित की थी। उन्होंने स्वयंसेवकों से कहा कि 'हमें, जहां तक हो सके, खादी वस्त्रों का प्रयोग करना चाहिए। लेकिन इतनी मात्रा में सूत का उत्पादन नहीं हो पाता है कि हम सभी की आवश्यकता पूरी हो सके। अत: देशभक्त नागरिकों को स्वदेशी मिलों एवं बुनकरों द्वारा बनाए गए कपड़ों का प्रयोग करना चाहिए। स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग करते समय हम इस बात का ध्यान अवश्य रखें कि स्वदेशी टोपी के नीचे का मस्तिष्क भी स्वदेशी हो।'

तीन दिनों तक विचार-विमर्श के बाद संघ ने स्वदेशी के प्रश्न पर बदली हुई परिस्थिति में अपनी नीति निश्चित की। डा. हेडगेवार ने खादी को 'स्वदेशी एवं स्वराज का सूचक' घोषित किया। उनकी यह घोषणा संघ के स्वयंसेवकों के लिए मंत्र के समान थी। उन्होंने स्वदेशी अभियान को पूरे प्रांत में गहन रूप से चलाने के लिए संघ के निर्णय को सामने रखा और हिदायत दी कि 'देशभक्तों को खादी पहनने के लिए बाध्य नहीं करना चाहिए। उन्हें अपनी जरूरतों के लिए स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग के लिए अधिक से अधिक तैयार करना चाहिए। देश में खादी का उत्पादन इतना नहीं होता है कि हर किसी की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। अत: भारतीय मिलों में बने अथवा बुनकरों द्वारा तैयार कपड़ों के प्रयोग को भी स्वदेशी अभियान का हिस्सा बना लेना चाहिए।'

संघ ने महात्मा गांधी के इस रचनात्मक कार्यक्रम को किसी व्यक्ति अथवा विशिष्ट संगठन का कार्यक्रम न मानकर पूरे देश का कार्यक्रम माना। संघ के स्वेच्छा से इस अभियान में जुटने से सविनय अवज्ञा आंदोलन के बाद प्रांत के सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन में आई चुप्पी खत्म होने लगी। एक बार फिर हलचल मचने लगी। स्वदेशी अभियान पर गुप्तचर विभाग की पाक्षिक रिपोर्ट में कहा गया कि आर. एस. एस. 'खादी की बिक्री एवं विदेशी वस्तुओं के

बहिष्कार के लिए कार्यरत है।' और सरकार ने संघ के अनेक कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार भी किया।

हरिजन यात्रा और संघ

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान महात्मा गांधी ने सामाजिक प्रश्नों को उपेक्षित नहीं होने दिया। यही कारण है कि छुआछूत मिटाने के लक्ष्य को उन्होंने कांग्रेस के कार्यक्रमों का अभिन्न अंग बना दिया। सविनय अवज्ञा आंदोलन के बाद तो उन्होंने विभिन्न प्रांतों का दौरा इसी उद्देश्य से किया था। लगभग पूरे एक वर्ष तक उनका ध्यान सिर्फ छुआछूत निवारण पर ही केंद्रित था। उन्होंने अपने अभियान का श्रीगणेश वर्धा के राम मंदिर में भगवान के दर्शन करके 17 नवंबर 1933 से किया और इसका समापन अगस्त 1934 में हुआ। इस दौरान उन्होंने 12,500 मील की यात्रा तय की और लोगों से इस हेतु आठ लाख रुपये इकट्ठे किए। उनका यह अभियान 'हरिजन यात्रा' के नाम से प्रसिद्ध है।

हरिजन यात्रा को कांग्रेस ने अपनाया तो था परंतु संगठन में कोई उत्साह नहीं था। संगठन के सभी बड़े नेता इससे सांकेतिक रूप से ही जुड़े थे। हरिजन यात्रा से पूर्व गांधीजी को इस सत्य का साक्षात्कार हो चुका था कि कांग्रेस कार्यकर्ताओं का अंत:करण रचनात्मक कार्यक्रमों से नहीं जुड़ा है। उन्होंने लिखा था कि 'अगर पूरी तरह से कांग्रेस पर इसके लिए निर्भरता रहेगी तो हिंदू धर्म में बड़ा सुधार नहीं हो पाएगा। मैं जानता हूं कि सभी भारतीय कांग्रेसी नहीं हैं, न ही सभी हिंदू कांग्रेस के सदस्य हैं।' उनकी 'हरिजन यात्रा' ने सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक स्तर पर हिंदू समाज की समरसता के प्रश्न को महत्वपूर्ण विषय बना दिया। विभिन्न संगठनों ने अपने सामाजिक आधार एवं दर्शन के अनुसार इसका समर्थन अथवा विरोध किया। डा. भीमराव अंबेडकर इसे दिखावटी एवं सतही काम मानते थे अत: उनके समर्थकों ने इसका विरोध किया। दूसरी ओर हिंदू समाज के पुरातनपंथियों ने भी इसे 'धर्म' पर आक्रमण बताया। इन लोगों ने गांधीजी को कई स्थानों पर काले झंडे भी दिखाए। दुर्भाग्य से हिंदू महासभा के कई प्रमुख नेताओं ने इस यात्रा के प्रति अपनी आपत्तियां सार्वजनिक रूप से व्यक्त की थीं। इनमें भाई परमानंद भी थे।

डा. हेडगेवार ने हरिजन यात्रा के सामाजिक महत्व का मूल्यांकन करते हुए कहा था कि 'सामाजिक समरसता के लिए किए जाने वाले सभी कार्य हिंदू

समाज को बलशाली बनाते हैं और ऐसे सभी प्रयासों को हरसंभव सहायता दी जानी चाहिए।' उन्होंने हरिजनों की शेष समाज में एकात्मता को 'पवित्र राष्ट्रीय कार्य' एवं हर हिंदू का 'नैतिक एवं पवित्र दायित्व' माना। 'कम्युनल एवार्ड' के विरोध और संयुक्त मतदाता प्रणाली के समर्थन में संघ सार्वजनिक सभाएं आयोजित कर रहा था। डा. हेडगेवार हिंदू महासभा के नेताओं का उपयोग 'कम्युनल एवार्ड' के विरुद्ध जन जागरण के लिए कर रहे थे। उनमें से एक भाई परमानंद ने, जो गांधीजी की विचारधारा से पूरी तरह असहमत थे, एक सभा में उनकी हरिजन यात्रा का भी विरोध किया। गुप्तचर विभाग की पाक्षिक रिपोर्ट में इसे डा. हेडगेवार एवं संघ का विचार इसलिए बता दिया गया कि सभा के आयोजन के पीछे डा. हेडगेवार थे। परंतु यह बात कितनी गलत थी, यह निम्न तथ्यों से पता चलता है।

हरिजन यात्रा से पूर्व इसकी तैयारी के लिए नागपुर में 5 नवंबर 1933 को महात्मा गांधी की सभा हुई थी। इस यात्रा के लिए पांच लोगों की स्वागत समिति बनाई गई थी, जिसमें संघ के केंद्रीय पदाधिकारी मार्तंड राव जोग भी थे। जोग पर संघ में 'सेनापति स्वयंसेवकों को शस्त्र एवं शारीरिक प्रशिक्षण' की जिम्मेदारी थी। स्वागत समिति के सदस्य के नाते भी उन्हें सभा के लिए प्रचार करने और सभा में अनुशासन बनाए रखने का कार्य सौंपा गया था। नागपुर सभा को सफल बनाने के लिए संघ के स्वयंसेवकों ने बैंड पर राष्ट्रीय धुन बजाई और उन्हें सलामी दी। जोग के अतिरिक्त संघ के दूसरे प्रमुख कार्यकर्ता एवं 'महाराष्ट्र' के संपादक ओगले ने गांधीजी का माल्यार्पण किया। नागपुर की सभा संख्या, अनुशासन एवं व्यवस्था की दृष्टि से बहुत ही सफल रही थी।

मध्यप्रांत में जहां-जहां संघ का प्रभाव क्षेत्र था, वहां-वहां गांधीजी की यात्रा को स्वयंसेवकों का सहयोग मिला। उदाहरणार्थ, प्रांत में गोंदिया नामक स्थान पर पहुंचने पर 'संघ ने बैंड की धुन बजाकर स्वयंसेवकों की सलामी से उनका स्वागत किया।'[1] गोंदिया में कांग्रेस ने संघ का सक्रिय सहयोग लिया था। इसका एक कारण यह भी था कि स्थानीय कांग्रेस संगठन में संघ के स्वयंसेवक भी थे। प्रांत में जरूर कुछ स्थानों पर संघ एवं कांग्रेस के बीच स्थानीय स्तर पर विद्यमान कटुता के कारण संघ का सहयोग या तो आयोजकों ने नहीं लिया या स्वयंसेवकों ने तटस्थता दिखाई।

---

1. हितवाद, 16 नवंबर, 1934, पृ. 3

यात्रा के बाद गांधीजी को यह अनुभव हुआ कि कांग्रेस औपचारिक रूप से इस सामाजिक क्रांति से तो जुड़ी हुई है परंतु इसके कार्यकर्ता इसे आत्मसात नहीं कर पा रहे हैं।

संघ का प्रत्यक्ष अवलोकन

संघ की शाखाओं एवं प्रशिक्षण शिविरों को रहस्यमय रूप में प्रस्तुत करने का कार्य सिर्फ ब्रिटिश साम्राज्यवाद ही नहीं कर रहा था, बल्कि देश के भीतर भी संघ से सैद्धांतिक रूप से असहमत अनेक राजनीतिक व्यक्तियों एवं संगठनों द्वारा इसकी आलोचना होती थी। इनमें से किसी को भी शाखा की संरचना एवं इसके कैंपों के कार्यक्रमों की जानकारी नहीं थी। उन्हें इसके प्रत्यक्ष अनुभव का कोई अवसर नहीं मिला था। महात्मा गांधी इस श्रेणी के राजनीतिज्ञों से एकदम भिन्न थे। वह संघ के बारे में प्रत्यक्ष जानने और इसके संस्थापक से मिलने के लिए उत्सुक थे। गांधीजी का केंद्र वर्धा था और नागपुर के बाद वर्धा में संघ का सर्वाधिक प्रभावशाली संगठन बन चुका था। महात्मा गांधी के वर्धा आश्रम के निकट ही संघ का वार्षिक शीतकालीन शिविर दिसंबर 1934 में लगने वाला था। एक पखवाड़ा पहले से स्वयंसेवक शिविर की तैयारी कर रहे थे। गांधीजी ने सूक्ष्मता से उनकी प्रतिबद्धता, आपसी प्रेम और सहयोग की भावना और अनुशासन को परखा। उनके मन में कैंप देखने की इच्छा और भी प्रबल हो गई और उन्होंने अपने सहयोगी महादेव देसाई के सामने यह इच्छा प्रकट की। देसाई ने वर्धा में संघ के नेता एवं मध्यप्रांत कांग्रेस के पूर्व महामंत्री आप्पाजी जोशी को पत्र भेजकर लिखा कि 'यद्यपि गांधीजी बहुत व्यस्त हैं फिर भी कुछ समय निकालकर वह आपके कैंप में आना चाहते हैं। कृपया तिथि एवं समय सूचित करने का कष्ट करें।'

आप्पाजी ने गांधीजी के आश्रम में जाकर उन्हें अपनी सुविधानुसार कैंप में आने का निमंत्रण दिया। गांधीजी 25 दिसंबर 1934 को जमनालाल बजाज, मीरा बेन, महादेव देसाई एवं अन्य आश्रमवासियों के साथ कैंप में आए थे।

इस तथ्य को भी झूठ बताकर यह कहा जाता रहा है कि संघ सम्मान प्राप्त करने के लिए गांधीजी के नाम का दुरुपयोग करता है। आश्चर्य तो यह है कि मध्यप्रांत के कांग्रेसी नेता ब्रिजलाल बियानी द्वारा नियंत्रित समाचार-पत्र ने भी

एक लेख लिखकर इसे झूठे प्रपंच की संज्ञा दी थी।[1] यह संघ विरोधी मानसिकता का प्रत्यक्ष उदाहरण है। महात्मा गांधी ने 1939 में संघ के साक्षात्कार की पुष्टि स्वयं ही संघ की सभा में भी की थी। 16 सितंबर 1947 को दिल्ली में संघ के कैंप में उन्होंने स्वयंसेवकों को संबोधित किया था। 'हिंदुस्तान टाइम्स' ने उनके भाषण की रिपोर्ट में लिखा है- 'गांधीजी ने कहा कि वह वर्षों पूर्व वर्धा में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कैंप में गए थे। तब संघ के संस्थापक डा. हेडगेवार जीवित थे। स्वर्गीय जमनालाल बजाज उन्हें कैंप में ले गए थे और गांधीजी उनके (स्वयंसेवकों के) अनुशासन एवं उनके बीच छुआछूत की भावना बिल्कुल न होने और उनकी सादगी से प्रभावित हुए थे।'[2]

25 दिसंबर 1934 की सुबह छह बजे गांधीजी कैंप आए तब उन्होंने स्वयंसेवकों की तरह 'भगवा ध्वज' को संघ की रीति से प्रणाम किया। परेड एवं अन्य गतिविधियां देखने के बाद उन्होंने संघ के स्वयंसेवकों से मिलने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने उनसे संघ के सामाजिक दर्शन, उद्देश्य और अनुशासन के संबंध में अनेक प्रश्न पूछे।

एक स्वयंसेवक से उन्होंने पूछा कि 'संघ के कैंप में राम और कृष्ण की तस्वीरें लगी हैं। क्या तुम लोग शंकर और गणपति को भगवान नहीं मानते हो?' वह स्वयंसेवक का परिपक्व उत्तर सुनकर आश्चर्यचकित रह गए कि 'हम राष्ट्र के नायकों की तस्वीर लगाते हैं, भगवानों की नहीं।' वह यह जानकर भी चकित थे कि स्वयंसेवक अपने ही खर्च से कैंप में आए थे।

तब गांधीजी ने स्वयंसेवकों की जातियों को जानने का प्रयास किया। उन्हें तब और भी आश्चर्य मिश्रित खुशी हुई कि कैंप में ब्राह्मण, गैर-ब्राह्मण एवं तथाकथित अछूत (महार) सभी जातियों के स्वयंसेवक साथ-साथ रहते, खाते और खेलते थे। एक स्वयंसेवक ने उनसे कहा कि 'हम न तो किसी की जाति जानते हैं और न ही जानने की इच्छा रखते हैं। हमारी तो एक ही जाति है, वह है—हिंदू।'

चार महीने पूर्व ही उन्होंने अपनी हरिजन यात्रा पूरी की थी। अतः इस

---

1. मातृभूमि, 23 जून 1939, वी. वी. आयाचित का लेख 'रा. स्वयंसेवक संघापासून राष्ट्र सेवा होणे अशक्य', पृ. 5
2. द हिंदुस्तान टाइम्स, 17 सितंबर, 1947, पृ. 2

तरह की सकारात्मक भावना देखकर संघ के प्रति उनकी जिज्ञासा तो शांत हो गई, पर इसके संस्थापक के बारे में जानने और उनसे मिलने की उत्सुकता बढ़ गई।

डा. हेडगेवार 26 दिसंबर को (कैंप के समापन समारोह में) वर्धा आए तो उन्हें गांधीजी के आने का समाचार दिया गया। उसी दिन वह दो साथियों के साथ गांधीजी से मिलने गए। रात्रि के साढ़े आठ बजे गांधीजी से उनके मिलने का समय आप्पाजी ने पहले ही निश्चित कर रखा था। दो राष्ट्रनायकों के बीच का संवाद यक्ष-युधिष्ठिर संवाद की तरह था। संवाद के कुछ अंश इस प्रकार हैं :

महात्मा गांधी : आपको तो पता चल ही गया होगा कि मैं कैंप में गया था।

हेडगेवार : यह हमारे लिए सौभाग्य की बात है कि आप शिविर में आए। आपके कार्यक्रम की मुझे जानकारी नहीं थी, अन्यथा मैं भी उपस्थित रहता।

महात्मा गांधी : एक दृष्टि से यह अच्छा ही हुआ कि आप नहीं थे। मैंने खुलकर स्वयंसेवकों से बात की और सभी बातों को जानने का प्रयास किया।

फिर महात्मा गांधी ने संघ की वित्त संबंधी जानकारी चाही। उनका अनुमान था कि संघ को धनाढ्य लोगों से सहायता मिलती होगी। जमनालाल बजाज का नाम चंदा देने वालों में प्रसिद्ध था। यह जानकर कि संघ आज तक बजाज या उनके जैसे धनाढ्यों से सहायता न लेकर 'गुरु दक्षिणा' के द्वारा धन संग्रह करता है, वह हैरान रह गए। डाक्टर हेडगेवार की कांग्रेसी पृष्ठभूमि को जानकर उन्होंने पूछा कि 'कांग्रेस में आपके प्रयत्न सफल क्यों नहीं हुए? क्या पर्याप्त आर्थिक सहायता नहीं मिली?'

हेडगेवार : पैसे की बात नहीं थी। कांग्रेस की मनोरचना एक राजनीतिक संगठन की है। राजनीति में स्वयंसेवकों के बारे में धारणा मेज-कुर्सी उठाने वाले, दरियां बिछाने वाले मजदूरों की है। इस धारणा से राष्ट्र का उत्थान करने वाले स्वत:स्फूर्त कार्यकर्ता कैसे उत्पन्न होंगे?

महात्मा गांधी : आपकी स्वयंसेवकों की क्या अवधारणा है?

डा. हेडगेवार : संगठन में नेता और कार्यकर्ता—ये दो वर्ग नहीं होने

चाहिए। संघ में सभी स्वयंसेवक हैं। आत्मप्रेरणा से जब व्यक्ति समाज और राष्ट्र के कार्य को महत्व देता है तब उसकी भूमिका दरी एवं मेज उठाने वाले की नहीं, बल्कि राष्ट्र-निर्माण में नींव के पत्थर की तरह हो जाती है। साधारण जीवन जीते हुए वह असाधारण कार्य करता है। अंत:करण की एकता एवं आत्मविश्वास के कारण ही अल्प धन एवं संकटों के बीच संघ नए-नए स्वयंसेवकों का निर्माण कर पाता है।

महात्मा गांधी : कल मैंने विभिन्न जातियों के स्वयंसेवकों को साथ-साथ सब काम करते हुए देखा। यह सब आपने कैसे कर दिखाया?

डा. हेडगेवार : उनकी चेतना में राष्ट्रीयता का भाव एवं हिंदू होने का अभिमान जाग्रत करने के कारण ही वे सभी संकीर्णताओं से ऊपर उठ गए हैं।

यह जानकर कि डा. हेडगेवार ने व्यवसाय एवं विवाह दोनों से अपने आप को मुक्त रखकर अपना पूरा जीवन देश की स्वतंत्रता एवं हिंदू संगठन हेतु लगा दिया है, महात्मा गांधी प्रसन्न हुए। अपने वर्षों के सार्वजनिक जीवन में एक कर्मठ, कुशल एवं समष्टिवादी, ईमानदार और महत्वाकांक्षा-रहित व्यक्ति से उनकी मुलाकात हुई। उन्होंने डा. हेडगेवार को संघ कार्य की सफलता के लिए अपनी शुभकामनाएं दीं। संघ के प्रति उनके मन में बनी छवि के कारण ही देश-विभाजन के बाद सरकार हिंदू और मुस्लिम संगठनों के बीच परस्पर सांप्रदायिकता एवं अन्याय, अत्याचार के आरोपों-प्रत्यारोपों के बीच वह बेहिचक संघ के कैंप में गए और उन्होंने ध्वज को प्रणाम किया एवं स्वयंसेवकों के साथ प्रार्थना भी की।

इसीलिए गांधीजी की हत्या के बाद जब संघ पर प्रतिबंध लगा तब उनके द्वारा स्थापित पत्र 'हरिजन' ने प्रतिबंध वापसी की मांग की थी। पत्र ने सरकार के इस कदम को गांधीजी की भावनाओं एवं आदर्शों के विपरीत बताया था। वह संपादकीय एक ऐतिहासिक दस्तावेज है।

डा. हेडगेवार ने महात्मा गांधी को श्रेष्ठ पुरुष एवं राष्ट्र निर्माता के रूप में आदर एवं सम्मान दिया था और उन्हीं की प्रेरणा से संघ ने गांधीजी को 'प्रात: स्मरणीय' की सूची में सम्मिलित किया है। एक बार एक सावरकरवादी एवं एक गांधीवादी के बीच विवाद हुआ कि सावरकर एवं गांधीजी में श्रेष्ठ कौन है, तब हेडगेवार ने कहा था कि 'यह वाद ऐसा ही है जैसे गुलाब श्रेष्ठ है या मोगरा!

जैसे गुलाब मोगरा के समान नहीं, वैसे मोगरा भी गुलाब के समान नहीं। यह सत्य होते हुए भी सौंदर्य, सुंगध, कोमलता—तीनों आधारों पर दोनों में श्रेष्ठ कौन है, यह विवाद हो सकता है। ऐसी परिस्थिति में एक-दूसरे के फूल को कुचल डालने की जगह अपनी-अपनी मानसिक रचना के अनुसार अलग-अलग फूलों का आनंद लेना चाहिए।'

मुस्लिम तुष्टीकरण एवं भारतीय राष्ट्रीयता को परिभाषित करने में डा. हेडगेवार एवं महात्मा गांधी के बीच स्पष्ट मतभेद थे। लेकिन इन मतभेदों को डा. हेडगेवार ने राष्ट्रीय आंदोलन में सहभागी होने में रुकावट नहीं बनने दिया।

नागपुर एवं मराठी मध्यप्रांत में गांधीवाद का समर्थन आधार शुरू से कमजोर था। कांग्रेस के केंद्रीय नेतृत्व के समर्थन के कारण भले ही तिलकवादियों का संगठन पर से वर्चस्व समाप्त हो गया था, परंतु तिलकवादियों ने कभी भी गांधीवादी नेताओं के पैर नहीं जमने दिए। प्रांत की राजनीतिक गतिविधियों के उद्गाता सभी तिलकवादी ही थे।

डा. हेडगेवार ने राष्ट्रीय संग्राम के लिए इसे दुर्भाग्यपूर्ण माना एवं गांधीवादी आंदोलन को वह सतत समर्थन देते रहे। दोनों के बीच वैचारिक मतभेद के साथ-साथ हिंदू समाज में सुधार के प्रश्नों पर एक-दूसरे के प्रति सम्मान स्पष्ट झलकता है।

कर्मयोगी

सामाजिक, राष्ट्रीय, लौकिक एवं अलौकिक विषयों का प्रतिपादन करने वाले और समाज एवं राष्ट्र को संगठित करके समर्थ बनाने का प्रयास करने वाले चिंतकों, सुधारकों एवं नेताओं का श्रेष्ठ वर्ग हर समाज व राष्ट्र में पाया जाता है। भारत में ऐसे व्यक्तित्वों की लंबी सूची है। परंतु 'स्व' को सच्चे अर्थों में मिटाकर वाणी एवं कर्म से व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक जीवन में पूर्ण रूप से सार्थक एकरूपता स्थापित करने वाले, राष्ट्र के साधक दुर्लभ होते हैं। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी, भगतसिंह जैसे अनेक व्यक्तित्वों को इस दुर्लभ श्रेणी में रखा जा सकता है। परंतु ऐसे राष्ट्र-साधकों की परंपरा स्थापित करने वाले प्रेरणा-पुरुषों की दुर्लभतम श्रेणी में डा. हेडगेवार हैं। उनकी प्रेरणा जितनी उनके इक्यावन साल के छोटे जीवन में प्रभावी थी, उससे अधिक प्रभावी उनकी मृत्यु के दशकों बाद भी है। उनके जीवन के जीवंत प्रसंगों, उनकी राष्ट्र-साधना के जीवन-व्रत और त्याग की असीम सामर्थ्य से प्रेरित होकर लोग व्यक्तिगत एवं पारिवारिक जीवन की सीमाओं से बाहर निकलकर राष्ट्रीय हित के लिए कार्यरत हैं।

उनके व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक जीवन में कोई फर्क नहीं था। संघ की स्थापना से पूर्व ही वह व्यक्तिगत एवं पारिवारिक जीवन के परंपरागत रीति-रिवाजों, अपेक्षाओं और बंधनों से पूर्णतः मुक्त हो चुके थे। 1925 तक वह नागपुर के सामाजिक जीवन में पूरी तरह विलीन हो चुके थे और अगले पंद्रह वर्षों में उनका 'परिवार' नागपुर की सीमा पार करके पूरा हिंदुस्तान बन गया। 1940 में जब उनकी मृत्यु हुई तब उनके द्वारा स्थापित संगठन—राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ—देशव्यापी बन चुका था। भारत के प्रायः सभी प्रांतों एवं बड़े शहरों में संघ की शाखाएं थीं। मध्यप्रांत एवं इसके बाहर के नेताओं के लिए संघ के अनुशासित एवं प्रशिक्षित स्वयंसेवक आकर्षण का केंद्र थे। स्वयं महात्मा गांधी, विट्ठल भाई पटेल, जयकर, वीर सावरकर, सुभाष चंद्र बोस जैसे चोटी के नेताओं के मन पर संघ की छाप पड़ चुकी थी। परंतु इस संगठन के मुखिया और जन्मदाता का स्वयं का व्यवहार एवं संपूर्ण जीवन एक ऐसा उदाहरण है जिसे देखकर ऐसा महसूस होता है कि शताब्दियों में कोई व्यक्ति प्रकृति एवं

ईश्वर के संभवत: विशेष प्रयोजन से जन्म लेता है। उनके जीवन के प्रसंगों से ही उनकी राष्ट्र-साधना की दृष्टि को समझा जा सकता है।

व्यक्ति-पूजा

सार्वजनिक जीवन में व्यक्तित्वों का टकराव, सिद्धांतों में मतभेद के कारण परस्पर कटुता का भाव और निरंकुश नेतृत्व करने की चेष्टा के अनेक उदाहरण स्वतंत्रता के पूर्व एवं बाद के भारतीय सामाजिक-राजनीतिक जीवन में भरे पड़े हैं। महात्मा गांधी और सुभाष चंद्र बोस के बीच मतभेद एवं उससे कांग्रेस में आई दरार की घटना का उल्लेख करना नितांत आवश्यक है। साधारणतया संघ के आलोचकों द्वारा डा. हेडगेवार को 'संघ का कमांडर', 'डिक्टेटर', 'फ्यूरर' करार दिया जाता रहा है। परंतु वास्तविकता इससे कितनी भिन्न है, इसे देखकर बौद्धिक जगत में व्याप्त सैद्धांतिक प्रदूषण का अंदाज लगाया जा सकता है। संघ की स्थापना के तीन वर्ष बाद 1928 की गुरु पूर्णिमा के दिन से संघ में गुरु-पूजा की परंपरा शुरू हुई। डा. हेडगेवार के निकट के स्वयंसेवकों का भी यही अनुमान था कि डा. हेडगेवार की 'गुरु' के रूप में पूजा की जाएगी। कुछ का अनुमान था कि छत्रपति शिवाजी अथवा उनके गुरु समर्थ रामदास को आदर्श मानकर पूजा की जाएगी। परंतु डा. हेडगेवार ने व्यक्ति-पूजा का निषेध किया। उन्होंने प्रथम गुरु दक्षिणा के अवसर पर कहा :

"संघ ने अपने गुरु की जगह पर किसी व्यक्ति विशेष को मान न देते हुए परम पवित्र भगवा ध्वज को ही सम्मानित किया है। इसका कारण है कि व्यक्ति कितना भी महान क्यों न हो, फिर भी वह कभी भी स्थिर व पूर्ण नहीं रह सकता। अतएव व्यक्ति विशेष को गुरु के स्थान पर रखकर अपनी स्थिति हास्यास्पद बनाने की अपेक्षा इतिहास, परंपरा एवं राष्ट्रीयता का समन्वित प्रतिबिंब भगवा ध्वज हमारे गुरु के रूप में सम्मानित है। इससे मिलने वाली स्फूर्ति किसी भी मनुष्य से मिलने वाली स्फूर्ति की अपेक्षा श्रेष्ठ है।"

ग्यारह वर्षों के बाद पूना में हिंदू युवक परिषद के अधिवेशन में भाषण देते हुए उन्होंने नई पीढ़ी को साफ शब्दों में संदेश दिया कि 'कभी भी किसी नेता का आंख मूंदकर अनुसरण न करें। स्वतंत्रतापूर्वक सोच-समझकर किसी निष्कर्ष पर पहुंचना चाहिए।'[1] उन्होंने तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक

1. द मराठा, 6 मई, 1939.

जीवन में व्यक्ति-पूजा की प्रचलित परंपरा से संघ को पूरी तरह से अलिप्त रखा। जगजाहिर है कि आत्मप्रवंचना, प्रशंसा और प्रसिद्धि से बचना किसी सफल संगठनकर्ता के लिए अत्यंत ही कठिन कार्य है। डा. हेडगेवार ने कभी भी संघ को अपनी प्रसिद्धि एवं प्रचार का माध्यम नहीं बनाया। वह 'व्यक्ति-पूजा' की प्रचलित परंपरा को हिंदू समाज की सबसे बड़ी बुराई मानते थे। वह इसे समाज के पतन का कारण भी मानते थे। उन्होंने कहा- ''व्यक्तिवाद ने राष्ट्रवाद के भाव को विस्थापित कर दिया है। संघ इसी व्यक्तिवाद को मिटाकर शुद्ध राष्ट्रवाद स्थापित करना चाहता है।''[1]

व्यक्ति-पूजा का निषेध संघ संस्कृति का अंग बन गया है। इसका प्रमाण तब मिला जब डा. हेडगेवार की मृत्यु हुई। संघ के प्रति सहानुभूति रखने वाले हिंदुत्ववादी नेता सार्जेंट संजीव कामथ की प्रतिक्रिया थी कि 'डा. हेडगेवार के गतिशील नेतृत्व के बिना संघ का भविष्य अंधकारमय हो जाएगा।' ऐसी आशंका एवं अनुमान संघ के प्रति सहानुभूति रखने वाले एवं विरोधियों—दोनों प्रकार के लोगों का था। परंतु डा. हेडगेवार ने जिस स्वस्थ परंपरा की नींव रखी थी, उसी का परिणाम था कि संघ पहले की तरह कार्य करता रहा। उनकी मृत्यु के दो महीने बाद महाराष्ट्र के लोकप्रिय अंग्रेजी दैनिक 'मराठा' के प्रथम पृष्ठ पर पहले बड़े समाचार का शीर्षक था—'Dr. Hedgewar's Sangh Still Growing Strong.'[2]

उनके दूसरे मासिक श्राद्ध के अवसर पर नए सरसंघचालक माधव सदाशिव गोलवलकर का भाषण इस संदर्भ में और भी महत्वपूर्ण है। उन्होंने 22 अगस्त 1940 को नागपुर में आयोजित सभा में कहा :

''संघ के जन्मदाता हेडगेवार का हमारे बीच न होना हमारे मन को सदैव कचोटता है। लेकिन उनकी अनुपस्थिति से हमारे बीच किसी भी प्रकार की घबराहट नहीं होनी चाहिए क्योंकि संघ कभी भी व्यक्ति-पूजा का समर्थक नहीं रहा है और न ही भविष्य में रहेगा।'[3]

संगठन के संस्थापक द्वारा ऐसी प्रेरणा सिर्फ सैद्धांतिक आग्रह से ही नहीं

---

1. काल, 23 जून 1940.
2. द मराठा, 23 अगस्त 1940, पृ. 1.
3. द मराठा, 23 अगस्त 1940, पृ. 1.

मिली बल्कि व्यावहारिक रूप से उन्होंने इसे हर क्षण, हर दिन अपनी अंतिम सांस तक जीकर बताया। उनके जीवनकाल में उनकी कोई छोटी या बड़ी जीवनी नहीं छापी जा सकी। वह इस तरह के सभी प्रयासों को कठोरता से हतोत्साहित करते रहे। मध्यप्रांत के एक लेखक दामोदर पंत भट ने डा. हेडगेवार को पत्र भेजकर उनके जीवन के संबंध में जानकारी एवं तस्वीरें भेजने का बार-बार आग्रह किया। अंत में डा. हेडगेवार ने उन्हें जवाब देते हुए लिखा—

'आपके मन में मेरे एवं संघ के लिए जो प्रेम एवं आदर है, उसके लिए मैं आपका हृदय से आभारी हूं। आपकी इच्छा मेरा जीवन चरित्र प्रकाशित करने की है। परंतु मुझे नहीं लगता कि मैं इतना महान हूं या मेरे जीवन में ऐसी महत्वपूर्ण घटनाएं हैं, जिनको प्रकाशित किया जाए। उसी प्रकार मेरे अथवा संघ के कार्यक्रमों की तस्वीरें भी उपलब्ध नहीं हैं। संक्षेप में, मैं यही कहूंगा कि जीवन चरित्रों की शृंखला में मेरा चरित्र तनिक भी उपयुक्त नहीं बैठता। आपके द्वारा ऐसा न करने से मैं उपकृत होऊंगा।'

यह पत्र 1935 में लिखा गया था। तब तक संघ गणवेश में डा. हेडगेवार की कोई तस्वीर सचमुच नहीं थी। संघ के एक संघचालक काशीनाथराव लिमये के हठ के बाद 2 मई 1935 को सांगली में संघ गणवेश में डा. हेडगेवार की तस्वीर ली गई। वह इसी शर्त पर राजी हुए कि तस्वीर का निगेटिव (फिल्म) नष्ट कर दिया जाएगा और तस्वीर का प्रचार नहीं किया जाएगा।

इसी प्रकार नासिक के शिक्षाविद एवं संघ के नेता राम गोसांवी ने नवंबर 1935 में पत्र लिखकर डा. हेडगेवार से संघ पर गोसांवी द्वारा दिए गए भाषणों के संकलन हेतु प्रस्तावना लिखने का अनुरोध किया। इसे भी उन्होंने अस्वीकृत कर दिया। उन्होंने लिखा था कि 'संगठन शास्त्र में अहम्मन्यता, आत्मस्तुति अथवा व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा का बिल्कुल स्थान नहीं रह सकता। व्यक्तित्व के टट्टू को जबर्दस्ती आगे बढ़ाने से संगठन नहीं खड़ा हो सकेगा।'

डा. हेडगेवार की प्रसिद्धि-पराङ्मुखता का एक और महत्वपूर्ण प्रसंग है। मई 1936 में वैशाख शुक्ल पंचमी के दिन जगद्गुरु आद्य शंकराचार्य की जयंती नासिक में मनाई गई थी। यद्यपि इस कार्यक्रम से संघ का कोई संबंध नहीं था तथापि इस अवसर पर भी डा. हेडगेवार के कर्तृत्व एवं व्यक्तित्व की सराहना हुई और नासिक के शंकराचार्य विद्याशंकर भारती स्वामी ने, जो डा. कुर्त्तकोटि

के नाम से अपने प्रगतिशील विचारों के लिए विख्यात थे, डा. हेडगेवार को 'राष्ट्रसेनापति' की उपाधि से विभूषित किया। यह समाचार जैसे ही समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुआ और डा. हेडगेवार को बधाई पत्र आने शुरू हुए तो उन्होंने इस पर पूर्ण विराम लगा दिया। वह ऐसी उपाधियों को झूठी शान का प्रदर्शन करने वाला एवं विडंबनकारी मानते थे। उन्होंने पत्र लिखकर सूचित किया कि इसका किसी भी तरह न तो उनके लिए प्रयोग किया जाए, न ही इसका प्रचार किया जाए। उन्होंने लिखा—

'डा. कुर्त्तकोटि द्वारा दी हुई उपाधि हम लोगों के लिए असंगत है। यह बात ध्यान में रखते हुए सूचना जारी करें कि हममें से कोई भी और कभी भी इस उपाधि का उपयोग न करे। समाचार-पत्रों में भी इसके प्रचार को रोकना चाहिए।'

संघ के कार्यक्रमों की सूचना एवं समाचार स्थानीय अखबारों में छपते तो थे, परंतु उन्होंने संगठन अथवा संगठन के नेताओं को प्रचार माध्यमों की सवारी करने से हमेशा रोका। अनावश्यक प्रचार और ऐसी प्रवृत्ति के विकास को वह सामाजिक एवं सार्वजनिक कार्यकर्ताओं के लिए चरित्र-दोष मानते थे। ऐसे ही प्रचार-प्रसार की लालसा से संगठन जमीन से मिटकर लेटरपैड पर एवं बड़े भवनों में सिमटकर रह जाता है। संघ की शाखाओं में निम्न पंक्तियां गाई जाती थीं-

वृत्त-पत्र में नाम छपेगा,
पहनूंगा स्वागत समुहार।
छोड़ चलो यह क्षुद्र भावना,
हिंदू राष्ट्र के तारणहार॥
कंकड़-पत्थर बन-बन हमको,
राष्ट्र-नींव को भरना है।
ब्रह्म तेज के, क्षात्र तेज के,
अमर पुजारी बनना है॥

जब कभी भी संघ के किसी स्वयंसेवक में यह प्रवृत्ति जाने-अनजाने प्रकट होती थी, वह अविलंब उसे रोकने के लिए कदम उठाते थे। यह नैतिक प्रेरणा एवं दबाव पत्र के शब्दों के रूप में उन कार्यकर्ताओं तक पहुंचता था। ऐसा ही एक पत्र उद्धरणीय है। उन्होंने 11 दिसंबर 1936 को उमाकांत आपटे एवं

वसंतराव ओक को लिखे गए पत्र में दिल्ली में संघ की स्थापना, संगठन एवं उसके विभिन्न पक्षों की चर्चा करते हुए अंत में यह भी लिखा—

'आपके दिल्ली पहुंचने का और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का कार्य करने वाले हो, ऐसा समाचार किसी की भी गलती से क्यों न हो, समाचार-पत्र में प्रकाशित हुआ, यह बात संगठन की दृष्टि से ठीक नहीं हुई। इस प्रकार से प्रसिद्धि हुई तो कार्य के आरंभ में अनेक प्रकार की बाधाएं खड़ी होती हैं। अत: अपने कार्यारंभ में प्रचार न करते हुए लोगों के सामने दृश्य स्वरूप में कार्य आया तो स्वयमेव ही उसका प्रचार होता है और वह संगठन के लिए हितकारक होता है, यह बात वहां के लोगों को समझाकर, फिर यह गलती न हो, इसकी चिंता कीजिए।'[1]

सामाजिकता

सार्वजनिक जीवन में मतभेद, प्रतिद्वंद्विता एवं टकराव अस्वाभाविक नहीं है। सैद्धांतिक वाद-विवाद उद्देश्यहीन नहीं होना चाहिए। डा. हेडगेवार का मत था कि बेवजह निरर्थक विवाद से संगठन को कोई लाभ नहीं पहुंचता है। वह इस संदर्भ में समर्थ रामदास के वाक्य से उद्घृत करते थे—'तुटे वाद संवाद तो हितकारी।' इसका अर्थ है—वही संवाद लाभदायक है जो रचनात्मक एवं पूर्वाग्रह मुक्त होकर किया जाए।

सामाजिक एवं राष्ट्रीय संगठन के कार्यों में आरोप-प्रत्यारोप और आलोचनाओं के सामने डा. हेडगेवार स्वयं अविचलित रहते थे। 1937 में वह बनारस गए थे। तब वहां के समाजवादी गुट के लोगों ने उन्हें 'लघु फासीवादी नेता' कहते हुए संघ के खिलाफ पर्चा निकाला। वह इससे न विचलित हुए, न ही उत्तेजित। उन्होंने कहा था कि 'आने वाला समय और संघ का भावी रूप बताएगा कि संघ जनतांत्रिक है अथवा फासीवादी।' ऐसे पूर्वाग्रह, जवाब देने से भी समाप्त नहीं होते हैं। ऐसे रूढ़िवादी आलोचकों की वह उपेक्षा करते रहे। उन्होंने 30 अक्टूबर 1937 को काशीनाथराव लिमये को लिखे पत्र में लिखा था—

'मेरे वहां (बनारस) जाने के एक दिन पूर्व वहां की हिंदू यूनिवर्सिटी के

---

1. डा. हेडगेवार : पत्ररूप व्यक्ति दर्शन; संपादक : ना.द. पालकर; अर्चना प्रकाशन, इंदौर; 1989; पृष्ठ 74.

कुछ छात्रों ने एक पत्रक प्रकाशित करके उसका वितरण किया था। पत्रक से हम क्रोधित होंगे और हमारे कार्य में बाधा उत्पन्न होगी, ऐसा वे सोचते थे। वहां पहुंचते ही संघ के लोगों ने सोशलिस्टों द्वारा प्रसृत पत्रक मुझे दिखाया। अपनी हमेशा की नीति के अनुसार उस पत्र को अनदेखा और उपेक्षित करने के लिए मैंने अपने सब लोगों से कहा। मेरा यह विचार सब लोगों को पसंद आया।'

वह संघ के सदस्यों को ऐसी ही सलाह दिया करते थे। संघ के प्रसार के साथ-साथ समाचार-पत्रों एवं राजनीतिक सभाओं में अनेक तरह की अटकलें लगाई जाती थीं। महाराष्ट्र के कई पत्रों - 'नवयुग', 'मातृभूमि', 'वंदे मातरम्' आदि में संघ संबंधी अनेक मनगढ़ंत बातें छपनी शुरू हो गई थीं। उदाहरणार्थ, 11 अगस्त 1938 को पश्चिमी महाराष्ट्र के एक समाचार-पत्र में एक मनगढ़ंत खबर छपी थी कि 'चांदा में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने कांग्रेस वर्किंग कमिटी का निषेध करने के लिए आमसभा का आयोजन किया है।' डा. हेडगेवार स्वभावत: ऐसी खबरों की उपेक्षा करने का निर्देश दिया करते थे। 12 नवंबर 1937 को काशीनाथराव लिमये को लिखे गए पत्र में उन्होंने कहा कि 'समाचार पत्रों में या सार्वजनिक सभाओं में, संघ के बारे में दुष्ट हेतु से प्रेरित आलोचना या किसी भी प्रकार के निंदा व्यंजक प्रलाप कभी भी किसी के द्वारा करने पर उसको उत्तर-प्रत्युत्तर देने के झंझट में संघ का कोई भी सदस्य कभी न उलझे।' उसी पत्र में डा. हेडगेवार आगे लिखते हैं कि 'आपके क्षेत्र के समाचारपत्रों में संघ के विरोध में निर्मित किया गया वैचारिक बवंडर हम सबके लिए बहुत मनोरंजन का विषय रहा। इस तरह के वैचारिक बवंडर से हमारे मन-मस्तिष्क पर कभी भी, किंचित् मात्र भी असर नहीं होता है।'

डा. हेडगेवार इस वैचारिक संघर्ष से सामाजिक एवं व्यावहारिक जीवन में कटुता नहीं आने देना चाहते थे। तभी तो मध्यप्रांत में फारवर्ड ब्लॉक के नेता रामभाऊ रुईकर के साथ उनके संबंध मित्रवत थे। ऐसे दर्जनों उदाहरण हैं। वैचारिक भिन्नता से सामाजिक एवं मानवीय संबंधों पर असर नहीं होना चाहिए, यह मान्यता डा. हेडगेवार के व्यक्तित्व का अभिन्न अंग थी। असहयोग आंदोलन के दौरान कारागृह में साथ रहने वाले मध्यप्रांत के राष्ट्रवादी नेता कर्मवीर पाठक ने कहा था कि 'मतभिन्नता के कारण मैं डाक्टर जी के साथ उदासीनता का व्यवहार करता था, परंतु उन्होंने सदा स्नेह का संबंध बनाए रखा। वह मतभेदों को कभी इतना तीव्र नहीं होने देते थे कि मित्रता टूट जाए।'

वह संघ के स्वयंसेवकों से आग्रह करते थे कि कांग्रेस अथवा सोशलिस्टों द्वारा संघ कार्य के विरोध का जवाब नम्रतापूर्वक दें। संघ का विरोध करने वाले अथवा मतभिन्नता रखने वाले लोगों को वह संघ के कार्यक्रमों में सम्मानित वक्ता के रूप में आमंत्रित किया करते थे। संघ से सैद्धांतिक दृष्टिकोण से अलग होकर कम्युनिस्ट विचारधारा के प्रतिपादक बने इसके प्रथम सरकार्यवाह (महासचिव) बालाजी हुद्दार को संघ की शाखा एवं शिक्षा वर्गों (ओ.टी.सी.) में बुलाया गया। इसी प्रकार सेवा दल के संस्थापक एन. एच. हर्डीकर को भी संघ के ट्रेनिंग कैंप में आने का निमंत्रण भेजा था।

व्यक्तिगत पूर्वाग्रह से राष्ट्रीय एवं सामाजिक कार्यों में योगदान देने से नहीं रुकना चाहिए— इस विचार को मानने वाले विरले होते हैं। अक्टूबर 1928 में नागपुर में लोकमान्य तिलक की मूर्ति का अनावरण हुआ। इस कार्यक्रम का आयोजन मध्यप्रांत में कांग्रेस के नेता मोरूभाऊ अभ्यंकर ने किया था। डा. हेडगेवार के संबंध में उनके मन में धारणा बनी हुई थी कि वह उनके प्रतिद्वंद्वी डा. बी. एस. मुंजे के समर्थक हैं। अत: डा. हेडगेवार को आमंत्रित नहीं किया गया। परंतु जिस व्यक्ति ने अहं को अपने जन्म के साथ ही मिटा दिया हो, उस पर इन बातों का क्या प्रभाव पड़ता? डा. हेडगेवार के लिए तिलक की मूर्ति का अनावरण एक महत्व का विषय था। वह स्वयंसेवकों के साथ उस कार्यक्रम में गए और कांग्रेस के नेता डा. अंसारी को 'गार्ड आफ ऑनर' भी दिया।

इससे भी बढ़िया एक उदाहरण है। स्वातंत्र्यवीर सावरकर ने सन् 1937 में विदर्भ का प्रवास किया था। उस पूरे प्रवास में डा. हेडगेवार उनके साथ रहे तथा उनके प्रवास की सफलता के लिए प्रयत्नशील रहे। अपने प्रवास के अंतिम पड़ाव पर उन्होंने आमसभा में संघ की भूरि-भूरि प्रशंसा की और निवास पर आने के बाद डाक्टर साहब से पूछा कि 'मैं भी संघ का स्वयंसेवक हो जाऊं?' डाक्टर साहब ने कहा कि 'आपने सभा में संघ कार्य की जो सराहना की, वही पर्याप्त है। यही स्नेह बना रहे।'

दूसरे वर्ष सन् 1938 में वीर सावरकर जी का नागपुर प्रवास हुआ। उस समय संघ का शिविर भी लगा था। संघ के स्वयंसेवकों ने सावरकर जी की सभा को सफल बनाने में पूरा योगदान दिया। उनका नागपुर विश्वविद्यालय का कार्यक्रम भी अत्यंत सफल रहा। उनके नागपुर प्रवास के संबंध में समाचार-पत्रों ने छापा—'He came, he saw and he conquered.' किंतु संघ के

शिविर में स्वयंसेवकों को संबोधित करते हुए वीर सावरकर संघ की आलोचना करने से नहीं चूके। उन्होंने कहा कि 'लाठी-वाठी चलाने और परेड करते बैठने में क्या रखा है? समाज में जाकर जाग्रति उत्पन्न करनी चाहिए।' सुनने वाले स्वयंसेवकों को बहुत बुरा लगा, किंतु डाक्टर साहब ने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। समाचार-पत्रों को भी सावरकर जी के भाषण का भावात्मक अंश ही पहुंचाया।

शिविर के स्वयंसेवकों में स्वातंत्र्यवीर सावरकर के भाषण की जो प्रतिक्रिया हुई, उसे दूर करके उनका ध्यान मूल-कार्य की ओर लगाने हेतु डाक्टर साहब का 'त्रयोदश वार्षिक सिंहावलोकन' नाम का सुप्रसिद्ध भाषण हुआ, जिसमें उन्होंने संघ स्थापना से लेकर तब तक हुई संघकार्य की प्रगति का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया था। स्वातंत्र्यवीर सावरकर ने संघ के बारे में जो विपरीत टिप्पणी की थी, उसके संबंध में वह मौन ही रहे। इस बात से सावरकर जी अनभिज्ञ नहीं रहे।

अगले वर्ष पुणे के संघ शिक्षा वर्ग में, जब डाक्टर साहब का वहां वास्तव्य था, सावरकर जी मुंबई से पुणे आए। स्टेशन पर हिंदू महासभा के कार्यकर्ताओं ने पूछा कि वह कहां जाएंगे तो सावरकर जी ने कहा कि संघ के वर्ग में जाएंगे। कार्यकर्ताओं ने पूछा कि संघ से तो कोई लेने नहीं आया? सावरकर जी का उत्तर था कि अपने घर जाने के लिए भी लिवाने की आवश्यकता होती है क्या? सावरकर जी वर्ग स्थान पर पहुंचे। डाक्टर साहब को जब यह पता लगा तो वह बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने स्वयंसेवकों से कहा कि 'आज हम सबके सौभाग्य से तात्याराव सावरकर हमारे बीच आए हैं। मैं उनसे प्रार्थना करता हूं कि हमारा मार्गदर्शन करें।'

सावरकर जी ने अपने भाषण में जो कहा, वह इस बात का साक्ष्य है कि डाक्टर साहब अपने सौम्य स्वभाव के द्वारा कैसे लोगों का मन जीत लेते थे। सावरकर जी ने कहा कि 'हम लोगों का कार्य तो उस मूसलाधार वर्षा जैसा है जो थोड़े समय में ही जलप्लावन उत्पन्न करके अंत में बह जाती है। किंतु डाक्टर साहब का कार्य उस किसान जैसा है जो उस पानी को रोककर उसे विधायक कार्य में लगाता है। आप सब लोगों को डाक्टर हेडगेवार के मार्ग का ही अनुसरण करना चाहिए।'[1]

---

1. कुप्प. सी. सुदर्शन से लेखक द्वारा साक्षात्कार, 28 दिसंबर 2002

डा. हेडगेवार सार्वजनिक जीवन में शब्दों के प्रयोग एवं व्यवहार में संयम रखते थे। समर्थ रामदास के 'दासबोध' की निम्नलिखित उक्तियों को उन्होंने अपनी डायरी में 1930 में उद्‌धृत किया था:

'बोलण्यासारखें चालणें। स्वयें करूनि बोलणे।'
(जैसा कहें वैसा करें, प्रथम करें, तब बोलें)
'क्रिये विण शब्दज्ञान। तेंचि श्वानाचें वमन।'
(करनी के बिना कथनी कुत्ते की कै जैसी महत्वहीन व अप्रभावी है।)
'ठायीं ठायीं शोध ध्यावा। मग ग्रामी प्रवेश करा।'
(जांचने के बाद ही ग्राम में प्रवेश (कार्यारंभ) करना चाहिए।)
'कष्टें विण फल नाहीं। कष्टें विण राज्य नाहीं।
केल्या विण होत नाहीं साध्य जनीं।'
(कष्ट बिना फल नहीं, कष्ट बिना राज्य नहीं,
किए बिना जग में कुछ भी साध्य नहीं होता)।

कर्मकांड

डा. हेडगेवार हिंदू जीवन पद्धति में उदार एवं सुधारक प्रवृत्ति का निरंतर समावेश चाहते थे। व्यक्ति अपने जीवन में आचार-व्यवहार के लिए स्वतंत्र हो, परंतु कर्मकांडी होना समाज की प्रगति के लिए बाधक है। उन्हें परंपरावाद का पहला एवं सतत मुकाबला अपने ही घर में करना पड़ा था। उनके बड़े भाई सीताराम पंत का हिंदू जाति व्यवस्था व कर्मकांड में अटूट विश्वास था। दोनों भाइयों में कई बार बहस हो जाती थी। विचारों में भिन्नता तो थी, पर सहृदयता में कमी नहीं थी। वे कभी-कभी एक ही चश्मे से काम चला लेते थे।

वह मानते थे कि अपनी-अपनी बात कहने का सबको अधिकार है, परंतु उसे थोपने का प्रयास समाज के भीतर की सकारात्मक बहुलता को समाप्त कर देता है। अपनी समझ, सोच और विचार को पूरे समाज की समझ एवं सोच नहीं मानना चाहिए। इस संदर्भ में वह एक रोचक कहानी सुनाया करते थे :

'एक राजा ने अपने नाई से पूछा कि राज्य की हालत कैसी है? नाई ने उत्तर दिया कि लोग संपन्न हैं और हर किसी के पास आठ-दस तोले सोना भी जमा है। राजा भ्रमित हो गया क्योंकि राज्य में लगातार अकाल की स्थिति उत्पन्न हो रही थी। तब उसने अपने मंत्री से सच्चाई का पता लगाने का आदेश दिया।

मंत्री ने जासूस की सहायता से पता लगाया कि नाई के पास आठ-दस तोले सोना जमा है। फिर राजा के आदेश पर गुप्तचरों ने नाई के घर से सोना चुरा लिया। अगली बार जब नाई हजामत बनाने आया तब राजा ने अपने पहले पूछे गए प्रश्न को फिर दुहराया। तब नाई का जवाब था कि राज्य की हालत को चोरों ने एकदम खराब कर रखा है। लोग सर्वत्र चोरी से परेशान और दुखी हैं।'

संघ की शाखाओं में आरंभिक दिनों में हनुमान की मूर्ति होती थी। आर्यसमाजी मूर्ति पूजा में विश्वास नहीं करते, अतः इस मूर्ति को हटा दिया गया। इसी प्रकार प्रार्थना के अंत में 'समर्थ रामदास की जय' कहा जाता था। इसे भी यह मानकर हटा दिया गया कि रामदास महाराष्ट्र के बाहर संभवतः स्वीकार्य नहीं हो सकते। अतः संघ ने हिंदू संगठन में किसी भी प्रकार की रीति-नीति को नहीं थोपा था।

डा. हेडगेवार स्वयं आस्तिक थे परंतु वह नियमित मंदिर जाने वालों में नहीं थे। उनके एक मित्र प्रह्लाद पंत फडणवीस ने उनसे कहा--"इतनी उम्र हो गई, पर तुम संध्या, पूजा, नाम स्मरण आदि कुछ भी नहीं करते!"

इस पर कर्मपथ पर अचल हिमालय की तरह खड़े डा. हेडगेवार का उत्तर था— "आपका कहना तो ठीक है, परंतु कल इस बात को लेकर यदि यमराज के सामने मुझे खड़ा भी किया गया तो वह भी मेरा क्या करेगा? मैंने अपने जीवन में स्वयं के लिए कुछ भी नहीं किया।"

सार्वजनिक जीवन में शुद्ध मन से, सच्चे हृदय से समाज सेवा ही वास्तविक पूजा होती है। डा. हेडगेवार भी समाज देवता—राष्ट्र देवता की पूजा करते थे। उन्होंने 4 मार्च 1929 को अपनी डायरी में समर्थ रामदास के संबंध में लिखा था-- 'श्री समर्थ को स्वयं के लिए कुछ भी नहीं चाहिए था। अपनी कृति का अहंकार स्वयं को न चिपक जाए, इसका ध्यान रखकर उन्होंने संपूर्ण जीवन स्वधर्मी बांधवों की स्थिति के चिंतन एवं आत्मोन्नति का मार्ग खोजने में लगा दिया।'

डा. हेडगेवार के जीवन की आर्थिक दशा वैसी ही थी, जैसी माता-पिता की मृत्यु के पश्चात थी। उन्होंने भी सारा जीवन राष्ट्रोन्नति का साधन ढूंढने एवं सबल मार्ग बनाने में होम कर दिया। इसी त्याग एवं कर्म प्रधानता के कारण कई लोगों ने उन्हें समर्थ रामदास के अवतार के रूप में मान लिया था।

परंतु इस धारणा को बल नहीं मिला क्योंकि वह स्वयं अवतारवाद के दुरुपयोग पर सदैव आपत्ति उठाते रहे थे। छत्रपति शिवाजी को भगवान शंकर का अवतार मानने एवं लोकमान्य तिलक को चतुर्भुज अवतार के रूप में चित्रित करने पर उन्होंने सार्वजनिक रूप से आपत्ति व्यक्त की थी। उन्होंने इस पर टीका करते हुए कहा था कि 'निस्संदेह, इस तरह महान विभूतियों को देवताओं की श्रेणी में ढकेलने की सूझ की बलिहारी है। महान विभूतियों को देखने भर की देर है कि उन्हें देवालय में अविलंब पहुंचा दिया जाता है। वहां उनकी पूजा तो बड़े मनोभाव से होती है; किंतु हम उनके गुणों के अनुशीलन से कोसों दूर भागते हैं। तात्पर्य यह है कि इस तरह कर्तव्यों के प्रति दायित्व से किनारा करने की कला हम हिंदुओं ने बड़ी खूबी के साथ साधी है।'

वह पूजा-पाठ को गलत नहीं मानते थे, परंतु भाव एवं कर्म विहीन पूजा-पाठ तो कर्मकांड बन जाता है। तभी तो उन्होंने धर्मग्रंथों का नित्य पाठ करने वाले हिंदुओं द्वारा समाज एवं राष्ट्र के प्रति विमुख रहने को समाज के पतन के कारणों में एक माना। इस प्रकार के कर्मकांड की आलोचना करते हुए उन्होंने कहा था कि 'नेताओं के भाषणों से अवश्य पता चलता है कि हिंदुस्थान देश अमर है। किंतु क्या सचमुच वैसा है? निरी अंधश्रद्धा से काम मत लो। बिना कोई विशेष कर्म किए हिंदुस्थान को अमर बना पाना असंभव है। बिना प्रयत्न के, व्यक्ति के लिए एक छोटे-से घर-बार को चलाना असंभव है, फिर यह तो राष्ट्र का काम है।'

कर्मयोग पर बल देते हुए वह आगे कहते हैं- ''किसी फल की प्राप्ति का मूल कारण प्रयत्न ही हुआ करता है। बिना प्रयत्न के सिद्धि कहां? जो सज्जन यह कहते दिखाई देते हैं कि हम तो ईश्वर का भजन-पूजन करते हैं, हमें वह अवश्य सफलता देगा; उन सज्जनों को मैं आवाहनपूर्वक कहना चाहता हूं कि वे मुझे ऐसा एक भी उदाहरण बताएं जहां किसी मनुष्य के केवल पूजा-पाठ करने से सौ रुपये उसके पैरों पर आ टपके हों।''

डा. हेडगेवार सदैव कर्मपथ पर चलते रहे। एक बार जेल जीवन में किसी ने उनकी हस्तरेखा पढ़नी चाही तो उन्होंने हंसी-ठठोली में इसकी उपेक्षा कर दी। उनका प्रिय वाक्य था- 'स्वयमेव मृगेंद्रता।' भाग्यवाद अकर्मण्यता का दूसरा नाम है। वह कहते थे कि अंग्रेजी का यह वाक्य —'God helps those who help theselves'—कर्मपथ पर अग्रसर लोगों के लिए है। जाति, संप्रदाय,

ऊंच-नीच, व्यक्तिवाद आदि विभाजक प्रवृत्तियों से ग्रस्त हिंदू समाज पर उस वाक्य का प्रयोग करते हुए उन्होंने अपने मन की पीड़ा को इस प्रकार व्यक्त किया था :

"भगवान हमारी सहायता क्यों करें? उन्हें हम पर दया क्यों आनी चाहिए? हम लोग अपनी कौन-सी सहायता कर रहे हैं कि भगवान हमें बचाने के लिए आएं? कुछ भी नहीं। गीता में भगवान कहते हैं कि वे 'परित्राणाय साधूनां' के लिए अवतार लेंगे। किंतु किन साधुओं के लिए? साधु किसको कहा जा सकता है? भगवान तो अवतार लेते हैं उन दुष्टों को मारने के लिए जिन्हें न तो समाज या राष्ट्र की परवाह है, न ही धर्म या संस्कृति की; और जिन्हें निरे व्यक्तिगत स्वार्थ के सिवाय कुछ भी नहीं सूझता। हिंदू समाज में तो इन सभी व्यक्तिगत दुर्गुणों से भरे हुए लोग पाए जाते हैं, जिन्हें यथार्थ में दुष्ट कहना चाहिए। साधु तो वे हैं जो धर्म, राष्ट्र व जन कल्याण का भाव रखते हुए सदा कर्तव्य में त्यागपूर्वक दक्ष रहते हैं।"

व्यक्तिगत आचरण, धार्मिक परंपराओं, सामाजिक चेतना इत्यादि प्रश्नों पर डा. हेडगेवार का स्पष्ट एवं प्रगतिशील मत था। उन्होंने अपने विचारों के लिए, समाज एवं राष्ट्र के संगठन के लिए पश्चिम की ओर मुंह नहीं किया। सामाजिक सुधार की प्रक्रिया में वह व्यक्तियों के चरित्र का परिष्कार आवश्यक मानते थे। वह भाग्यवादी तो नहीं थे परंतु आशावादी अवश्य थे। उन्होंने बाबाराव (गणेश दामोदर) सावरकर को लिखा था - 'Wait, watch, pray and hope'। इसी प्रकार उनकी जीवनदृष्टि में सकारात्मकता का भाव सदैव परिलक्षित होता था। एक बार एक तस्वीर के ऊपर जब उन्होंने यह लिखा देखा कि 'Teach me how to die,' तो उन्होंने उसे काटकर लिखा- 'Teach me how to live'।

सामाजिक दर्शन

डाक्टर हेडगेवार ने हिंदू संगठन के कार्य को दो विशेषणों से अलंकृत किया था। पहला—संघ-कार्य ईश्वरीय कार्य है, और दूसरा—यह राष्ट्रीय कार्य है। दूसरे शब्दों में, डा. हेडगेवार की हिंदू संगठन की अवधारणा दो बातों को समाविष्ट करती है—प्रथमतः,राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की संगठनात्मक गतिविधियों का लक्ष्य राष्ट्र की सबलता है और इसके प्रति प्रतिबद्धता आध्यात्मिक चेतना एवं क्रियाशीलता के समान है; द्वितीयतः, उनके द्वारा हिंदू संगठन की यह सांकेतिक व्याख्या पूर्व के हिंदू संगठनकर्ताओं के दृष्टिकोण से आधारभूत भिन्नता रखती है। हिंदू संगठन के कार्य को राष्ट्रीय जागरण का कार्य समझना संघ का अधिष्ठान था। इस प्रकार संगठन कार्य को अनवरत, स्वाभाविक और सकारात्मक रूप मिला। डा. हेडगेवार मानते थे कि मनुष्यों को संस्कारित करना, उनमें समष्टि का भाव जगाना और राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण करना एक आध्यात्मिक कार्य है।

संघ से पूर्व की एवं इसकी समकालीन हिंदू संस्थाओं का लक्ष्य एकांगी था। इसका एक वर्ग, यथा—जात-पात तोड़क मंडल, आर्य समाज इत्यादि सामाजिक जीवन में परिष्कार एवं धार्मिक चेतना के विकास का पक्षधर था तो हिंदू महासभा जैसे संगठन हिंदू राजनीतिक चेतना के विकास के पक्षधर थे। पहली श्रेणी के संगठन सामाजिक-धार्मिक चेतना से राजनीतिक चेतना की उत्पत्ति देखते थे तो दूसरी श्रेणी के संगठन राजनीतिक एकता के लिए सामाजिक समानता को आवश्यक समझते थे। संघ का दृष्टिकोण समग्रतावादी था। डा. हेडगेवार हिंदू संगठन की तो बात करते थे, परंतु उन्होंने हिंदू चेतना का आधार समुदाय को न बनाकर व्यक्ति को बनाया; अर्थात उनका लक्ष्य था—प्रत्येक हिंदू में एक व्यक्ति के नाते नवीन संस्कार भरना। और यही व्यक्ति हिंदू राष्ट्र के घटक के रूप में सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं अन्य आयामों को समग्र रूप से देखता है। यही कारण है कि वाह्य रूप से भले ही संघ अन्य हिंदू संगठनों की तरह प्रतीत होता है, परंतु सामाजिक जीवन पर इसकी छाप और इसका

बढ़ता सामाजिक आधार डा. हेडगेवार की रचनात्मक राष्ट्रीय हिंदू जीवन पद्धति की कल्पना का ही मूर्त रूप है।

डा. हेडगेवार ने हिंदू संगठन के लक्ष्य की ओर इंगित करते हुए मई 1940 में पूना के संघ शिविर में कहा था कि 'आज हमें यह समझना होगा कि हिंदुस्थान एक राष्ट्र है और हिंदू एक समाज है। हम सब इसके अंग हैं और समाज का प्रत्येक अंग राष्ट्र के लिए है। राष्ट्र रूपी इस विराट स्वरूप के सभी अंगों को इसकी पूर्णता के लिए कार्य करना चाहिए।'[1]

डा. हेडगेवार ने हिंदुस्थान की राष्ट्रीयता को सांप्रदायिक चेतना अथवा औपनिवेशिक शासन विरोधी भाव के क्षणिक एवं अस्थायी संचार के रूप में न देखकर राष्ट्र के भीतर के ऐतिहासिक समाज के अंदर से प्रस्फुटित होने वाले सकारात्मक एवं स्थायी भाव के रूप में देखा था। एक सबल राष्ट्र का आधार अस्त्र-शस्त्र नहीं, बल्कि लोगों में राष्ट्रप्रेम की भावना और राष्ट्र के सम्मान की रक्षा में सर्वस्व न्योछावर कर देने की आत्मशक्ति में निहित रहता है। 30 अप्रैल 1938 को महाराष्ट्र हिंदू युवक परिषद के अधिवेशन में अध्यक्षीय भाषण करते हुए उन्होंने कहा था कि 'यह कहा जाता है कि हमारे पास शस्त्र नहीं हैं, शिक्षा नहीं है, फिर हम क्या करें? हम कमजोर हैं इसीलिए हम स्वतंत्रता खो बैठे। यह रोने वाली कार्य-कारण मीमांसा कितनी ठीक है, इसका विचार कीजिए।.... आज हम कमजोर हैं और हममें आत्मविश्वास की कमी है। इसका एकमात्र कारण सामूहिक चिंतन और संस्था का अभाव है।... राष्ट्र की प्रत्येक गतिविधि के साथ हमारे शरीर में भी समरूप गतिविधि होनी चाहिए। मैं और राष्ट्र दोनों एक ही हैं, ऐसा समझकर जो राष्ट्र से तन्मय हो, वही सच्चा राष्ट्रसेवक है।'[2] डा. हेडगेवार 'राष्ट्रसेवक' के इसी मापदंड से तत्कालीन सांप्रदायिक प्रश्न को देखते थे।

विघटनकारी मनोवृत्ति

उनके अनुसार सांप्रदायिकता की राजनीति राष्ट्र को कमजोर एवं विघटित करने का माध्यम है। सांप्रदायिकता के साथ राष्ट्रीय राजनीति में समझौते पर प्रहार करते हुए उन्होंने 'स्वातंत्र्य' में लिखा था-

---

1. काल, 23 जून 1940
2. केसरी, 2 जुलाई 1940, पृष्ठ 5

'जब से स्वराज्य के लिए जबर्दस्त संघर्ष शुरू हुआ है, हिंदू एवं मुस्लिम के बीच खाई बढ़ती जा रही है। नेताओं ने पहले अनेक तरह से मतभेद कम करने की असफल कोशिश की। तब उन्होंने लेन-देन (Give and Take) के आधार पर बंगाल समझौता किया। इस समझौते का क्या महत्व है? इसका तात्पर्य है—मुसलमानों को विशेष सुविधा देकर उनका सहयोग प्राप्त करना।.... इस पर गहराई से सोचने पर स्थिति अत्यंत ही दुखदायी प्रतीत होती है। क्या स्वराज्य सिर्फ हिंदुओं के मतलब का है? वास्तव में यह देश के सभी लोगों के लिए महत्व का है। तब फिर मुसलमान स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेने के लिए विशेष सुविधा हासिल करने की पूर्व शर्तें क्यों रखते हैं?"[1]

डा. हेडगेवार का निष्कर्ष था कि हिंदुओं में राष्ट्रीयता के आधार पर संगठन के निर्माण से राष्ट्र विरोधी एवं सांप्रदायिक प्रवृत्ति का अंत हो जाएगा। उन्होंने 1919 में नागपुर में राष्ट्रीय उत्सव मंडल की स्थापना की थी। इसने हिंदू उत्सवों में क्रियाशील होकर राष्ट्रीयता के भाव का संचार किया। संगठन का उद्देश्य था—'लोगों में देशभक्ति की भावना जाग्रत करके उन्हें जातीय एवं संप्रदायों की चेतना से ऊपर उठाना।' मंडल ने हिंदुओं को उत्सवों के दौरान मुस्लिम विरोधी नारे लगाने से रोकने में सफलता हासिल की। डा. हेडगेवार की सहायता सात लोगों की कार्यसमिति करती थी।[2]

मध्यप्रांत में गणेश की प्रतिमा के विसर्जन एवं हिंदू उत्सवों में बाजे के प्रयोग पर मुसलमानों की आपत्तियां होती थीं, जो जब-तब दंगे का स्वरूप ले लेती थीं। सितंबर-अक्टूबर 1923 में गणेश की प्रतिमा को लेकर जब दंगा हुआ तब प्रांतीय कांग्रेस समिति ने शांतिपूर्ण हल निकालने के लिए एक उपसमिति का गठन किया, जिसमें डा. हेडगेवार, डा. मुंजे, डा. परांजपे और जी. ए. ओगले थे। एक खिलाफत उपसमिति भी बनी थी जिसमें मैफसल कबीर, आबिद अली, डा. हेडगेवार, डा. एम. आर. चोलकर, विश्वनाथराव केलकर आदि लोग शामिल थे।[3]

नागपुर में सांप्रदायिकता की समस्या का मुख्य कारण धार्मिक दबंगता एवं

---

1. स्वातंत्र्य, 30 जून 1924
2. महाराष्ट्र, 10 मई 1925, पृ. 5
3. मुंजे प्राइवेट पेपर्स, फाइल नं. 13, 1923-28

हठ था और औपनिवेशिक प्रशासन मुस्लिमों का तुष्टीकरण करके उन्हें इसके लिए प्रोत्साहित करता था। 30 अक्टूबर 1923 को नागपुर के जिलाधीश ने दिंडी जुलूस पर रोक लगा दी। दिंडी जुलूस हिंदुओं द्वारा अक्टूबर-नवंबर माह में भजन मंडली के रूप में निकाला जाता था। सरकारी आदेश के विरुद्ध हिंदुओं में तीव्र रोष था। इसका प्रतिकार करने के लिए नागपुर में सत्याग्रह किया गया, जिसे दिंडी सत्याग्रह के नाम से जाना जाता है। 1 नवंबर से 10 नवंबर तक चले इस सत्याग्रह में हजारों लोग शरीक हुए। इसमें राजा लक्ष्मणराव भोंसले, डा. चोलकर, डा. मुंजे, डा. हेडगेवार, ना. भा. खरे आदि प्रमुख नागरिकों ने भाग लिया। ढाई सौ लोग गिरफ्तार हुए। डा. हेडगेवार ने 8 नवंबर को सत्याग्रह किया था।[1] अंत में स्थानीय प्रशासन को झुकना पड़ा। 12 नवंबर 1923 को प्रशासन ने शांति स्थापना के लिए एक समिति बनाई, जिसमें डा. हेडगेवार भी थे।

हिंदू-मुस्लिम दंगों में कमी नहीं आई। सिर्फ नवंबर माह में ही दो बार दंगा भड़का। डा. हेडगेवार के साहसी कदम ने 19 नवंबर के दंगे को फैलने से रोका था।[2]

इसी तरह का एक विवाद पूना में 1937 में उत्पन्न हुआ था। मुसलमानों की आपत्तियों को मानते हुए सरकार ने वहां के सोन्यामारुति मंदिर का घंटा बजाने पर 24 अप्रैल से 14 मई तक प्रतिबंध लगा दिया था। साथ ही किसी भी प्रकार के बाजे के प्रयोग पर भी प्रतिबंध था। डा. हेडगेवार को प्रशासन की तुष्टीकरण की नीति एवं मुस्लिम समुदाय के असहिष्णु व्यवहार पर दुख था। पूना में संघ का प्रशिक्षण वर्ग चल रहा था। वहां के स्थानीय हिंदू नेताओं की संघ से अपेक्षा थी कि इस प्रतिबंध के खिलाफ होने वाले सत्याग्रह में संघ बढ़-चढ़कर भाग ले। लेकिन डा. हेडगेवार का स्पष्ट मत था कि हिंदू समाज संकट आने पर ही जागता है इसीलिए ऐसी घटनाएं घटती रहती हैं। समाज को सतत जाग्रत रहने की आवश्यकता है। स्थानीय हिंदू नेता उनकी दृष्टि को समझ पाने में असमर्थ थे। हेडगेवार ने संघ का प्रशिक्षण वर्ग पूरा होने के बाद स्वयं सत्याग्रह में 13 मई को भाग लिया। वह गिरफ्तार भी हुए। कुछ देर बाद उन्हें छोड़ दिया गया। न्यायालय में उनके स्थान पर एन. जी. अभ्यंकर उपस्थित हुए। न्यायालय

---

1. महाराष्ट्र, 17 नवंबर 1923, पृ. 2
2. महाराष्ट्र, 21 नवंबर 1923, पृ. 4

ने इसकी अनुमति दे दी। 17 मई को न्यायालय ने मुकदमे का फैसला सुनाया और उन्हें 25 रुपये के जुर्माने की सजा दी। वह ऐसी घटनाओं को राष्ट्रीय परंपरा के विपरीत मानते थे। उन्हें विश्वास था कि हिंदू संगठन की उपस्थिति मात्र से इस प्रकार की मनोवृत्ति एवं प्रशासनिक षडयंत्र—दोनों को विफल किया जा सकता है।

उनकी मान्यता उनके अपने अनुभवों एवं सामाजिक परिस्थितियों के विश्लेषण पर आधारित थी। उन्होंने कहा कि 'संघ किसी से द्वेष नहीं करता है। यह सिर्फ हिंदुओं को संगठित करने का कार्य करता है। इसका उद्देश्य राष्ट्र, धर्म एवं संस्कृति का संरक्षण करना है। फिर इसे जब सांप्रदायिक कहा जाता है तो मुझे घोर आश्चर्य होता है।'[1] डा. हेडगेवार का विश्वास था कि हिंदू समाज में व्याप्त अनेकता एवं संकीर्ण वृत्तियों के कारण ही देश की स्थापित जीवन-पद्धति एवं धार्मिक सहिष्णुता का तिरस्कार सांप्रदायिक ताकतों द्वारा हो रहा है। इसीलिए हिंदू जुलूसों, गौ-शोभा यात्रा, धर्म-परिवर्तन की समस्याएं खड़ी हो रही हैं। अपने वैश्विक दृष्टिकोण के अनुकूल ही वह संघ के संगठन का विस्तार कर रहे थे एवं स्थानीय हिंदू नेताओं की सोच एवं संघ से उनकी अपेक्षाओं के कारण उन्होंने सिद्धांतों से समझौता नहीं किया। 1926-27 में मध्यप्रांत में संघ की भूमिका इसका उदाहरण है। डा. हेडगेवार सांप्रदायिकता के इस विषैले माहौल में सकारात्मक भूमिका निभाते रहे। उनकी विश्वसनीयता भी बढ़ती गई। उनके हस्तक्षेप के कारण ही गणेश प्रतिमा के विसर्जन के सवाल पर सितंबर 1926 में दो बार दंगा टल गया था।[2] एक साल बाद सितंबर 1927 में नागपुर में भीषण दंगा हुआ, जिसमें 20 लोग मारे गए और 131 घायल हुए। इस दंगे के दौरान प्रतिदिन पचास हजार रुपये का नुकसान हुआ। दंगे के कारण पर प्रकाश डालते हुए सरकार की पाक्षिक रिपोर्ट में कहा गया था कि 'दंगे का तत्कालीन कारण मुसलमानों का जुलूस था। इसका आयोजन यह प्रदर्शित करने के लिए किया गया था कि जुलूस निकालना सिर्फ हिंदुओं का एकाधिकार नहीं है। यद्यपि नागपुर में मुसलमान अल्पसंख्यक हैं फिर भी वे अपने को अधिक पुरुषार्थी एवं दबंग मानते आए हैं।'[3]

---

1. केसरी, 7 अप्रैल 1933
2. मुंजे पेपर्स, डायरी, 7 और 22 सितंबर 1926
3. मध्यप्रांत के सितंबर के पहले भाग की पाक्षिक रिपोर्ट, 32/27 पैरा (1)

इस अवसर पर स्थानीय हिंदू नेताओं की अपेक्षा थी कि संघ के स्वयंसेवक मुसलमानों का प्रतिकार करने के लिए आक्रामक रुख अपनाएंगे, परंतु ऐसा नहीं हुआ। डा. हेडगेवार ने स्वयंसेवकों को संवेदनशील स्थानों पर दंगा रोकने के लिए लगाया। इसका परिणाम यह हुआ कि दंगे पर जल्दी नियंत्रण पाया जा सका।

हिंदुओं में व्याप्त अनुशासनहीनता एवं धार्मिक उत्सवों के दौरान अव्यवस्था को दूर करने के लिए डा. हेडगेवार ने 1926 से संघ के स्वयंसेवकों का उपयोग किया। रामटेक के रामनवमी मेले को सुचारु रूप देने के लिए नागपुर से दो सौ स्वयंसेवकों को भेजा गया। इस व्यवस्था से मुस्लिम एवं हिंदू—दोनों तरफ के अराजक तत्व डा. हेडगेवार से क्रोधित हुए। नागपुर एवं उसके आस-पड़ोस की मुस्लिम सांप्रदायिक ताकतों में डा. हेडगेवार प्रणीत संघ के अनुशासित संगठन से क्रोधित होना स्वाभाविक था। उन्हें यह लगने लगा कि अब वे पर्व, त्यौहारों के दौरान मनमानी, छेड़छाड़ या लूटपाट नहीं कर पाएंगे। इसी बीच स्वामी श्रद्धानंद की हत्या ने ऐसे तत्वों को मध्यप्रांत में भी प्रोत्साहित कर दिया।

इसी क्रम में डा. हेडगेवार को एक धमकी भरा पत्र मिला। इसमें लिखा था कि 'आपने रामटेक में मुसलमानों से शरारत की है। ख्याल रखना, एक वर्ष के अंदर तुम मुरगी सरीखे काटे जाओगे . . .।'[1]

4 जून को उन्हें इसी तरह का एक और पत्र मिला तथा नागपुर में उन पर आक्रमण की अनेक अफवाहें उड़ती रहीं। लेकिन वह न तो उत्तेजित हुए, न ही स्वयंसेवकों में सांप्रदायिक अथवा प्रतिक्रियावादी मानसिकता का विकास होने दिया। वह इन सब बातों को सतही मानकर टालते रहे। उन्होंने धमकी के संबंध में पुलिस तक को सूचना नहीं दी। तब डा. मुंजे ने पुलिस तक शिकायत पहुंचाई थी।[2]

राष्ट्रीय उत्सव मंडल की तर्ज पर संघ के स्वयंसेवकों ने गणपति उत्सवों में व्यवस्था का काम देखकर सभी अवांछित तत्वों से समाज को बचाना शुरू कर दिया।[3] डा. हेडगेवार ने 1926 में कम्युनल एवार्ड विरोधी सम्मेलन में, जो

---

1. महाराष्ट्र, 25 मई 1927
2. मुंजे पेपर्स, डायरी, 10 मई 1927, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली
3. मध्यप्रांत के सितंबर 1932 के दूसरे भाग की पाक्षिक रिपोर्ट, F.L/P&J/12/40

कलकत्ता में हुआ था, भाग लिया था। संघ ने 'कम्युनल एवार्ड' के विरोध एवं संयुक्त मतदाता प्रणाली के समर्थन में मध्यप्रांत में सभा एवं रैलियों का आयोजन किया। परंतु इन रैलियों में 'बांटो और राज करो' की औपनिवेशिक नीति के खिलाफ भाषण किए गए और उसे मुसलमान विरोधी रैली नहीं बनने दिया गया।[1]

डा. हेडगेवार की सोच कितनी सकारात्मक थी, इसका अनुमान 1934 की एक घटना से लगाया जा सकता है। 1932 के अंत में सरकारी कर्मचारियों को संघ में जाने पर मध्यप्रांत की सरकार ने प्रतिबंध लगा दिया था। एक साल बाद इस प्रतिबंध का दायरा बढ़ाकर उसमें स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं में कार्यरत कर्मचारियों एवं शिक्षकों को शामिल किया गया। दूसरे प्रतिबंध से संघ का संगठन प्रभावित होता और संघ के लिए इसके विरुद्ध संघर्ष करना उसके जीवन-मरण का प्रश्न था। उस समय स्थानीय स्वशासन विभाग के मंत्री एम.वाई. शरीफ थे, जो सांप्रदायिक चरित्र के लिए कुख्यात थे। डा. मुंजे ने 15 जनवरी 1934 को लिखा कि 'मुस्लिम मंत्री ने संघ की जड़ पर आक्रमण किया है।' परंतु डा. हेडगेवार ने इस दृष्टिकोण में सच्चाई होते हुए भी इसे नजरअंदाज कर दिया और अपने पत्रों तथा नेताओं के साथ बैठकों में इसका जिक्र तक नहीं किया।

डा. हेडगेवार के राष्ट्रीय एवं सकारात्मक संगठनात्मक दृष्टिकोण के कारण ही संघ की विस्तार की प्रक्रिया से मध्यप्रांत अथवा देश के अन्य हिस्सों में सांप्रदायिक प्रश्न नहीं खड़ा हुआ।

आगे के वर्षों में संघ ने मुस्लिम लीग के द्विराष्ट्रवाद के सिद्धांत को अराष्ट्रीय घोषित करते हुए 'पाकिस्तान विरोधी दिवस' के कार्यक्रमों में भाग लिया। डा. हेडगेवार हिंदुस्थान को एक प्राचीन राष्ट्र मानते थे। वह मानते थे कि राष्ट्र के भीतर अलग-अलग पंथों के लोग रहते हैं परंतु 'राष्ट्र धर्मशाला नहीं होता है जिसमें जब जो चाहा, आकर रह लिया और चला गया।'[2] वह आगे कहते हैं कि राष्ट्र में रहने वाले सभी लोग 'एक विचार, एक आचार, एक सभ्यता एवं एक ही परंपरा के अभिमानी होते हैं।' लीग का द्विराष्ट्रवाद धर्मपंथ के आधार पर अलग-अलग राष्ट्रीयताओं का प्रतिपादन कर रहा था।

---

1. मध्यप्रांत की पाक्षिक रिपोर्ट अगस्त 1934 का दूसरा भाग, F.L/P&J/12/62
2. केसरी, 2 जुलाई 1939, पृ. 5

डा. हेडगेवार ने पांथिक बहुलता के प्रश्न पर स्पष्ट शब्दों में कहा कि अन्य पंथों की उपस्थिति पर हिंदुस्थान में कभी भी प्रश्न खड़ा नहीं हुआ। वह कहते हैं :

'यदि दूसरे प्रेम एवं सहानुभूति से इस भूमि में बसना चाहें तो अवश्य बस सकते हैं। हमने उन्हें कभी मना नहीं किया है, और न करेंगे। पारसी समाज के उदाहरण से हिंदुओं की उदारता का उपयुक्त परिचय मिलता है।'

अस्पृश्यता

डा. हेडगेवार हिंदू समाज के भीतर व्याप्त सामाजिक दोषों, खंडित एवं सामंती मानसिकता को सामाजिक एवं राष्ट्रीय अवनति का मूल कारण मानते थे। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान इन सामाजिक प्रश्नों पर महात्मा गांधी एवं डा. भीमराव अंबेडकर दोनों ने अपना ध्यान केंद्रित किया था। डा. हेडगेवार कहते थे कि 'हिंदुओं में सामाजिकता के भाव का अभाव है।' संघ में प्रवेश के लिए उन्होंने कोई शर्त नहीं रखी। परंतु विभिन्न जातियों के लोग संगठन की संरचना, कार्यपद्धति और राष्ट्रीयता के भाव में जाति एवं अस्पृश्यता को मन एवं विवेक दोनों से त्याग देते। परिवर्तन की यह प्रक्रिया प्रचार-प्रसार पर आधारित नहीं थी, बल्कि सहजता एवं शांति के साथ सामाजिक क्रांति चल रही थी। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जब ब्राह्मण एवं अस्पृश्य स्वयंसेवकों के साथ-साथ रहने, खाने-पीने एवं गतिविधियां करने पर परंपरावादी परिवार से आने वालों को आपत्तियां हुईं परंतु वे संस्था के अनौपचारिक सांस्कृतिक प्रवाह में जल्दी ही घुल-मिल गए। बालासाहब देवरस ने अपने संस्मरण में लिखा है कि डा. हेडगेवार समानता के भाव को अनुशासन का हिस्सा मानकर नहीं थोपते थे। वह मानते थे कि इसका प्रवाह स्वेच्छा से होना चाहिए, तभी वह टिकाऊ हो सकता है। उन्होंने लिखा है कि संघ के पहले प्रशिक्षण शिविर में कुछ स्वयंसेवकों ने जब महार जाति के स्वयंसेवकों के साथ भोजन करने में हिचकिचाहट दिखाई तो उन्हें अलग पंक्ति में बैठने दिया गया और डा. हेडगेवार ने सिर्फ इतना कहा कि 'हमारी परंपरा साथ भोजन करने की है।' अगले दिन से परंपरावादी परिवारों से आने वाले वे स्वयंसेवक भी सबके साथ बैठकर भोजन करने लगे।

एस.एच. देशपांडे ने अपने संघ जीवन का अनुभव लिखते हुए इसके सामाजिक दर्शन पर प्रकाश इस प्रकार डाला है—'हमारी शाखा का मुख्य शिक्षक गैर-ब्राह्मण था। परंतु उसके मराठी बोलने के कारण हमें इसका अनुमान तक

नहीं हुआ। जब मैं उसके घर गया तब मुझे पता चला कि वह सदाशिव है। उसका भाई सीताराम भी संघ में सक्रिय था।"[1]

डा. हेडगेवार ने अस्पृश्यता, जात-पात के प्रश्न पर कभी भी समझौता नहीं किया। वह समग्रतावादी थे। जो लोग पिछड़े हैं, अस्पृश्य हैं, उनका भी बराबर का हक है। इसी ठोस मान्यता के कारण जातिवाद के आधार पर मध्यप्रांत के राजनीतिक एवं सामाजिक वातावरण में वह और संघ के अन्य नेता खुलकर इन दोषों से लड़ रहे थे। वर्धा में 1940 में संघ की 84 शाखाएं थीं जिनमें से 70 शाखाएं गैर-ब्राह्मण आबादी वाले क्षेत्रों में थीं।[2] जब कभी भी पुरातनपंथी अथवा यथास्थितिवादी ताकतें संघ के सामने खड़ी हुईं, डा. हेडगेवार ने बेझिझक उसका प्रतिकार किया। महाराष्ट्र में रत्नागिरी के एक मंदिर में अगस्त 1937 में संघ का कार्यक्रम था। मंदिर के पुरोहितों ने हरिजन स्वयंसेवकों के प्रवेश पर आपत्ति उठाई तो डा. हेडगेवार ने उन्हें फटकारते हुए कार्यक्रम का स्थान बदल दिया। महादेव शास्त्री दिवेकर ने 'केसरी' में लिखा है कि 'संघ में ब्राह्मणों, गैर-ब्राह्मणों एवं अस्पृश्यों के बीच किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाता है। वे एक साथ खेलते, खाते और ध्वज प्रणाम करते हैं।[3]

डा. भीमराव अंबेडकर संघ के शिविर में 1938 में पूना में आए थे। उन्होंने महार स्वयंसेवकों के साथ सम्मान एवं समानता का भाव देखकर आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा कि 'मैंने इस तरह से अस्पृश्यता समाप्त करने का कार्य पहले कभी नहीं देखा।'

इसी प्रकार की टिप्पणी महात्मा गांधी ने 1934 में वर्धा शिविर देखने के बाद की थी।

डा. अंबेडकर के प्रति डा. हेडगेवार के मन में सम्मान का भाव था। यही कारण है कि डा. अंबेडकर को संघ ने प्रातःस्मरणीय नामों में शामिल किया है। डा. हेडगेवार एवं डा. अंबेडकर के बीच तुलना करते हुए कुप्प. सी. सुदर्शन ने लिखा है कि 'डा. अंबेडकर हिंदू समाज की मानसिकता में जो क्रांति चाहते थे वही डाक्टर हेडगेवार जी का ईप्सित था। डा. हेडगेवार ऊंच-नीच, छुआछूत

---

1. एस.एच. देशपांडे, माई डेज़ इन द आर.एस.एस. क्वेस्ट, बंबई, अगस्त 1975, पृ. 19
2. केसरी, 24 जुलाई 1940
3. केसरी, 5 जुलाई 1940, पृ. 13

आदि की भावनाओं से मुक्त जिस एकरस और संगठित समाज-जीवन की रचना चाहते थे, वही डा. अंबेडकर को भी अभीष्ट थी।"[1]

सुदर्शन जी आगे लिखते हैं कि 'समाज की बुराई दूर करने के लिए यदि डा. अंबेडकर ने रूढ़ियों पर कठोर प्रहार का मार्ग अपनाया, अपने लोगों को समाज में सम्मानित स्थान दिलाने के लिए अपनी रुचि के विपरीत राजनीति का माध्यम चुना, तो डा. हेडगेवार ने अतीत में जो श्रेष्ठ, उदात्त एवं कल्याणकारी था उसके आधार पर हिंदुत्व का उज्ज्वल रूप सामने रखते हुए समाज के मन को विशाल, सर्वसमावेशक और रूढ़िमुक्त बनाने पर जोर दिया। एतदर्थ उन्होंने अपने आप को राजनीति से अलग कर लिया।'

डा. हेडगेवार सामाजिक तौर पर अस्पृश्यता का निषेध करते रहे। वह पूना के न्यू इंगलिश हाईस्कूल में अस्पृश्यों के साथ सहभोज के आयोजकों में से एक थे। 23 अक्टूबर 1932 को इसी स्कूल के छात्रों को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा कि साहसपूर्ण ढंग से अस्पृश्यता का मुकाबला करें।[2]

संवेदनशीलता

डा. हेडगेवार का संवेदनशील व्यक्तित्व उनके सामाजिक दर्शन में प्रतिबिंबित होता है। वह व्यक्तिगत एवं सामाजिक कष्टों के निवारण हेतु अपनी सुविधा एवं व्यस्तता का तनिक भी ख्याल नहीं रखते थे। अपने कलकत्ता प्रवास-काल के दौरान उन्होंने दामोदर नदी की बाढ़ से पीड़ितों की सहायता में रामकृष्ण मिशन के जत्थे के साथ दिन-रात काम किया था। वृद्ध क्रांतिकारियों की शारीरिक सेवा-सुश्रुषा करने में वह आनंद का अनुभव करते थे। कलकत्ता में वह श्यामसुंदर चक्रवर्ती की सहायता करते रहे। पुराने क्रांतिकारी साथी भाऊजी कावरे जब बीमार पड़े तब वह एक डाक्टर के साथ जाकर तीन दिनों तक उनके गांव में रहे थे।

अनाथ बच्चों की समस्या के प्रति वह चिंतित थे। उन्होंने प्रश्न किया कि 'हमें अनाथाश्रम क्यों खोलना पड़ता है? हम ऐसी परिस्थिति क्यों नहीं पैदा करते

---

1. कुप्प. सी. सुदर्शन, समाज रोग के निदानकर्ता दो डाक्टर, पांचजन्य, 23 अक्टूबर 1988, पृ. 9-10.
2. हितवाद, 27 अक्टूबर 1932.

हैं कि कोई भी बालक अनाथ महसूस न कर सके!' अपने बाल्यकाल में माता-पिता को खो देने के बाद डा. हेडगेवार को यह अनुभव हुआ था कि माता-पिता का साया उठने के बाद बच्चों की क्या मानसिक दशा होती है। अतः समाज को कुटुंब स्वरूप में परिवर्तित करके इस समस्या का निदान किया जा सकता है।

वह अनाथालय को अस्थायी विकल्प मानते थे। उसकी आवश्यकता महसूस करने के बाद ही उन्होंने नागपुर, नासिक, बंबई के अनाथालयों के संचालन में योगदान दिया था। 1922 में उन्होंने नागपुर में अनाथ विद्यागृह की स्थापना की थी। जी. वी. देशमुख लिखते हैं—'यह सभी सामाजिक बुराइयों, यथा—अस्पृश्यता, जातिवाद आदि से मुक्त था। महात्मा गांधी, सर शंकरन नायर, पंडित मदन मोहन मालवीय, पंडित जवाहर लाल नेहरू, लाजपत राय जैसे नेता विद्यागृह देखने आए थे। इस तरह डा. हेडगेवार इन नेताओं के प्रशंसा-पात्र बन गए। डा. हेडगेवार ने यूरोप के लोगों को नागपुर में समाज सेवा करने से वंचित कर दिया।[1] उनका नासिक के अनाथ विद्यागृह से भी सक्रिय संबंध था।[2]

महिला अधिकार

डा. हेडगेवार महिलाओं के साथ सामंती एवं परंपरावादी व्यवहार से आजीवन लड़ते रहे। वह महिलाओं को दया का पात्र नहीं, बल्कि समानता एवं सम्मान का हकदार मानते थे। अपने व्यावहारिक जीवन में उन्होंने जो कदम उठाए थे, वे एक क्रांतिकारी सुधारक के लिए ही संभव थे। वह बाल विवाह के विरोधी एवं विधवा विवाह के समर्थक तो थे ही, उन्होंने 'बेमेल विवाह' का भी विरोध किया। तत्कालीन समाज में कम उम्र की लड़कियों के साथ अधिक उम्र के दूल्हे के विवाह की कुप्रथा थी। एक बार जब उन्हें ऐसे बेमेल विवाह की सूचना मिली तब उन्होंने अपने सहयोगियों के साथ जाकर बलपूर्वक उसे रोका और उस लड़की की शादी समान उम्र के लड़के से कराई। इसी प्रकार प्रसिद्ध मराठी उपन्यासकार गजाननराव माडखोलकर ने अपनी आत्मकथा में यह रहस्योद्घाटन किया कि डा. हेडगेवार के प्रयास से ही उनके प्रेम-विवाह में आई अड़चनें दूर हो पाई थीं। उन्होंने महिलाओं के लिए 'रमणी' शब्द के प्रयोग पर आपत्ति करते हुए 'देवी' शब्द के प्रयोग पर बल दिया था।

---

1. कालसमुद्रांतील रत्नें, वीना प्रकाशन, नागपुर, पृ. 152-53
2. केसरी, 13 जनवरी 1939

वह महिलाओं की सार्वजनिक भूमिका के प्रशंसक थे। तभी तो संघ की शाखाओं एवं शिविरों में महिला नेताओं को व्याख्यान के लिए आमंत्रित किया जाता था। अखिल भारतीय महिला परिषद ने संघ के सामाजिक सुधार के दृष्टिकोण का समर्थन किया था। इसकी अध्यक्षा राजकुमारी अमृत कुंवर एवं अन्य सदस्य, जिनमें राज्य विधानसभा की उपसभापति अनसूया बाई काले भी थीं, नागपुर के संघ शिविर में 28 दिसंबर 1937 को आए थे।[1] यह कोई पहली घटना नहीं थी। इसके पहले भी सार्वजनिक जीवन में कार्यरत महिला नेताओं एवं समाजसेवियों को आमंत्रित किया गया था। कांग्रेस की नेता कमलाबाई ने 21 नवंबर 1938 को कोंकण में संघ की शाखा में अपना भाषण दिया था। इसी प्रकार पार्वतीबाई चिटणवीस 9 दिसंबर 1934 को संघ की नागपुर शाखा के वार्षिक उत्सव में मुख्य अतिथि थीं। मध्यप्रांत विधानसभा की मनोनीत सदस्या रमाबाई तांबे संघ के प्रशंसकों में थीं।

डा. हेडगेवार महिलाओं की सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक भूमिका के प्रति कितने जागरूक थे, इसका पता इस बात से चलता है कि देश के सर्वाधिक पुराने महिला संगठनों में से एक—राष्ट्र सेविका समिति—के वह प्रेरणा स्रोत थे। संघ से प्रभावित महिला कार्यकर्ताओं में उन्होंने आत्मविश्वास एवं हिम्मत पैदा करके उन्हें स्वतंत्र संगठन की नींव रखने के लिए प्रेरित किया था। मध्यप्रांत में दो महिला संगठनों—राष्ट्र सेविका समिति (वर्धा) और राष्ट्रीय स्वयंसेविका संघ (भंडारा) —की स्थापना 1935-36 में हुई थी। डा. हेडगेवार के प्रयास से अक्टूबर 1936 में दोनों संगठनों का विलय हो गया। समिति द्वारा महिलाओं को सैद्धांतिक और शारीरिक प्रशिक्षण दिया जाता है।

आर्थिक दृष्टिकोण

डा. हेडगेवार का आर्थिक दृष्टिकोण उनके जीवन में सबसे अधिक दिखाई पड़ता रहा। उन्होंने आर्थिक प्रश्नों पर शब्दों से तो बहुत कुछ व्यक्त नहीं किया, किंतु उनके व्यक्तित्व एवं संघ की कार्यपद्धति से कुछ निष्कर्षों पर पहुंचा जा सकता है।

1920 के नागपुर अधिवेशन में उन्होंने पूंजीवाद को अमानवीय एवं साम्राज्यवादी चरित्र वाली व्यवस्था की संज्ञा दी थी। आर्थिक समानता पर उनका

---

1. महाराष्ट्र, 2 जनवरी 1938, पृ. 10

कितना आग्रह था, यह उनके द्वारा 'स्वातंत्र्य' के संपादन के दौरान दिखाई पड़ता है। 1924 में नागपुर के एंप्रेस मिल के मजदूरों ने बोनस, कार्य की समय सीमा, वेतन वृद्धि आदि प्रश्नों पर हड़ताल की, तब 'स्वातंत्र्य' ने मुखर होकर उसका समर्थन किया था। इसके कारण समाचार-पत्र को विज्ञापन मिलना भी बंद हो गया। परंतु डा. हेडगेवार पूंजीवादी शोषण के खिलाफ मजदूर आंदोलन के प्रवक्ता बने रहे।

वह मार्क्सवादी विचारधारा के वर्ग संघर्ष के भी प्रतिपादक नहीं थे। वस्तुतः वह 'वाद' के दायरे में बंटे सामाजिक कार्यकर्ताओं को अव्यावहारिक मानते थे। वामपंथ एवं दक्षिणपंथ के विभाजन पर चोट करते हुए उन्होंने मजदूर नेता रामभाऊ रुईकर के समक्ष टिप्पणी की थी—"I am a poor capitalist and you are a rich proletariat."

प्रसंग था कि एक मजदूर नेता के व्याख्यान के लिए रुईकर जी ने डा. हेडगेवार को भी आमंत्रित किया था। किंतु उसके लिए टिकट लेना आवश्यक था। अकिंचन डा. हेडगेवार के पास पैसे न होने से वह नहीं जा सके। बाद में मिलने पर जब रामभाऊ रुईकर ने न आने का कारण पूछा तब उन्होंने उपर्युक्त टिप्पणी की थी।

उन्होंने स्वयं अपने पूरे जीवन में आवश्यकता विहीनता की स्थिति को बनाए रखा। आर्थिक संपन्नता उनके लिए सफल एवं सुखी जीवन का आधार नहीं थी। जीवन भर वह तृतीय श्रेणी में यात्रा करते रहे। उनके फैलते यश एवं प्रतिष्ठा के कारण उनके परिवार पर आर्थिक बोझ भी पड़ा। अपने टूटे हुए घर में वह सादगी के साथ रहते थे। कभी-कभी तो जलावन की लकड़ी काटते थे और कभी अभ्यागत को चाय पीने का आग्रह करने के बाद घर में दूध, चीनी का अभाव पाते थे।

बड़े सामाजिक कार्यकर्ताओं की प्रतिष्ठा बढ़ने के बाद उन्हें समाज के धनाढ्य लोगों का संरक्षण भी मिलने लगता है। वे उनके व्यक्तिगत जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। डा. हेडगेवार ने इससे अपने आप को सफलतापूर्वक बचाए रखा। उनका यह अद्वितीय रूप उनके दुर्लभतम चरित्र को इंगित करता है। राजा लक्ष्मणराव भोंसले ने अपने निजी सचिव वासुदेव शास्त्री के माध्यम से उन्हें कुछ जमीन देने की पेशकश की थी, जिसे उन्होंने सीधे ठुकरा

दिया था। सिंदी के नानासाहब टालाटुले एक धनी व्यक्ति थे और डा. हेडगेवार को उनके क्रांतिकारी दिनों से ही जानते थे। 1926 में उन्होंने आप्पाजी जोशी के साथ मिलकर उन पर आर्थिक बोझ से मुक्त होने के लिए दबाव डाला। टालाटुले ने उनसे कहा कि 'सतत सार्वजनिक कामों में लगे रहने के कारण आपको घर की ओर ध्यान देने का अवकाश नहीं मिला और इसके कारण आर्थिक चिंता सदैव आपके पीछे छाया की भांति लगी रहती है।' इस पर डा. हेडगेवार ने सहजता से कहा- ''जब आवश्यकता होगी तब मांग लूंगा। अभी कोई आवश्यकता नहीं है।''

आगे के आठ वर्षों तक उनकी गरीबी ज्यों की त्यों बनी रही। उनकी भाभी रमाबाई को घर चलाने में घोर आर्थिक परेशानियों का सामना करना पड़ रहा था। इसका रहस्योद्घाटन 1935 में तब हुआ जब हेडगेवार के परम मित्र विश्वनाथराव केलकर को आभास हुआ कि उन्हें निमंत्रण के बावजूद डा. हेडगेवार चाय इसलिए नहीं पिला पाए क्योंकि घर में अपेक्षित सामग्री ही नहीं थी। उन्होंने गुरु गोलवलकर से कहा कि आप लोग अपने नेता की चिंता क्यों नहीं करते? तब गुरु जी का उत्तर था कि 'एकादशी का पेट शिवरात्रि कैसे भरे?' तब केलकर जी ने गुरु जी के माध्यम से आर्थिक सहायता की पेशकश करनी चाही, किंतु गुरु जी ने कहा कि वह स्वयं उन्हें जाकर दें। इसका साहस उन्हें नहीं हुआ और डाक्टर साहब की स्थिति यथावत बनी रही।

1935 से स्वयंसेवकों ने प्रत्येक वर्ष पांच-छह सौ रुपये की श्रद्धानिधि उन्हें भेंट करनी शुरू की, परंतु वह इस धन को संघ की गुरु दक्षिणा में दे दिया करते थे। उनके घर की दीवार जब गिर गई, तब नागपुर के बाल स्वयंसेवकों ने धनराशि इकट्ठी करके घर की मरम्मत हेतु उन्हें कुछ पैसे समर्पित किए थे। 'केसरी' ने अपने संपादकीय में लिखा था कि धन की कमी से वह कभी भी निराश नहीं हुए थे।[1]

गरीबी का उपहास न हो, इस बात का ध्यान वह रखते थे। तभी तो उन्होंने एक गरीब स्वयंसेवक की मर्यादा रखने के लिए चाय न पीने का अपना व्रत तोड़ दिया था। उन्होंने कहा- ''आखिर उस स्वयंसेवक के पास सत्कार के लिए

---

1. केसरी, 25 जून, 1940

और क्या है? यदि इसे हम अस्वीकार कर देंगे, तो उसकी भावना आहत होगी।''

उनके इसी व्यक्तित्व का असर संघ पर पड़ा। उन्होंने सामाजिक-राजनीतिक जीवन में संगठनों पर धन के प्रभाव को देखा था। संघ को उन्होंने मानव ऊर्जा पर आधारित किया, न कि धन की बैसाखी पर। उन्होंने संघ कार्य के लिए 1928 से गुरु दक्षिणा की परंपरा शुरू की। स्वयंसेवक अपनी क्षमता एवं श्रद्धा के आधार पर वर्ष में एक बार भगवा ध्वज के सामने दक्षिणा के रूप में धन अर्पित करता है। ऐसा करते समय अमीरी-गरीबी का एहसास न हो, इसलिए धन को गुप्तदान के रूप में दिया जाता है। आरंभिक दिनों में संघ के प्रभाव से जी. डी. बिड़ला से लेकर पं. मदन मोहन मालवीय तक संघ को आर्थिक सहायता देने के लिए स्वयं तत्पर हुए परंतु डा. हेडगेवार ने कृतज्ञता के साथ मना कर दिया। संघ के पास शाखा के लिए स्थान, कार्यालय एवं प्रचारकों को दूसरे प्रांतों में भेजने के लिए सदैव धन का अभाव रहा तो दूसरी ओर धनदाता दान व चंदा देने के लिए आतुर थे। परंतु व्यक्तिगत जीवन की तरह ही डा. हेडगेवार का संघ भी आवश्यकता विहीनता के चरित्र के साथ अपना यश फैलाता गया। इसकी प्रथम गुरु दक्षिणा में चौरास्सी रुपये कुछ पैसे मिले थे। तभी तो पं. मदन मोहन मालवीय ने संघ के स्वयंसेवकों को नागपुर में संबोधित करते हुए कहा था— 'अन्य संस्थाओं के पास बड़ी-बड़ी इमारतें एवं धन का भंडार है लेकिन मैं खुश हूं कि संघ के पास मानवशक्ति का विपुल भंडार है।'[1]

डा. हेडगेवार गुरु दक्षिणा अथवा सहानुभूतिपूर्वक मिलने वाले धन का बारीकी से हिसाब रखा करते थे। सार्वजनिक रूप से जमा पैसा उनके लिए अनमोल था। इस आर्थिक मनोवृत्ति का प्रभाव संघ के सामाजिक आधार पर भी पड़ा और मध्यम तथा निम्न मध्यम वर्ग के लोग संघ से जुड़ते गए। यही कारण है कि संघ को मजदूर आंदोलन में प्रवेश करने में तनिक भी कठिनाई का अनुभव नहीं हुआ।

डा. हेडगेवार का जीवन दर्शन सकारात्मक जीवन मूल्यों, प्रगतिवादी सामाजिक-आर्थिक दृष्टिकोण एवं सांस्कृतिक राष्ट्रीयता पर आधारित है।

---

1. महाराष्ट्र, 25 जुलाई, 1929

तत्वरूपी हेडगेवार

किसी व्यक्ति के जीवन की सार्थकता उसकी लंबी आयु में न होकर उसके कर्तृत्व में होती है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता, दृष्टि और कल्पना के अनुसार कर्मपथ पर अग्रसर होता है। वह अपने व्यक्तित्व से जब सकारात्मक रूप से समाज, राष्ट्र एवं सभ्यता के प्रवाह को प्रभावित करता है तब वह इतिहास के पृष्ठों पर अंकित हो जाता है। आने वाली पीढ़ियां उसका मूल्यांकन करती हैं और उससे प्रेरणा लेती हैं। डा. हेडगेवार ने भी अपने कर्म, विचार, दृष्टिकोण और जीवन मूल्यों से भारतीय राष्ट्र, इसकी सभ्यता, संस्कृति और पहचान को एक नए वैचारिक एवं संगठन के सूत्र में अभिव्यक्त किया जिसे उन्होंने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का नाम दिया।

1925 से लेकर 1940 तक उनका जीवन संगठन को प्रभावी बनाने एवं वैचारिक अधिष्ठान को स्थापित करने में अनवरत लगा रहा। संघ कार्य और राष्ट्र हित के बीच उन्होंने जीवंत संबंध स्थापित किया था। अत: संघ स्थापना के बाद भी वह राष्ट्र के स्वतंत्रता आंदोलन में योगदान करते रहे।

इन पंद्रह वर्षों में सिद्धांत, संगठन एवं आदर्शवाद—तीनों का वाहक उनका तन, मन और विवेक था। सिद्धांत एवं आदर्शवाद में शरीर और आत्मा का संबंध होता है। सिद्धांत आत्मा है तो आदर्शवाद शरीर है। आदर्शवाद के भीतर रहकर ही सिद्धांत मूर्त रूप में प्रभावी होता है और बिना सैद्धांतिक चेतना के आदर्शवाद एक व्यक्तिगत जीवन का सीमित साधन बनकर रह जाता है। डा. हेडगेवार का जीवन सैद्धांतिक चेतना एवं आदर्शवादी मूल्यों पर आधारित था। यही कारण है कि बाहर से देखने पर उनका सिद्धांत एवं कार्य समकालीन संगठनों एवं हिंदुत्व के प्रणेताओं के समान ही प्रतीत होता है। 'हिंदू राष्ट्र', 'हिंदू संगठन', 'सामाजिक समरसता'—इन सबका प्रयोग हिंदू महासभा एवं अन्य संगठनों द्वारा भी होता था, परंतु डा. हेडगेवार की दृष्टि राष्ट्र की सांस्कृतिक पहचान को पुन:स्थापित करने की थी और इसी को उन्होंने 'हिंदू राष्ट्र' की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक शब्दावली द्वारा अभिव्यक्त किया था। उनका लक्ष्य राष्ट्रीयता को स्थायी एवं चिरंतन भाव प्रदान करना था।

इसी संकल्प एवं साधना को उन्होंने संगठन निर्माण की जटिल एवं कठिन प्रक्रिया में व्यक्त किया था। राष्ट्र के सभी अवयवों में सबसे महत्वपूर्ण और जीवंत घटक व्यक्ति होता है। वही राष्ट्रीय परंपरा, पहचान, इतिहास और संस्कृति का वाहक होता है। अत: डा. हेडगेवार ने सिद्धांत एवं आदर्शवाद के प्रभावी संयोग से हेडगेवारों का समूह तैयार किया और ऐसा करते-करते उनका नश्वर शरीर इक्यावन वर्ष की आयु में होम हो गया। राम गोसांवी ने उनकी मृत्यु के बाद अपनी श्रद्धांजलि में कहा था:

'डाक्टर हेडगेवार अपनी चारित्रिक विशेषताओं के कारण महान थे। महानता शारीरिक शक्ति में न होकर नैतिक शक्ति में होती है। और उनके पास नैतिक शक्ति का भंडार था। उनका नि:स्वार्थ जीवन अद्वितीय है। उन्होंने अपने लिए कोई घर नहीं बनाया। संपूर्ण हिंदुस्थान ही उनका घर था। वह प्रचार एवं प्रसिद्धि से दूर रहते थे।'

कर्मपथ पर प्रतिबद्धता के साथ अग्रसर संन्यासी के समान जीते हुए उन्होंने कभी भी अपने दीर्घायु होने की कामना नहीं की, न ही कभी वह अपने स्वास्थ्य को लेकर चिंतित हुए। उनके लिए तो राष्ट्र का स्वास्थ्य एवं संगठन का दीर्घायु होना—ये दो प्रश्न ही महत्व के थे। 1924 में उन्हें न्यूमोनिया हुआ था। उन दिनों वह नागपुर के सार्वजनिक जीवन में खेल-कूद से लेकर राजनीतिक गतिविधियों में डूबे रहते थे। लेकिन पहली बार नवंबर 1932 में वह गंभीर रूप से अस्वस्थ हुए। 1930 में एक वर्ष के कारावास ने उनके स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डाला था। उन्हें डा. हरदास के धनतोली स्थित घर में ही रखा गया। परंतु दो महीने का विश्राम नाम के लिए था। वहां से भी वह संघ कार्य की योजना को कार्य-रूप देते रहे। डा. हरदास ने कहा कि 'डा. हेडगेवार के स्वास्थ्य की अनियमितता का कारण उनकी कार्य-व्यस्तता है।'

संघ कार्य करते हुए वह अपने शरीर को तिल-तिल कर जलाते रहे। 1935 से वह कमर दर्द से पीड़ित थे। परंतु संघ कार्य की गति में रुकावट न आए, इसलिए वह इसे छिपाते रहे। अप्रैल 1935 में जब वह संघ के कार्यक्रम में सांगली गए तब असह्य पीड़ा थी। वह स्वयं लिखते हैं कि 'मैंने कमर की पीड़ा को किसी न किसी प्रकार सहन कर, लोगों को पता न लगे, इस प्रकार के भाव से स्टेशन पर उतरकर लोगों का अभिवादन स्वीकार किया। स्टेशन से जाते ही संघ स्थान पर परेड का कार्यक्रम था। जैसे-तैसे उस कार्यक्रम को भी

पूर्वनियोजित पद्धति से पूरा किया। परंतु इस परिश्रम से कमर का दर्द बहुत बढ़ गया।'

उन्हें सांगली में रुकना पड़ा। परंतु विश्राम करना तो वह जानते ही नहीं थे। बिस्तर पर लेटे-लेटे भी वह संघ कार्य में लिप्त रहे। इसीलिए उनकी बीमारी को स्वयंसेवकों ने 'बोलती बीमारी' नाम दिया था।

नवंबर 1936 में उन्हें खांसी एवं ज्वर था। इसके बावजूद उन्होंने 13 नवंबर से दस दिनों तक काटोल ताल्लुका का व्यापक दौरा किया था। प्रवास में यात्रा के दौरान भी उन्हें आराम नहीं मिलता था। उनकी बढ़ती प्रसिद्धि इसका कारण थी। उन्होंने आबाजी हेडगेवार को 16 अप्रैल 1935 को लिखा था कि 'कल रात्रि आपसे विदा लेकर हमारा प्रवास प्रारंभ हुआ। मार्ग में जहां-जहां शाखा है—अधिकांश स्थानों पर तो शाखा है ही—उन सब स्थानों पर संघ के लोग हमसे मिलने के लिए आए, इस कारण नींद क्षण मात्र के लिए भी न हो सकी।'

डा. हेडगेवार साधारणतया रात्रि को एक-दो बजे के आसपास ही सोते थे और प्रातःकाल बिस्तर छोड़ देते थे। इसका उनके स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता रहा।

11 मार्च 1937 को उन्होंने बालाजी हुद्दार को भेजे पत्र में लिखा था कि 'मेरा स्वास्थ्य जैसा चाहिए, उतना अच्छा नहीं रहता—यह सत्य है, किंतु यह दोष मेरी प्रकृति का नहीं है। अनेकानेक कामों में व्यस्तता और उससे होने वाले कष्टों का विचार किया तो कहना पड़ेगा कि जैसा स्वास्थ्य चल रहा है वही अच्छा है। गत चार मास से संघ कार्यार्थ मेरा प्रवास चल रहा है। हर रोज भिन्न-भिन्न नगरों में निवास होता है और रात्रि के दो बजे से पूर्व विश्राम के लिए अवकाश नहीं मिलता है।'

7 दिसंबर 1939 को वह प्राकृतिक चिकित्सा हेतु बिहार के राजगृह गए। उनके साथ आप्पाजी जोशी सहित संघ के कुछ अन्य सहयोगी कार्यकर्ता भी थे। वहां से वापस आने के बाद वह 1 मई से 15 मई 1940 तक पूना के संघ शिविर में रहे। 16 मई को वह नागपुर वापस आए। नागपुर में एक महीने का संघ शिक्षा वर्ग लगा हुआ था। संघ के लिए यह काफी महत्व की बात थी। पूरे देश से चुने हुए स्वयंसेवक प्रशिक्षण के लिए वहां उपस्थित थे। दुर्भाग्य से डा. हेडगेवार 16 मई से बीमार पड़े। वह अपने शारीरिक कष्ट से जितनी पीड़ा

महसूस कर रहे थे, उससे कहीं अधिक शिक्षा वर्ग से अनुपस्थित रहने से। उन्होंने चिकित्सकों से अपने आग्रह को बार-बार दोहराया, परंतु उन्हें अनुमति नहीं दी गई। अंततः उनकी व्याकुलता को देखते हुए संघ के अधिकारियों एवं चिकित्सकों ने तीन बार में शिविर में जाने की अनुमति दी। 16 मई, 2 जून और 9 जून को वह वहां गए, किंतु सिर्फ 9 जून को ही वह बोल पाए। अदम्य इच्छाशक्ति और देशभक्ति के असीम भाव का विह्वल संयोग उनके भाषण में था। यह उनके जीवन का अंतिम भाषण था। वह देश को स्वतंत्र होते अपनी आंखों के सामने तो नहीं देख पाए, किंतु जिस हिंदू राष्ट्र के विराट, उदात्त एवं सनातन रूप की कल्पना उन्होंने 1925 में की थी, उसका एक लघु रूप 9 जून को उनके सामने था। उन्होंने अपने भाषण में कहा :

'आप तो जानते ही हो कि गत 24 दिन से मैं रुग्ण शैया पर पड़ा हूं। संघ की दृष्टि से यह वर्ष बड़े सौभाग्य का है। आज अपने सामने मैं हिंदू राष्ट्र की छोटी-सी प्रतिमा देख रहा हूं।'

फिर सिद्धांत के महत्व पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा कि 'मेरा आपसे कुछ भी परिचय न होते हुए भी ऐसी कौन-सी बात है कि जिसके कारण मेरा हृदय आपकी ओर और आपका मेरी ओर दौड़ पड़ता है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की विचारधारा ही इतनी प्रभावशालिनी है कि जिन स्वयंसेवकों का आपस में परिचय तक नहीं है, वे भी एक-दूसरे को पहचान लेते हैं।'

फिर उन्होंने संघ के कार्य के वास्तविक स्वरूप पर प्रभावशाली विचार प्रकट किए :

'आज आप अपने स्थान वापस जा रहे हैं। मैं आपको प्रेम से विदाई देता हूं। यह अवसर विछोह का है, फिर भी दुख का नहीं। जिस कार्य को संपन्न करने के निश्चय से आप यहां आए हैं, उसी कार्य की पूर्ति के लिए आप अपने स्थान पर वापस जा रहे हैं। प्रतिज्ञा कर लो कि जब तक तन में प्राण हैं, संघ को नहीं भूलूंगा। किसी भी मोह से आपको विचलित नहीं होना चाहिए। ...यह बात ध्यान में रखिए कि केवल संघ का कार्यक्रम ठीक ढंग से करने या प्रतिदिन नियमित रूप से संघ स्थान पर उपस्थित रहने से ही संघ का कार्य पूरा नहीं हो सकता। हमें तो आसेतु हिमालय पर्यंत फैले हुए इस विराट हिंदू समाज को संगठित करना है। सच्चा महत्वपूर्ण कार्यक्षेत्र तो संघ से बाहर बसने वाला हिंदू जगत ही है। संघ केवल स्वयंसेवकों के लिए नहीं; संघ के बाहर जो लोग हैं,

उनके लिए हमारा यह कर्तव्य हो जाता है कि उन लोगों को हम राष्ट्र की उन्नति का सच्चा मार्ग बताएं और यह मार्ग केवल संगठन का है।'

इस शिविर में देश भर से 1500 स्वयंसेवक उपस्थित थे। डा. हेडगेवार ने अपनी विचारोक्ति में साफ कर दिया कि गणवेश, परेड, खेल-कूद एवं विभिन्न शारीरिक कार्यक्रमों के रूप में दिखने वाला संगठन अर्द्ध सैनिक संगठन अथवा हिंदू संरक्षक बल न होकर एक वैचारिक आंदोलन है, जिसका लक्ष्य संपूर्ण राष्ट्र को उद्देश्यपूर्ण, मूल्याधिष्ठित एवं वैभवसंपन्न बनाने के लिए संगठित करना है। उन्होंने संघ के कार्य को राज्य सत्ता, अधिकांश अथवा हिंदू बहुमत या राष्ट्र के किसी एक आयाम तक सीमित नहीं किया, प्रत्युत संपूर्ण राष्ट्र, संपूर्ण समाज और राष्ट्र के सर्वांगीण विकास को उसका कार्यक्षेत्र बना दिया। उन्होंने संघ एवं हिंदू राष्ट्र के बीच पूर्ण एकरूपता का आदर्श लक्ष्य निर्धारित किया और संगठन के आदर्श को राष्ट्र के भूत, वर्तमान एवं भविष्य की यात्रा के साथ जोड़ दिया। उनका विचार था कि किसी एक उपलब्धि अथवा उद्देश्य की पूर्ति से संघ के संगठन कार्य में विराम नहीं लगना चाहिए। संघ संगठन यात्रा को समाज और राष्ट्र के जीवन से जोड़कर उन्होंने संघ कार्य को जीवन का एकमात्र कार्य बनाने का आग्रह किया था।

अंतिम संदेश के बाद उनके स्वास्थ्य में लगातार गिरावट आती रही। अपनी मृत्यु शैया पर भी वह आशा के केंद्र बने रहे। तभी तो दो राष्ट्रीय नेता— डा. श्यामा प्रसाद मुखर्जी तथा सुभाष चंद्र बोस उनके दर्शन करने, दिशा एवं सहयोग प्राप्त करने की आशा से उन तक खिंचे आए थे। 21 मई को डा. मुखर्जी जब उनसे मिलने पहुंचे तो डा. हेडगेवार के शरीर का तापमान 103 डिग्री था। डा. मुखर्जी ने बंगाल में राज्य पोषित मुस्लिम आक्रामकता से बचाने के लिए 'हिंदू रक्षा दल' बनाने का प्रस्ताव रखा तब डा. हेडगेवार ने उनसे जो बात कही, वह उनके सकारात्मक, राष्ट्रीय एवं मन, हृदय एवं विचारों में पूर्ण संतुलन की द्योतक है। उन्होंने कहा कि 'बंगाल या पंजाब में उत्पन्न हुई तथा स्थान-स्थान पर बीच-बीच में हिंदुओं की दृष्टि से पैदा होने वाली विकट परिस्थिति का मूल कारण अपने समाज की विसंघटित अवस्था है। इस स्थिति को स्थायी रूप से दूर किए बिना कहीं न कहीं हिंदुओं के विरुद्ध इस प्रकार के उपद्रव होते ही रहेंगे। इन पर क्षणिक प्रतिक्रियात्मक एवं आंशिक उपाय-योजना करने से परिस्थिति को स्थायी रूप से नहीं बदला जा सकता। इसके लिए तो देश भर के हिंदुओं के मन में समष्टि भाव उत्पन्न करना एवं एक राष्ट्रीयता के संस्कार

से हिंदुओं के मनों को प्रभावी बनाना आवश्यक है। हिंदुओं में परस्पर प्रेम तथा राष्ट्र की दृष्टि से वैभव के शिखर पर आरूढ़ होने की महत्वाकांक्षा उत्पन्न करना ही राष्ट्रोत्थान का विधायक एवं स्थायी मार्ग है तथा संघ उसी का अनुसरण कर रहा है।'

ठीक एक महीने बाद 20 जून को सुभाष चंद्र बोस उनसे मिले आए थे। तब डाक्टर हेडगेवार के जीवन की आशा प्रायः समाप्त हो चुकी थी। 15 जून से तीन दिनों तक मेयो अस्पताल में स्वास्थ्य परीक्षण के लिए रहने के बाद उन्हें 18 जून से बाबासाहब घटाटे के सिविल लाइंस के बंगले पर ले जाया गया था। डा. हेडगेवार को अपनी मृत्यु का आभास हो चुका था और उन्होंने 15 जून को संघ के कार्यकर्ता यादवराव जोशी से एक प्रश्न किया कि 'संघ के वरिष्ठ अधिकारी के दिवंगत होने पर क्या आप उनका अंतिम संस्कार सैनिक पद्धति से करेंगे?'

जोशी की आंखें भर आईं और वह प्रश्न को टाल गए। यह पिता-पुत्र के संबंध से भी अधिक मधुर संबंध का एक दृश्य था। उनकी मृत्यु के बाद किसी गलत परंपरा का जन्म न हो, इसके लिए डा. हेडगेवार चिंतित थे। संघ में सैन्य प्रशिक्षण के वाह्य रूप के कारण उन्हें संशय था कि उनका अंतिम संस्कार सैन्य रीति से किया जा सकता है। तब डा. हेडगेवार ने अपनी राय जाहिर की—'संघ एक विशाल कुटुंब है। यह कोई सैनिक संगठन नहीं। अतः कुटुंब के सदस्य के मरने के बाद जैसे अंतिम संस्कार होता है, वैसे ही सादा एवं साधारण पद्धति से होना चाहिए।'

वह अंतिम सांस तक सिद्धांतों एवं आदर्शों का पालन पूरी दृढ़ता से करते रहे। उनके व्यक्तित्व की विशालता एवं आदर्श व्रत से तो एक बार मृत्यु के देवता भी सिहर गए होंगे। मृत्यु उनका पीछा कर रही थी, परंतु यह कर्मवीर अपनी गति और प्रकृति के अनुसार ही जीवन जी रहा था। 19 जून को उन्होंने बंबई के एक बीमार स्वयंसेवक को पत्र लिखकर उसकी सफल शल्य चिकित्सा पर आनंद प्रकट किया था। 19 जून की रात्रि चिकित्सकों और संघ के कार्यकर्ताओं ने जागकर बिताई। सबकी चिंता बढ़ती जा रही थी। यह विश्वास नहीं हो रहा था कि डा. हेडगेवार उनके बीच से चले जाएंगे। 20 जून को उनकी हालत और बिगड़ गई। उस हृदयद्रावक वातावरण में भी वह हिमालय की तरह अटल थे। उस हिंदू राष्ट्र द्रष्टा के लिए अपने जीवन-मरण का प्रश्न महत्वपूर्ण

नहीं था। उनके नेत्र, मानस और ह्रदय पटल पर तो राष्ट्र एवं राष्ट्रोत्थान के साधन संघ का चित्र ही अंकित था। तभी तो 20 जून को चिकित्सकों से थोड़ा समय मांगकर वह विचारमग्न हो गए, फिर गोलवलकर जी को बुलाकर संघ के अनेक वरिष्ठ कार्यकर्ताओं के सामने बाले—"आगे संघ का संपूर्ण कार्य आप सम्हालिए।"

इस भाषा को सुनकर गोलवलकर जी अत्यंत शोक-विह्वल हो गए। चिकित्सक लंबर पंक्चर करने का सही अवसर ढूंढ रहे थे। डा. हेडगेवार की बढ़ती बेचैनी से पूरा वातावरण शोक की गहराई में डूबता जा रहा था। 20 जून को रात के 11 बजे से उनका बुखार तेज हो गया। उनके चेहरे पर गंभीरता एवं उग्रता का भाव दिखाई पड़ रहा था। रात ढाई बजे से वह बेहोश हो गए और 21 जून को 9 बजकर 27 मिनट पर उन्होंने अपनी अंतिम सांस ली। वह ज्येष्ठ बदी द्वितीया का दिन था।

उनकी मृत्यु का समाचार विद्युत गति से सर्वत्र फैल गया। पूरे प्रांत एवं प्रांत के बाहर के लोग नागपुर आने लगे। दिन-भर हजारों स्त्री-पुरुष, आबालवृद्ध उनके दर्शन करते रहे। 21 जून को भारी वर्षा के बावजूद लोगों का आना नहीं रुका।

सायं पांच बजे उनकी शवयात्रा निकली, जिसमें हजारों नर-नारी शामिल थे। 'हितवाद' ने शवयात्रा पर टिप्पणी करते हुए लिखा था कि 'यह नागपुर की अब तक की सबसे प्रभावी शवयात्रा थी। भारी वर्षा के बावजूद इसमें हजारों लोग सम्मिलित हुए। शहर के सभी महत्वपूर्ण व्यक्ति इसमें शामिल थे। यात्रा सायं पांच बजे निकली। रास्ते-भर फूलों की वर्षा की जा रही थी। जैसे-जैसे यह आगे बढ़ती गई, लोगों की संख्या भी बढ़ती गई और रेशिमबाग मैदान पहुंचने में इसे चार घंटे लग गए।'[1] इसमें संत पांचलेगांवकर महाराज, गणपतराव बुटी, डा. चोलकर, डा. परांजपे, रामभाऊ रुईकर, सेठ पूनमचंद, वीर हरकरे, बालाजी हुद्दार, अलेकर, ना.भा. खरे, ओगले सहित कांग्रेस, सोशलिस्ट, फारवर्ड ब्लॉक, मजदूर आंदोलन आदि से जुड़े सभी कार्यकर्ता शामिल थे।

'हितवाद' ने अपने संपादकीय में लिखा था कि 'डा. हेडगेवार से अधिक कुशल संगठनकर्ता का देश में मिलना दुर्लभ होगा।'[2]

---

1. हितवाद, 23 जून 1940, पृष्ठ 1
2. हितवाद, 23 जून 1940, 'स्वर्गीय डा. हेडगेवार'

पूना से प्रकाशित 'मराठा' ने उन्हें 'हिंदू राष्ट्र का मसीहा' की संज्ञा दी। इसने लिखा कि 'हम 'नि:स्वार्थ' शब्द का प्रयोग करते हैं। डा. हेडगेवार का जीवन इसे वास्तविकता में परिवर्तित कर देता है। ... अपने तौर-तरीकों एवं नि:स्वार्थ जीवन के द्वारा वह मराठा संत-कवि-नेता रामदास के समान थे।'[1]

'महाराष्ट्र' ने अपने संपादकीय में उनकी तुलना लोकमान्य तिलक से की।[2]

'केसरी' ने उनके जीवन एवं कृतित्व के बारे में ये शब्द लिखे— 'विनम्रता' जो नेताओं में दुर्लभ होती है, उनमें कूट-कूट कर भरी हुई थी। राष्ट्र की सेवा के लिए उन्होंने परिवार एवं उज्ज्वल भविष्य का त्याग कर दिया। उनमें त्याग करने की असीम प्रवृत्ति थी। संघ रावलपिंडी से मद्रास, कराची से कलकत्ता तक फैल गया। यद्यपि हिंदू राष्ट्र की तुलना में संघ का रूप बहुत छोटा है, फिर भी यह राष्ट्रीय एकता की रीढ़ है। इसके प्रभाव एवं शक्ति को देखकर ही गांधीजी ने इसे भारत की सर्वोत्तम संगठित संस्था कहकर प्रशंसा की थी।'[3]

इसी प्रकार दूसरे मराठी समाचार-पत्र 'काल' ने 'भारत की स्वतंत्रता के लिए उनके अनवरत प्रयास' को एक मिसाल बताया।[4]

डा. हेडगेवार की लोकप्रियता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि मध्यप्रांत एवं महाराष्ट्र के प्राय: सभी गांव एवं शहरों, स्कूल एवं कालेजों, स्थानीय निकाय की निर्वाचित संस्थाओं में 'हेडगेवार दिवस' मनाया गया और उन्हें श्रद्धांजलि दी गई। बंबई के शिवाजी नगर की हरिजन बस्ती में 22 जून 1940 को शोकसभा में हरिजन कार्यकर्ताओं ने उन्हें हरिजनों में आत्मविश्वास पैदा करने वाले मसीहा की संज्ञा दी।[5] यहां तक कि संघ के घोर आलोचक पत्र 'मातृभूमि' की संपादक प्रमिला ओक ने संपादकीय में लिखा-

'उनके विचारों से भिन्नता तो हो सकती है, परंतु उनके त्याग करने की

---

1. द मराठा, 28 जून 1940
2. महाराष्ट्र 23 जून 1940
3. केसरी, 25 जून 1940, पृ. 8
4. काल, 24 जून 1940
5. काल, 11 जुलाई 1940

क्षमता, अविचल दृढ़ निश्चय और दुर्लभ संगठन कौशल जैसे गुणों की प्रशंसा करने से हम बच नहीं सकते हैं। उन्होंने अपना समस्त जीवन समाज के लिए समर्पित कर दिया।"[1]

अपने जीवन की यही श्रेष्ठता, वैचारिक पवित्रता और राष्ट्र समर्पण की भावना उन्होंने राष्ट्र को अर्पित कर दी। वह राष्ट्रीय चेतना, स्वच्छ निर्मल सार्वजनिक जीवन, देशभक्ति और लोक संग्रह जैसे गुणों के मापदंड बन गए। उनकी मृत्यु ने उन्हें नश्वर शरीर से अलग कर दिया, परंतु उनके विचार मूर्त होकर संघ शक्ति के रूप में समाज एवं राष्ट्र जीवन का अभिन्न अंग हो गए हैं।

स्वामी विवेकानंद के समान उनके द्वारा अल्प जीवन में किया गया कार्य राष्ट्रीय पुनर्जागरण के पर्याय के रूप में प्रतिष्ठित हुआ है। यही कारण है कि उनकी मृत्यु के बाद उनके विचारों एवं कार्यों की महत्ता एवं सार्थकता भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन में एक वैकल्पिक अधिष्ठान बनकर उत्तरोत्तर प्रभावकारी सिद्ध हो रही है।

किसी स्वप्नद्रष्टा के जीवन एवं विचारों की सार्थकता उसके द्वारा भविष्य की पीढ़ियों एवं राष्ट्रीय जीवन को प्रभावित करने की क्षमता में निहित होती है। ऐसे व्यक्तित्वों का मूल्यांकन हमेशा अधूरा ही रहता है और इतिहास के घटनाक्रम में ही उनकी पूर्णता और प्रबलता स्थापित होती है। डा. हेडगेवार ऐसे ही महापुरुषों की श्रेणी में आते हैं। वीर सावरकर की श्रद्धांजलि के ये शब्द अत्यंत सार्थक लगते हैं : 'Hedgewar is dead—long live Hedgewar'.

---

1. मातृभूमि, 25 जून 1940, पृ. 6

आधुनिक भारत के निर्माता

BUILDERS OF MODERN INDIA

डा. केशव बलिराम हेडगेवार भारतीय संस्कृति के परम उपासक थे। वह कर्मठ, सत्यनिष्ठ और राष्ट्रवादी होने के साथ-साथ एक स्वतंत्रचेता भी थे। उन्होंने हिंदुओं में नई चेतना जाग्रत करने का उल्लेखनीय कार्य करते हुए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना की। इस पुस्तक में उनके व्यक्तित्व और जीवन के विभिन्न आयामों पर प्रकाश डाला गया है तथा उनके संबंध में ऐसी जानकारियां भी दी गई हैं जो अभी तक अल्पज्ञात थीं।

पुस्तक के लेखक राकेश सिन्हा दिल्ली विश्वविद्यालय के एक कालेज में राजनीति शास्त्र के व्याख्याता हैं। इसके अलावा वह स्तंभकार और राजनीतिक विश्लेषक के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

आधुनिक भारताचे शिल्पकार

ଆଧୁନିକ ଭାରତର ନିର୍ମାତା

आधुनिक-भारतस्य निर्मातारः

ਨਵ-ਭਾਰਤ ਦੇ ਨਿਰਮਾਤਾ

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

ISBN : 81-230-1076-1

मूल्य : 95.00 रुपये

నవ భారత నిర్మాతలు

جدید ہندوستان کے معمار